‘GOPAL SINGH ‘NEPALI’ KI KAVITA KI LOKPRIYATA KA SAMAJSHASTRA’

A Thesis submitted in Partial Fulfilment of the Requirement

For the Degree of Doctor of Philosophy in Hindi

2021

SUSHIL KUMAR

15HHPH11

Supervisor

PROF. RAVI RANJAN

Department of Hindi, School of Humanities

University of Hyderabad

Hyderabad - 500046

Telangana

India

‘गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र’

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबंध

2021

सुशील कुमार

15HHPH11

शोध-निर्देशक

प्रो. रवि रंजन

हिंदी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद- 500046

तेलंगाना

भारत

DECLARATION

I, **SUSHIL KUMAR** (Registration no. **15HHPH11**) hereby declare that the thesis entitled **'GOPAL SINGH 'NEPALI' KI KAVITA KI LOKPRIYATA KA SAMAJSHASTRA' ('गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र')** submitted by me under the guidance and supervision of Professor **RAVI RANJAN** is a bonafide plagiarism free research work. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in shodhganga / Inflibnet.

Signature of Supervisor
Prof. RAVI RANJAN

Signature of Student
SUSHIL KUMAR
Regd. No. 15HHPH11

Place: Hyderabad
Date:

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **'GOPAL SINGH 'NEPALI' KI KAVITA KI LOKPRIYATA KA SAMAJSHASTRA' ('गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र')** submitted by **SUSHIL KUMAR** bearing Regd. No. **15HHPH11** in partial fulfilment of the requirements for the award of **DOCTOR OF PHILOSOPHY** in **HINDI** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

As far as I know, this thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication(s) before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

A. **Published research paper in the following publications:**

1. 'LOKPRIYA SAHITYA KI AVDHARANA'. (JANKRITI, ISSN NO.2454-2725) FEBRUARY-MARCH 2018
2. 'FILMI GEETON KE KSHETRA MEIN GOPAL SINGH 'NEPALI' KA YOGDAN'. (STREEKAAL, ISSN 2394-093X), 2019, ANK-32

B. **Research Paper presented in the following conferences:**

1. 'LOKPRIYA SAHITYA KI AVDHARANA' (NATIONAL), RAJIV GANDHI UNIVERSITY, ARUNACHAL PRADESH, ITANAGAR, 28-29 AUGUST, 2018.
2. 'FILMI GEETON KE KSHETRA MEIN GOPAL SINGH 'NEPALI' KA YOGDAN'(NATIONAL), ST AGNES COLLEGE (AUTONOMOUS), MANGALURU, 24 NOVEMBER, 2018.

Further the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D.:

Sr No.	Course Code	Name	Credit	Result
1.	801	Critical Approaches to Research	4	Pass
2.	802	Research Paper (project work)	4	Pass
3.	826	Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
4.	827	Practical Review of the Texts	4	Pass

The student has also passed M. Phil degree of MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY, HYDERABAD. He studied the following courses in this programme.

Sr No.	Course Code	Name	Credit	Result
1.	P-I	Research Methodology & Literary Criticism	4	Pass
2.	P-II	Sociology of Literature & Hindi Criticism	4	Pass
3.	P-III	Modern Thought	4	Pass
4.		Seminar Presentation-1	4	Pass
5.		Seminar Presentation-2	4	Pass
6.		Seminar Presentation-3	4	Pass
7.		Dissertation	6	Pass
8.		Viva Voce	2	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. programme.

Supervisor **Head of Department** **Dean of the School**

गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र

विषय सूची

	पृ.सं.
भूमिका	**i-vi**
प्रथम अध्याय : लोकप्रिय साहित्य : अभिप्राय एवं स्वरूप	**1-46**
1.1 लोकप्रिय साहित्य की अवधारणा	
1.2 शिष्ट साहित्य, लोकप्रिय साहित्य और लोक साहित्य : अंत:संबंध और पार्थक्य	
1.3 संस्कृति, लोक संस्कृति एवं लोकप्रिय संस्कृति : साम्य और वैषम्य	
1.4 लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु	
1.5 लोकप्रिय साहित्य का रूपविधान	
द्वितीय अध्याय : कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र	**47-86**
2.1 कविता की लोकप्रियता के विविध कारण	
2.2 कविता की लोकप्रियता में कमी की पड़ताल	
2.3 कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र	
तृतीय अध्याय : गोपाल सिंह ‘नेपाली’ का रचना संसार	**87-154**
3.1 गोपाल सिंह ‘नेपाली’ रचित कृतियाँ	
3.2 गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की कविता	
3.3 गोपाल सिंह ‘नेपाली’ के फिल्मी गीत	
3.4 फिल्मी गीतों के क्षेत्र में गोपाल सिंह ‘नेपाली’ का योगदान	
3.5 उत्तरछायावाद के कवि के रूप में गोपाल सिंह ‘नेपाली’	

चतुर्थ अध्याय : गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र 155-200

4.1 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता : रचना, रचनाकार एवं पाठक

4.2 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता : आलोचकीय दृष्टिकोण

4.3 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता : प्रकाशन एवं नैरंतर्य

4.4 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के कारण

पंचम अध्याय : गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता का संवेदना पक्ष 201-257

5.1 नेपाली के काव्य में प्रकृति

5.2 नेपाली के काव्य में प्रेम और सौंदर्य

5.3 नेपाली के काव्य में स्त्री दृष्टिकोण

5.4 नेपाली के काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना एवं इतिहास बोध

5.5 नेपाली के काव्य में प्रगतिशील चेतना एवं व्यंग्य दृष्टि

5.6 नेपाली के काव्य में जीवन मूल्य, संघर्ष, आत्मबोध एवं स्वाधीन कलम का द्वंद्व

5.7 नेपाली के काव्य में भाषागत बोध

षष्ठम अध्याय : गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता का शिल्प विधान 258-291

6.1 नेपाली की काव्यभाषा

6.2 नेपाली के काव्य में प्रयोगशीलता

6.3 नेपाली के काव्य में बिंब योजना

6.4 नेपाली के काव्य में अलंकार योजना

उपसंहार 292-301

संदर्भ ग्रंथ सूची 302-309

परिशिष्ट

प्रकाशित शोध आलेख-1

प्रकाशित शोध आलेख -2

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध प्रपत्र का प्रमाण-पत्र -1

राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध प्रपत्र का प्रमाण-पत्र-2

भूमिका

गोपाल सिंह 'नेपाली' हिन्दी साहित्य के अपने समय के सबसे लोकप्रिय कवि थे। आम जन उनकी कविताओं के श्रोता थे और पाठक भी। उनकी कई कविताएँ आज भी लोक कंठ में सुरक्षित हैं, जिन्हें लोग अक्सर गुनगुनाया करते हैं। उनके अनूठे काव्य-पाठ एवं विशिष्ट काव्य-शैली के लोग प्रशंसक रहे। वे 'गीतों के राजकुमार' के नाम से मशहूर रहे। नेपाली आज भी कवि सम्मेलनों के माध्यम से या सोशल मीडिया जैसे- फेसबुक, यू-ट्यूब आदि के माध्यम से जनता के बीच उपस्थित हैं और लोकप्रिय भी। उनका जुड़ाव काव्य-मंचों से रहा, जहाँ उन्हें अपार लोकप्रियता मिली।

जब उन्होंने लिखना शुरू किया, तब ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली अपना असर खो रही थी। लेकिन ऐसा नहीं था कि ब्रजभाषा में कविता नहीं हो रही थी। किंतु उन्होंने कविता के लिए खड़ी बोली का चुनाव किया, क्योंकि आने वाला समय खड़ी बोली हिन्दी का था और छायावादी कविता की चारों ओर धूम मची हुई थी। छायावाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। इसी समय उमर खय्याम की 'हाला' भी लोकप्रिय थी और उर्दू कविता भी अपने रस के कारण लोगों का कंठहार बनी हुई थी। उस दौरान फिल्में बनती तो हिन्दी की थी, लेकिन वहाँ उर्दू में ही गीत लिखे जाते थे। फिल्मों में उर्दू शायरों और कव्वालों का ही बोलबाला था। इन्हीं विपरीत परिस्थितियों में वे न केवल फिल्मों के लिए गीत लिखते हैं, बल्कि वहाँ लोकप्रियता भी हासिल करते हैं एवं हिन्दी को वहाँ स्थापित करने में अपना योगदान भी देते हैं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र में उनकी रचनाओं के साथ, उनके व्यक्तित्व, तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का योगदान है। साथ ही गाँधी एवं नेहरू जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के विचार एवं व्यक्तित्व की छाप से उनकी कविता की संवेदना भी प्रभावित होती है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य पर जहाँ एक तरफ छायावादी परिस्थितियों का प्रभाव है तो दूसरी तरफ तात्कालिक राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों का भी। प्रकृति की सरल, सरस एवं मधुर कविताएँ जहाँ एक तरफ उनकी व्यक्तिगत रुचि से अभिव्यक्ति पाती है तो दूसरी तरफ छायावाद में प्रकृति की उपस्थिति का प्रभाव भी है। उनकी प्रेम कविताएँ उनकी प्रेम की गहरी समझ एवं समर्पण से अनुप्राणित रचनाएँ हैं। उनके काव्य में उपस्थित प्रेम की सरलता सहज ही पाठकों को आकर्षित कर लेती है। उनके प्रेम में वायवीयता एवं जटिलता नहीं है। वह हृदय की गहरी संवेदना से जुड़ी है। उनकी इन विशेषताओं के साथ उनकी लोकप्रियता को समग्र रूप से समझने के लिए ही मैंने 'गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र' विषय पर शोध कार्य करने का निश्चय किया।

मेरे शोध प्रबंध का विषय है- 'गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र'। इस शोध प्रबंध को मैंने प्रस्तावना और उपसंहार के अतिरिक्त छ: अध्यायों में विभाजित किया है। प्रथम अध्याय में 'लोकप्रिय साहित्य : अभिप्राय एवं स्वरूप' को प्रस्तुत किया गया है। साधारणत: माना जाता है कि जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में स्वीकृत और ग्राह्य हो, वह लोकप्रिय साहित्य है। सहजता, सरलता एवं सुबोधता ऐसे साहित्य के अनिवार्य गुण माने जाते हैं। लेकिन कोई साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सिर्फ सहजता, सरलता एवं सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता। वही साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच लोकप्रिय होगा, जिसका जुड़ाव आम जन से हो। जिस साहित्य में आम जन-जीवन की वास्तविकताएँ एवं आकांक्षाएं सरल, सहज रूप में अभिव्यक्त हों, वही साहित्य लोकप्रिय होता है। पुन: शिष्ट साहित्य, लोकप्रिय साहित्य एवं लोक साहित्य में अंत: संबंध और पार्थक्य को स्पष्ट किया है। उसके बाद संस्कृति, लोकसंस्कृति एवं लोकप्रिय संस्कृति के साम्य एवं वैषम्य की विवेचना की है। साथ ही लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु एवं रूपविधान की भी पड़ताल की गई है।

द्वितीय अध्याय में 'कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र की रूपरेखा' प्रस्तुत की गई है। सबसे पहले कविता की लोकप्रियता के विविध कारणों की विवेचना की है। उसके बाद आज के समय में कविता

की लोकप्रियता में कमी की पड़ताल की है। फिर कविता के समाजशास्त्र के विकसित न हो पाने की समस्या पर विचार किया है। साथ ही कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र की विवेचना की है।

तृतीय अध्याय में मैंने गोपाल सिंह 'नेपाली' कृत कृतियों की विवेचना की है। उनकी कविता की विशेषताओं के साथ उनके फिल्मी गीतों की विशेषता को भी रेखांकित किया है। उसके बाद फिल्मी गीतों के क्षेत्र में नेपाली के योगदान को बताया गया है। फिर उत्तरछायावाद के कवि के रूप में नेपाली की भूमिका की विवेचना की है।

चतुर्थ अध्याय में गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र का अध्ययन किया गया है। इसमें गोपाल सिंह 'नेपाली' की रचना, उनके रचनाकार व्यक्तित्व एवं पाठकों एवं श्रोताओं के साथ अंतर्संबंध को समाजशास्त्रीय दृष्टि से विवेचित किया है। उसके बाद उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व पर साहित्यकारों एवं आलोचकों की भूमिका की समाजशास्त्रीय दृष्टि से पड़ताल की गई है। साथ ही उनकी रचनाओं के प्रकाशन एवं उसके नैरंतर्य पर भी विचार किया है। फिर उनकी कविता की लोकप्रियता के कारणों की पड़ताल की गई है।

पंचम अध्याय में गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की संवेदना की विवेचना की गई है। इस अध्याय में गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को कथ्य की दृष्टि से विवेचित किया गया है। दूसरे शब्दों में कहें तो गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की अंतर्वस्तु की सामाजिकता को लोकप्रियता की दृष्टि से स्पष्ट किया गया है। साथ ही उनकी कविता की अंतर्वस्तु की संवेदना की निर्मिति के कारणों की सामाजिक पड़ताल की गई है।

षष्ठम अध्याय में गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता के शिल्प विधान की विवेचना है। इसमें गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता को शिल्प की दृष्टि से विवेचित किया गया है। साथ ही उनकी कविता के शिल्प की सामाजिकता को समझने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रविधि

इस शोध प्रबंध में गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र का अध्ययन किया गया है। इसके लिए मुख्य रूप से साहित्य के समाजशास्त्रीय शोध प्रविधि के साथ-साथ साहित्य के आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का भी प्रयोग किया गया है। साथ ही यथासंभव काव्यशास्त्रीय शोध प्रविधि का भी प्रयोग किया गया है।

शोध प्रबंध का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध प्रबंध का उद्देश्य कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को रेखांकित करते हुए गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र की विवेचना करना है। गोपाल सिंह 'नेपाली' उत्तरछायावाद के कवि हैं, जिन्होंने कविता विधा को जनता का कंठहार बनाया है। आज के समय में कविता पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। कविता की प्रासंगिकता दिनोंदिन कम होती जा रही है। कविता पढ़ी कम, लिखी ज्यादा जा रही है। काव्यमंच से कविता अब दूर ही हो गई है तो अब उसके श्रोता भी गिने-चुने लोग रह गये हैं। कविता और पाठक के बीच की दूरी दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही है। ऐसे कठिन समय में कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र पर विचार करना ज्यादा समीचीन है। गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को विश्लेषित करने के क्रम में कविता की लोकप्रियता एवं कविता की लोकप्रियता में कमी की पड़ताल करना भी इस शोध प्रबंध का उद्देश्य है।

अनुसंधान कार्य की उपलब्धियाँ

प्रस्तुत शोध प्रबंध 'गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र' की निम्नलिखित उपलब्धियाँ हैं-

- इस शोध प्रबंध से कविता की लोकप्रियता को समझने में मदद मिलेगी।

- कविता समाज में लोकप्रिय रही है। लेकिन वर्तमान समय में कविता की लोकप्रियता में कमी देखने को मिल रही है। कविता और पाठक के बीच की दूरी दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस शोध प्रबंध से कविता की लोकप्रियता में कमी के कारणों को समझने में मदद मिलेगी।
- कविता की लोकप्रियता को समाजशास्त्रीय दृष्टि से समझने में मदद मिलेगी।
- उत्तरछायावाद के सबसे लोकप्रिय कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समग्र रूप में समझने में मदद मिलेगी।
- अपनी तमाम लोकप्रियता के बावजूद गोपाल सिंह 'नेपाली' हिन्दी साहित्य के इतिहास एवं हिन्दी आलोचना में उपेक्षा के शिकार रहे। इस शोध प्रबंध से गोपाल सिंह 'नेपाली' के साथ हुई उपेक्षा को समझा जा सकेगा।
- हिन्दी साहित्य के इतिहास में कविता की लोकप्रियता पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार नहीं किया गया है। साथ ही लोकप्रिय कवियों एवं उनकी कविताओं को असाहित्यिक कहकर उन्हें साहित्य से बाहर कर दिया गया है। इस शोध प्रबंध से यह बात समझने में आसानी होगी कि लोकप्रिय कवि और उनकी कविता किसी भी दृष्टि से असाहित्यिक एवं सतही नहीं है। लोकप्रिय कवि और उनकी कविता को साहित्य से बाहर रखना न साहित्यिक दृष्टि से उचित है और न पाठकीय दृष्टि से ही।

यह मेरा सौभाग्य रहा है कि मुझे प्रो. रवि रंजन के निर्देशन में शोध कार्य करने का सुअवसर मिला। शोध विषय के चयन से लेकर शोध प्रबंध को पूर्ण करने तक मुझे उनका सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला। मैं गुरुवर प्रो. रवि रंजन का हृदय से आभारी हूँ। मैं अपने हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. गजेन्द्र पाठक का बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अमूल्य सुझाव दिए। साथ ही मैं डॉ. श्याम राव एवं डॉ. भीम सिंह का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया, जिससे मैं इस शोध प्रबंध को पूरा कर

सका। मैं अपने विभाग के प्रो. आर.एस. सर्राजु, प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी, प्रो. आलोक पाण्डेय एवं डॉ. जे. आत्माराम का भी आभारी हूँ, जिनका सहयोग मुझे इस शोध प्रबंध को पूरा करने में मिला।

मैं अपनी पत्नी प्रियंका का आभारी हूँ, जिसने मुझे पारिवारिक दायित्वों से मुक्त रखकर शोध प्रबंध को पूर्ण करने का सुअवसर दिया। इस शोध कार्य को पूरा करने में मेरे परिवार का सदैव प्रोत्साहन एवं सहयोग रहा। इसके लिए मैं पिताजी, माँ एवं बहनों का हृदय से आभारी हूँ। इस शोध प्रबंध को पूरा करने में मेरे मित्र श्यामनंदन, अजित, राम अवतार, देवी प्रसाद, लोकेश, संदीप, चिराग का सहयोग मिला, उन सभी का मैं आभारी हूँ।

अंत में मैं उन सबके प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग इस शोध प्रबंध को पूरा करने में मिला।

\- सुशील कुमार

प्रथम अध्याय

लोकप्रिय साहित्य : अभिप्राय एवं स्वरूप

1.1 लोकप्रिय साहित्य की अवधारणा

साहित्य के दो रूप मिलते हैं- एक, लोकप्रिय साहित्य और दूसरा, कलात्मक साहित्य। कलात्मक साहित्य को गंभीर साहित्य माना जाता है, जबकि लोकप्रिय साहित्य को सतही साहित्य। साधारणत: माना जाता है कि जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में स्वीकृत और ग्राह्य हो, वह लोकप्रिय साहित्य है। सहजता, सरलता और सुबोधता ऐसे साहित्य के अनिवार्य गुण माने जाते हैं। लेकिन कोई साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सिर्फ सहजता, सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता। वह साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच लोकप्रिय तभी होगा, जब उसका जुड़ाव आम जन से होगा। जब आम जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ उस साहित्य में सहज, सरल रूप में अभिव्यक्त हो, तभी वह साहित्य लोकप्रिय साहित्य होगा। वहीं कलात्मक साहित्य को गंभीर लेखन बताकर आमजन से दूर किया जाता रहा है। कलात्मक साहित्य भी व्यापक जनसमुदाय से जुड़ा हो सकता है तथा वह भी लोकप्रिय साहित्य हो सकता है।

लोकप्रिय साहित्य में लोकप्रिय है क्या? लोकप्रिय का अर्थ है- जो लोग को प्रिय हो। लेकिन यहाँ लोक का अर्थ क्या है?

हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 में 'लोक' के संबंध में लिखा गया है कि- ''शब्दकोशों में लोक शब्द के कितने ही अर्थ मिलेंगे, जिनमें से साधारणत: दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं। दूसरा अर्थ लोक का होता है- जनसामान्य- इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ

का वाचक 'लोक' शब्द साहित्य का विशेषण है।''[1] लोकप्रिय साहित्य में लोकप्रिय में लोक का अर्थ सर्वजन, सर्ववर्ण, सब लोग से ही है।

हिन्दी का 'लोक' शब्द 'फोक' का पर्याय है। इस फोक के विषय में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने बताया है कि "आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही लोक (फोक) होते हैं और विस्तृत अर्थ में तो इस शब्द से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है। सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए ऐसे प्रयुक्त शब्दों में, जैसे लोकवार्ता (फोक लोर), लोक संगीत (फोक म्यूजिक) आदि में इसका अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है, जो नागरिक संस्कृति और सविधि शिक्षा के प्रवाहों से मुख्यत: परे हैं, जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हें मामूली सा अक्षर ज्ञान है, ग्रामीण और गँवार।''[2] यहाँ लोक को दो अर्थों में प्रयोग किया गया है- एक का अर्थ है साधारण जन, जिसमें सभी लोग सम्मिलित हैं, दूसरा अर्थ इसका संकुचित है जो नागरिक संस्कृति और सविधि शिक्षा के प्रवाह से परे है अर्थात् जो ग्रामीण है, गँवार है, देहाती है। लेकिन लोकप्रिय साहित्य में लोक का अर्थ साधारण जन से ही है। इसलिए हमें इसका अर्थ साधारण जन ही स्वीकार्य होगा।

हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 में ही लोक को इस रूप में परिभाषित किया गया है- ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।''[3] यहाँ 'लोक' का अर्थ उन लोगों से है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और अहंकार से शून्य है अर्थात् जो गँवार है, अनगढ़ है, देहाती है।

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 - प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा, पृ.सं. 747

[2] हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 - प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा, पृ.सं. 747

[3] हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 - प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा, पृ.सं. 747

साधारण शब्दों में ‘लोक’ का अर्थ है- सभी लोग, आम जन, साधारण जन। और इस अर्थ में ‘लोक’ में सभी लोग शामिल हो जाते हैं। लेकिन विशेष अर्थ में ‘‘यह ‘विशेष’ से अलग होता है। “कला के क्षेत्र में हम लोक और शास्त्रीयता का विभाजन देखते हैं, जिसमें शास्त्रीयता का मतलब ही परिष्कृत और व्याकरणिक होता है, जबकि लोक का मतलब अनगढ़ होता है।”[4]

लोकप्रिय का अर्थ है - जो लोक को प्रिय हो अर्थात् जो जनसामान्य को प्रिय हो अर्थात् पसंद हो, रुचिकर हो। अंग्रेजी में लोकप्रिय का पर्याय है - ‘पॉपुलर’। पॉपुलर अच्छी तरह से पसंद किये जाने की सामाजिक स्थिति है, जिसका प्रसार व्यापक होता है। अर्थात् जन समुदाय द्वारा अच्छी तरह से जानी पहचानी गई और अच्छी तरह से पसंद की गई चीज पॉपुलर होती है। लोक में प्रसिद्धि से ही लोकप्रियता का पता चलता है।

‘लोकप्रिय साहित्य’ क्या है? लोकप्रिय साहित्य किसको कहेंगे? लोकप्रिय साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ‘‘आम तौर पर माना जाता है कि जो साहित्य और कला व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो, वह लोकप्रिय है।’’[5] यहाँ मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि वही साहित्य और कला लोकप्रिय होगा, जो व्यापक जनसमुदाय को ग्राह्य और स्वीकार्य हो और व्यापक जनसमुदाय के बीच उनकी स्वीकृति और ग्रहण भी सहज रूप में हो। आगे वे लोकप्रिय साहित्य के गुणों की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं- ‘‘सरलता, सहजता और सुबोधता आदि ऐसे साहित्य के अनिवार्य गुण हैं।’’[6] अर्थात् वही साहित्य लोकप्रिय होगा, जो सरल, सहज और सुबोध हो। वे सरलता, सहजता और सुबोधता को लोकप्रिय साहित्य के लिए अनिवार्य गुण तो बतलाते हैं, लेकिन वे यह भी कहते हैं कि - ‘‘व्यापक जनसमुदाय के बीच कोई साहित्य केवल सरलता और सुबोधता के कारण

---

[4] लोकप्रिय शब्द सुनते ही बौद्धिक वर्ग के कान खड़े हो जाते हैं - प्रभात रंजन, दिनांक 28 मई 2012, जानकीपुल.कॉम

[5] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि - मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 330

[6] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि - मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 330

लोकप्रिय नहीं होता। लोकप्रियता कला या साहित्य के रूप की ही विशेषता नहीं है। वही साहित्य व्यापक जनता के बीच लोकप्रिय होता है जिसमें जनजीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज-सुबोध रूप में व्यक्त होती है। इसलिए लोकप्रियता का संबंध साहित्य के रूप के साथ-साथ उसकी अंतर्वस्तु, उस अंतर्वस्तु में मौजूद यथार्थ चेतना और उस यथार्थ चेतना में निहित विश्व दृष्टि से भी होता है। केवल रूप संबंधी लोकप्रियता सतही होती है और रचना को भी सतही बनाती है।''[7]

वे लोकप्रियता का संबंध सिर्फ रूप से नहीं जोड़ते वे उसे जोड़ते हैं रूप के साथ, उसकी अंतर्वस्तु से, अंतर्वस्तु में मौजूद यथार्थ चेतना से और यथार्थ चेतना में मौजूद विश्व दृष्टि से। जिस साहित्य में ये गुण मौजूद होगा, वह लोकप्रिय साहित्य तो होगा ही, गंभीर भी होगा और कालजयी भी। वे स्पष्ट कहते हैं कि सरलता और सुबोधता के कारण ही कोई साहित्य लोकप्रिय नहीं होता तथा केवल रूप संबंधी लोकप्रियता उस साहित्य को सतही ही बनाएगा, गंभीर और कालजयी नहीं।

लोकप्रिय साहित्य को चवन्नी छाप साहित्य, सस्ता साहित्य, सतही साहित्य, फुटपाथी साहित्य, घटिया साहित्य, घासलेटी साहित्य, व्यावसायिक साहित्य, बाजारू साहित्य, भीड़ का साहित्य, लुगदी साहित्य आदि कहा जाता है। लेकिन साहित्य के समाजशास्त्र में इसे लोकप्रिय साहित्य के नाम से ही जाना जाता है।

लोकप्रिय साहित्य के विविध नामों पर विचार करते हुए उनके नामकरण के आधार को जाना जा सकता है। लोकप्रिय साहित्य के विविध नामों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है-

चवन्नी छाप साहित्य

किसी जमाने में हिन्दी के लोकप्रिय साहित्य को चवन्नी छाप साहित्य कहा जाता था। इसका कारण यह था कि जिस पत्रिका में इनका प्रकाशन किया जाता था, तब उसकी कीमत

---

[7] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि - मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 330

चार आने होती थी। ऐसे साहित्य में लोकप्रिय उपन्यासों की प्रधानता थी। ‘‘यही नहीं बनारस के एक प्रकाशक ने जब ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन शुरू किया तो उसकी कीमत रखी चार आने। इस सीरीज को लोग आपसी बातचीत में चवन्नी जासूस कहा करते थे। उन चार आने की पत्रिकाओं में कभी राही मासूम रज़ा की गजलें भी छपा करती थीं और इब्ने सफी के उपन्यास भी।’’[8]

सस्ता साहित्य

सस्ता होने के कारण ऐसे साहित्य को सस्ता साहित्य भी कहा जाता था। ‘‘चवन्नी छाप पुस्तकों के बाद एक रूपल्ली पुस्तकों का दौर आया। साठ के दशक में हिन्द पॉकेट बुक्स ने पेपरबैक में किताबें छापनी शुरू की और उनका दाम रखा एक रुपया। इसने घरेलू लाइब्रेरी योजना की शुरूआत की जिसमें पाठकों को पाँच रुपये की वीपीपी से एक-एक रुपये की छह पुस्तकें भेजी जाती थीं। पोस्टेज फ्री होता था। सत्तर का दशक आते-आते इस योजना की सदस्य संख्या पौने छह लाख तक पहुँच गई। प्रकाशन की ओर से हर माह करीब अड़तीस हजार पैकेज भेजे जाते थे, हिन्द पॉकेट बुक्स के कंपाउंड में तीन अस्थायी पोस्ट ऑफिस घरेलू लाइब्रेरी योजना के पैकेज भेजने के काम में लगे रहते थे। जासूसी उपन्यासों की लोकप्रियता को इस दौर में पारिवारिक कहे जाने वाले रोमांटिक उपन्यासों की धारा ने पीछे छोड़ दिया। एक रुपये कीमत होने के कारण इन भावुकतापूर्ण उपन्यासों को इस जमाने में गंभीर साहित्यिकों ने तंजिया सस्ता साहित्य कहना शुरू कर दिया।’’[9]

फुटपाथी साहित्य

लोकप्रिय साहित्य रेलवे व्हीलर्स, बस स्टैंड की दुकानों से लेकर सड़क किनारे फुटपाथों पर बिकते थे। इसलिए इस साहित्य को फुटपाथी साहित्य भी कहा जाने लगा।

---

[8] घासलेटी साहित्य से लुगदी साहित्य - प्रभात रंजन, दिनांक 24 जुलाई 2010, जानकीपुल.कॉम

[9] घासलेटी साहित्य से लुगदी साहित्य - प्रभात रंजन, दिनांक 24 जुलाई 2010, जानकीपुल.कॉम

घटिया साहित्य

लोकप्रिय साहित्य को साहित्यिकों ने घटिया साहित्य कहा। ऐसे साहित्य में सस्ते मनोरंजन की प्रधानता थी, जिसमें सेक्स, हिंसा आदि का वर्णन होता था। जासूसी का स्तर भी इन लोकप्रिय उपन्यासों में निम्न स्तर का होता था। इसलिए इस साहित्य को साहित्यिकों ने दोयम दर्जे का साहित्य भी कहा।

घासलेटी साहित्य

लोकप्रिय साहित्य को राष्ट्रीयतावादी साहित्यकारों ने घासलेटी साहित्य नाम दिया यानी ''ऐसा साहित्य जो समाज में घासलेट या मिट्टी तेल की तरह बदबू फैलाता हो। विशाल भारत के संपादक पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने गंभीर साहित्य की तुलना घी से की जो खुशबू फैलाता है और पढ़ने वालों के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखता है, जबकि जासूसी उपन्यास जैसे घासलेटी साहित्य समाज में बदबू तो फैलाते ही हैं, पढ़ने वालों में दुर्गुणों का प्रसार करते हैं।''[10]

व्यावसायिक साहित्य

लोकप्रिय साहित्य को व्यावसायिक मानकों पर सफल होने के कारण व्यावसायिक साहित्य कहा गया। ऐसे साहित्य का लोग बेसब्री से प्रतीक्षा किया करते थे। इस साहित्य की बिक्री लाखों में हुआ करती थी। लोकप्रिय साहित्य के सबसे बड़े लेखक गुलशन नंदा की उपन्यास 'झील के उस पार' की पाँच लाख प्रतियां बिकी जो उस जमाने में प्रकाशन जगत की सबसे बड़ी घटना थी।

बाजारू साहित्य

लोकप्रिय साहित्य आर्थिक उद्देश्य से लिखा जाता है। अर्थात् व्यावसायिक लाभ प्राप्त करने के लिए लोकप्रिय साहित्य को प्रकाशित किया जाता है, जिसका मूल्य बाजार तय करता

---

[10] घासलेटी साहित्य से लुगदी साहित्य - प्रभात रंजन, दिनांक 24 जुलाई 2010, जानकीपुल.कॉम

है। यह बाजार के नियमों से उत्पादित और संचालित साहित्य होता है। इसलिए इस साहित्य को बाजारू साहित्य भी कहा जाता है।

भीड़ का साहित्य

लोकप्रिय साहित्य का पाठक एक बड़ा वर्ग होता है। वह बड़ा पाठक वर्ग एक सीमित दायरे में लिखे गए साहित्य को पसंद करता है। इस साहित्य में यथार्थबोध तो होता है लेकिन सतही और सीमित। इसलिए इस साहित्य को साहित्यिकों द्वारा भीड़ का साहित्य कहा जाता है।

लुगदी साहित्य

अंग्रेजी में जिसे पल्प फिक्शन कहा जाता है। उसे हिन्दी में लुगदी साहित्य कहा जाता है। रिसाइकल्ड पेपर यानी लुगदी कागज पर छपने की वजह से ही इसे लुगदी साहित्य कहा जाता है। साधारण और सस्ते कागजों पर इस प्रकार के साहित्य छापे जाते हैं। इन कागजों पर सेक्सी किताबें, फिल्मी गाने तथा शायरी भी छपते हैं। लुगदी साहित्य के उपन्यासों का कवर मोटे कागज का होता था और इस उपन्यास का नाम उभरे हुए शब्दों में चाँदी के रंग या सुनहरे अक्षरों में होता था।

ग्राम्सी लोकप्रिय साहित्य को नेशनल पॉपुलर (जातीय लोकप्रिय या राष्ट्रीय लोकप्रिय या लोकप्रिय राष्ट्रीय या जातीय लोकप्रिय) और पॉपुलर (लोकप्रिय) साहित्य के रूप में बांटते हैं। उनकी दृष्टि में नेशनल पॉपुलर (राष्ट्रीय/जातीय लोकप्रिय) साहित्य किसी भी राष्ट्र के लिए बहुत ही जरूरी और अनिवार्य है। डॉ. रवि रंजन ग्राम्सी के लोकप्रिय साहित्य पर व्यक्त विचार के संदर्भ में लिखते हैं – ‘‘इटली में राष्ट्रीय शब्द का अर्थ विचारधारात्मक रूप में बहुत ही संकीर्ण है और इसका लोकप्रिय से कोई वास्ता नहीं हैं, क्योंकि यहां के बुद्धिजीवी जनता से अर्थात राष्ट्र से बहुत दूर हैं। वे वस्तुतः एक ऐसी जाति की परंपरा में बंधे हुए हैं, जिसे जनता के बीच से उभरे किसी सशक्त लोकप्रिय अथवा राष्ट्रीय राजनैतिक आंदोलन द्वारा ध्वस्त नहीं किया गया है। यह

परंपरा अत्यंत सूक्ष्म एवं किताबी है। दूसरे शब्दों में कहें तो ग्राम्सी का मानना है कि तद्युगीन इटली में नेशनल शब्द बौद्धिक पुस्तकीय परंपरा से संबंधित रहा है। अत: इससे उन तमाम लोगों को मूर्खतापूर्वक एवं खतरनाक ढंग से राष्ट्र विरोधी घोषित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है जो राष्ट्रीयता की उपर्युक्त जड़ अवधारणा को स्वीकार नहीं करते।"[11]

मैनेजर पांडेय ग्राम्सी के लोकप्रिय साहित्य पर व्यक्त विचार के संदर्भ में लिखते हैं- "ग्राम्सी के लेखन में लोकप्रिय साहित्य पर विचार दो स्तरों पर हुआ है। एक स्तर पर लोकप्रियता अविभाज्य रूप में जातीयता (राष्ट्रीयता) से जुड़ी हुई है। वहां लोकप्रिय जातीयता या जातीय लोकप्रियता केवल साहित्यिक धारणा नहीं हैं, वह सांस्कृतिक और राजनीतिक धारणा भी है, जिसमें लेखक और जनता के बीच की विश्व दृष्टि की एकता बुनियादी शर्त है। इसलिए साहित्य की ऐसी लोकप्रियता जातीय और यथार्थवादी होकर ही सार्थक होती है। दूसरे स्तर पर ग्राम्सी ने व्यावसायिक रूप में सफल बाजारू लोकप्रिय साहित्य और कला के विभिन्न रूपों और रचनाओं का भी विश्लेषण किया है। सुविधा के लिए अंधलोकवादी रुझान वाला लोकप्रिय साहित्य कहा जा सकता है।"[12]

ग्राम्सी के मत को ध्यान में रखते हुए लोकप्रिय साहित्य को दो स्तरों पर बांट कर देखना समीचीन जान पड़ता है- पहला, नेशनल पॉपुलर साहित्य या राष्ट्रीय या जातीय लोकप्रिय साहित्य या लोकप्रिय राष्ट्रीय या जातीय साहित्य; दूसरा पॉपुलर साहित्य या लोकप्रिय साहित्य। लेकिन साहित्य के समाजशास्त्री दोनों ही रूपों को लोकप्रिय साहित्य के अंतर्गत रखकर ही उसकी विवेचना करते हैं।

[11] लोकप्रिय कविता का समाजशास्त्र - डॉ. रवि रंजन, पृ.सं. 28

[12] आलोचना की सामाजिकता - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 76-77

1.2 शिष्ट साहित्य, लोकप्रिय साहित्य और लोक साहित्य :अंत:सम्बन्ध और पार्थक्य

लोकप्रिय साहित्य पर विचार करने के संबंध में सर्वप्रथम इस प्रश्न पर विचार करना ज्यादा समीचीन है कि लोकप्रिय साहित्य 'जनता का साहित्य' है या 'जनता का साहित्य' ही लोकप्रिय साहित्य है। अथवा किसी साहित्य का 'जनता का साहित्य होने' के लिए जनता के बीच लोकप्रिय होना अनिवार्य है? इस सवाल का जवाब देते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है कि- ''जनता का साहित्य का अर्थ जनता को तुरंत ही समझ में आने वाले साहित्य से हरगिज नहीं। अगर ऐसा होता तो किस्सा तोता-मैना और नौटंकी ही साहित्य के प्रधान रूप होते। साहित्य के अंदर सांस्कृतिक भाव होते हैं। सांस्कृतिक भावों को ग्रहण करने के लिए बुलंद बारीकी और खूबसूरती को पहचानने के लिए उस असलियत को पाने के लिए जिसका नक्शा साहित्य में रहता है, सुनने और पढ़ने वाले की कुछ स्थिति अपेक्षित होती है। वह स्थिति है उसकी शिक्षा, उसके मन का सांस्कृतिक परिष्कार। साहित्य का उद्देश्य सांस्कृतिक परिष्कार है, मानसिक परिष्कार है। किन्तु यह परिष्कार साहित्य के माध्यम द्वारा तभी संभव है, जब स्वयं सुनने वाले या पढ़ने वाले की अवस्था शिक्षित की हो। यही कारण है कि मार्क्स का 'दास कैपिटल', लेनिन के ग्रंथ, रोम्या रोलां के ग्रंथ, टॉलस्टाय और गोर्की के उपन्यास एकदम अशिक्षित और असंस्कृतों को न समझ में आ सकते हैं, न वे उनके पढ़ने के लिए होते ही हैं। जनता का साहित्य का अर्थ 'जनता के लिए साहित्य' से है और वह जनता ऐसी हो जो शिक्षा और संस्कृति द्वारा कुछ स्टैण्डर्ड प्राप्त कर चुकी हो। ध्यान रहे कि राजनीति के मूलग्रंथ बहुत बार बुद्धिजीवियों के भी समझ में नहीं आते, जनता का तो कहना ही क्या। लेकिन वे हमारी सांस्कृतिक विरासत हैं। .... जो लोग 'जनता का साहित्य' से यह मतलब लेते हैं कि वह साहित्य जनता के तुरंत समझ में आए, जनता उसका मर्म पा सके। यही उसकी पहली कसौटी है - वे लोग यह भूल जाते हैं कि जनता को पहले सुशिक्षित और सुसंस्कृत करना है .... जनता के साहित्य से अर्थ है ऐसा साहित्य

जो जनता के जीवन मूल्यों को, जनता के जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करता हो, उसे अपने मुक्तिपथ पर अग्रसर करता हो। इस मुक्ति पथ का अर्थ राजनैतिक मुक्ति से लगाकर अज्ञान से मुक्ति तक है।''[13] मुक्तिबोध के इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि लोकप्रियता को जनता के साहित्य के लिए अनिवार्य कसौटी नहीं माना जा सकता। उन्होंने यह माना है कि जनता का साहित्य से मतलब सिर्फ यही नहीं है कि वे तुरंत जनता की समझ में आ जाए। बल्कि इसका अर्थ यह भी है कि जनता इतनी सुशिक्षित और सुसंस्कृत हो कि उसे उस साहित्य का मर्म तुरंत समझ में आ जाए। मार्क्स ने भी लिखा है कि यदि तुम कला का रसास्वादन करना चाहते हो, तो तुम्हारे लिए कला की दीक्षा प्राप्त व्यक्ति होना आवश्यक है।

जनता का साहित्य आम जन-जीवन के बारे में और जनता के लिए लिखा गया साहित्य होता है। यह जरूरी नहीं कि जनता का साहित्य जनता द्वारा ही रचित हो। लेकिन यह आवश्यक है कि उसे जनता की भावनाओं से एकरूप करने वाले लेखकों द्वारा रचा गया हो। मगर महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि 'जनता' से हमारा तात्पर्य किन वर्गों एवं तबकों से है। इस का जवाब देते हुए माओ ने कहा है कि ''व्यापक जनता में, जिसकी संख्या हमारी आबादी में नब्बे प्रतिशत से भी अधिक है,मजदूर, किसान, सैनिक और शहरी निम्न पूँजीपति वर्ग शामिल हैं। इसलिए हमारा कला और साहित्य सबसे पहले मजदूरों के लिए हैं-एक ऐसे वर्ग के लिए जो क्रांति का नेतृत्व करता है। दूसरे, वह किसानों के लिए है,जो क्रांति में हमारे सबसे व्यापक और सबसे दृढ़ सहयोगी हैं। तीसरे,वह सशस्त्र मजदूरों व किसानों अर्थात् आठवीं राह सेना और नयी चौथी सेना तथा जनता कि अन्य सशस्त्र फौजों के लिए है, जो क्रांतिकारी युद्ध की मुख्य शक्ति हैं। चौथे, वह शहरी निम्न-पूँजीपति वर्ग के मेहनतकश जन-समुदाय और बुद्धिजीवियों के लिए है; ये दोनों ही

---

[13] मुक्तिबोध रचनावली, भाग 5, संपादक नेमिचन्द्र जैन, पृ.सं. 75

प्रकार के लोग क्रांति में हमारे सहयोगी हैं। तथा हमारे साथ दीर्घ काल तक सहयोग कर सकते हैं।''[14]

मुक्तिबोध और माओ के उपर्युक्त वक्तव्य को देखते हैं तो जहाँ मुक्तिबोध जनता के साहित्य के लिए लोकप्रियता को आवश्यक नहीं मानते, लेकिन वे यह मानते हैं कि उस साहित्य को जनता द्वारा समझने के लिए जनता का सांस्कृतिक विकास हो, वह सुशिक्षित और सुसंस्कृत हो। कुछ वैसा ही विचार मार्क्स का भी है। दूसरी तरफ माओ, जनता के साहित्य को जनता के लिए लिखा ऐसा साहित्य मानते हैं जो मजदूरों, किसानों, मेहनतकश निम्न पूँजीपति वर्ग, सैनिकों के लिए हो, जिसमें आबादी का 90 प्रतिशत भाग सम्मिलित हो।

लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग और समाज की उपज है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ''आज का लोकप्रिय साहित्य प्रकाशन के युग का साहित्य है, जिसका बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है। वह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की दूसरी वस्तुतों की तरह उत्पादित होकर बाजार के माध्यम से खरीद-बिक्री की वस्तु की तरह जनता को पहुँचता है। विशेषत: वह कलम से रोटी कमाने वाले मध्यवर्गीय लेखकों की मदद से बड़े व्यावसायिक प्रकाशन संस्थानों द्वारा उत्पादित साहित्य है, जिसे उपभोग की दूसरी वस्तुओं की तरह जनता तक पहुँचाया जाता है।''[15] पूँजीवादी युग का लोकप्रिय साहित्य आर्थिक उद्देश्य से ही लिखा जाता है। व्यावसायिक लाभ कमाने के लिए इसे प्रकाशित किया जाता है, जिसका मूल्य बाजार से तय होता है। कम लागत में अधिक मुनाफा कमाना इसका उद्देश्य होता है। इसलिए इसे लुगदी कागज पर छापा जाता है। लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग की पूरी व्यवस्था को अर्डोनो ने संस्कृति का उद्योग कहा है और वोर्डिए ने उसे प्रतीकात्मक वस्तुओं का बाजार। वहीं मार्क्सवादी

---

[14] कला और साहित्य - माओजे-दुंग, पृ.सं. 29

[15] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 310

साहित्य चिंतन में लोकप्रियता को कला का एक सार्थक मूल्य माना जाता है। वहाँ लोकप्रियता कलात्मकता का सहयोगी है तो महान कला का एक अनिवार्य गुण भी।

हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की दिशा में अभी कुछ सीमित प्रयास किए गए हैं। पूरनचन्द्र जोशी ने लोकप्रिय साहित्य का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है। साहित्य के व्याख्या या आलोचना के अनेक सिद्धांत और संप्रदाय हैं। लेकिन साहित्य के समाजशास्त्रीय आलोचक ही साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता पर गहन विचार-विमर्श प्रस्तुत करते हैं। आज के साहित्य के सामने सबसे बड़ा संकट यह है कि उसकी सामाजिक प्रासंगिकता घटती जा रही है। साहित्य की व्याख्या की सामाजिक महत्ता दिनों-दिन कम होती जा रही है। समकालीन साहित्य को देखते हुए बार-बार पुराने साहित्य की व्याख्या की जरूरत महसूस होती है। पुराने साहित्य में वह क्या था, जो रचनाकार और पाठक के बीच संवाद स्थापित करती थी। लोकप्रिय साहित्य आज का साहित्य है, जिसका पाठक वर्ग एक विशाल समुदाय है। इस साहित्य की समाजशास्त्रीय विश्लेषण से इस साहित्य की सामाजिक सार्थकता का विश्लेषण किया जा सकता है। प्राय: आलोचकों ने लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की कोशिश न के बराबर की है। इसका सबसे बड़ा कारण आधुनिक समाज में साहित्य की वास्तविक स्थिति के बारे में आलोचकों की लापरवाही है। उन्होंने इस तथ्य को अनदेखा करने का प्रयास किया है कि साहित्य की दुनिया में केवल महान और महत्त्वपूर्ण कृतियाँ और कृतिकार ही नहीं होते, उनमें केवल सौंदर्यबोधीय प्रेरणा से संचालित पाठक ही नहीं होते, बल्कि साहित्यिक कृतियों के साथ-साथ लोकप्रिय कृतियाँ और उनके लेखक भी होते हैं जिनका एक विशाल पाठक समुदाय होता है। लोकप्रिय साहित्य की उपेक्षा करना असल में एक विशाल पाठक समुदाय के साहित्य की उपेक्षा करना है। कुछ आलोचकों ने अपने अभिजात्यवादी दृष्टिकोण के कारण भी इस साहित्य की उपेक्षा की है। उनकी नजर में लोकप्रिय साहित्य,

असाहित्यिक, अशिष्ट, सतही, मनोरंजक और व्यावसायिक है। चूँकि वे अपने को साहित्यिक आलोचक कहलाना पसंद करते हैं, इसलिए वे इसकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखते।

लोकप्रिय साहित्य का समाजशास्त्र हिन्दी में अब तक विकसित इसलिए नहीं हो पाया है क्योंकि हिन्दी में साहित्यिक विवेचना के अंतर्गत पाठक समुदाय को महत्त्वपूर्ण नहीं माना गया है। पाठक समुदाय की दृष्टि से साहित्य पर विचार करने की कोई कोशिश ही नहीं की गई। साहित्य के विकास और उसके रूप के परिवर्तन में पाठक समुदाय की रुचि क्या भूमिका अदा करती है, इसका विश्लेषण न के बराबर किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का वक्तव्य है - ''जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।''[16] लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन को विश्लेषित करने में आचार्य शुक्ल का यह वक्तव्य प्रासंगिक है। हिन्दी साहित्य में जब लोकप्रिय साहित्य की चर्चा शुरू होती है तो पहला नाम देवकीनंदन खत्री के उपन्यास 'चंद्रकांता' का आता है। 'चंद्रकांता' की लोकप्रियता अपने समय में चरम पर थी। आचार्य शुक्ल ने 'चंद्रकांता' की चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि- ''हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किए उतने और किसी ग्रंथकार ने नहीं। 'चंद्रकांता' पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिन्दी सीखी। चंद्रकांता पढ़ चुकने पर वे 'चंद्रकांता' की किस्म की कोई किताब ढूँढ़ने में परेशान रहते थे।''[17] सभी ने एक स्वर से देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों की लोकप्रियता की सच्चाई को स्वीकार किया है। राजेन्द्र यादव ने इसकी लोकप्रियता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए लिखा कि- ''चंद्रकांता की इस अभूतपूर्व और भयानक लोकप्रियता के सामाजिक या

---

[16] हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. XXIX

[17] हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 342

मनोवैज्ञानिक कारण क्या रहे हैं? वह कौन सी मानसिकता होती है, जब समाज इस तरह के मनोरंजन, कौतुक या पलायन चाहने लगता है। अनायास या अनजाने ही लाखों पाठकों या दर्शकों को बाँध लेने वाली किताब या फिल्म किसी गहरे अचेतन जरूरत को प्रकट और इंगित करती है या नहीं।''[18] उन्होंने 'चन्द्रकांता' उपन्यास का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि- ''इस उपन्यास की जाँच केवल साहित्यिक औजारों से नहीं की जा सकती। उस पूरे परिवेश और माहौल को समझना होगा, जिसमें इसे लिखा-पढ़ा गया था। कह सकते हैं कि जो जिस तरह का समाज होता है या जिस भीतरी बुनावट में वह साँस लेता है, अपने लिए उसी तरह की किताब चुन लेता है। यही समाजशास्त्रीय दृष्टि की माँग भी है, जिसके अंतर्गत एक रचना के सामाजिक उद्गम और पाठकीय ग्रहण के विश्लेषण के माध्यम से उसके सामाजिक महत्त्व की पहचान होती है।''[19]राजेंद्र यादव ने चंद्रकांता उपन्यास का समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषण किया है। साथ ही उसकी लोकप्रियता के बहाने उस समाज की गहरी पड़ताल की है,जिसमें उस उपन्यास की लोकप्रियता चरम पर रही है।

हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य बनाम शिष्ट साहित्य की बहस पुरानी है। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि- ''पहले मौलिक उपन्यास लेखक, जिनके उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम हुई, काशी के बाबू देवकीनंदन खत्री थे। द्वितीय उत्थान काल के पहले ही नरेन्द्र मोहिनी, कुसुम कुमारी, वीरेन्द्र वीर आदि कई उपन्यास लिख चुके थे। उक्त काल के आरंभ में तो 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' नामक इनके ऐयारी के उपन्यासों की चर्चा चारों ओर इतनी फैली कि जो लोग हिन्दी की किताबें नहीं पढ़ते थे, वे भी इनके नामों से परिचित हो गये। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि इन उपन्यासों का लक्ष्य केवल घटना वैचित्र्य रहा, रससंचार, भावविभूति का चरित्रचित्रण नहीं। ये वास्तव में घटनाप्रधान कथानक या किस्से हैं जिनमें जीवन के विविध पक्षों

---

[18] अठारह उपन्यास - राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 19

[19] अठारह उपन्यास - राजेन्द्र यादव, पृ.सं. 15

के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इससे ये साहित्य कोटि में नहीं आते। पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में बाबू देवकीनंदन का स्मरण इस बात के लिए सदा बना रहेगा कि जितने पाठक उन्होंने उत्पन्न किए, उतने किसी और ग्रंथकार ने नहीं। चंद्रकांता पढ़ने के लिए न जाने कितने उर्दूजीवी लोगों ने हिन्दी सीखी।''[20] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चंद्रकांता' तथा उस जैसी रचनाओं की लोकप्रियता को तो स्वीकार किया, लेकिन उसे साहित्य कोटि में नहीं रखा। उनका कहना था कि इसमें केवल घटना वैचित्र्य है या घटना प्रधान कथानक के किस्से हैं, जीवन के विविध पक्षों के चित्रण का कोई प्रयत्न नहीं, इसलिए ये साहित्य कोटि में नहीं आते।

हिन्दी साहित्य के दूसरे मौलिक उपन्यास लेखक किशोरी लाल गोस्वामी के संबंध में शुक्ल जी ने लिखा है कि- ''इनकी रचनाएँ साहित्य कोटि में आती हैं। इनके उपन्यासों में समाज के कुछ सजीव चित्र, वासनाओं के रूपरंग, चित्राकर्षक वर्णन और थोड़ा-बहुत चरित्र चित्रण भी अवश्य पाया जाता है।''[21]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लोकप्रिय साहित्य बनाम शिष्ट साहित्य के संबंध में अपने वक्तव्य दिये। देवकीनंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी दोनों के ही उपन्यास काफी लोकप्रिय हुए। यद्यपि रामचंद्र शुक्ल ने किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों को साहित्य कोटि में रखा, लेकिन बहुत लोगों ने इसे स्वीकृति प्रदान नहीं की। तर्क यह दिया गया कि गोस्वामी जी के उपन्यासों में उच्चकोटि की वासनाएँ व्यक्त करने वाले दृश्य और घटनाएँ अधिक थीं। इसलिए गंभीर साहित्यकार के रूप में लाला श्रीनिवासदास ही माने गये और 'परीक्षा गुरु' को गंभीर साहित्य के रूप में मान्यता मिली।

लोकप्रिय साहित्य को शिष्ट साहित्य के विरूद्ध समझा जाता रहा है। दोनों को एक-दूसरे के पूर्णत: विरोधी समझा गया है। यह समझा जाता रहा है कि ये दोनों साहित्य के दो छोर हैं।

---

[20] हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 342

[21] हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 343

"लेकिन साहित्य के इतिहास की छानबीन की जाए तो ऐसी स्थितियाँ भी मिलती हैं जहाँ कलात्मक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के बीच एकता भी दिखाई देती है। दूसरे देशों के अनेक महान लेखकों ने अपनी प्रसिद्ध रचनाओं के निर्माण में लोकप्रिय साहित्य के कुछ तत्वों की मदद ली है। अनेक आलोचकों ने लिखा है कि दास्तोवस्की ने अपने उपन्यासों की रचना में रूसी और फ्रांसीसी कला-साहित्य की लोकप्रय अपराध कथाओं, साहसिक कथाओं और जासूसी कथाओं के अनेक तत्वों का रचनात्मक उपयोग किया है। वालजाक और विक्टर ह्यूगो के यहाँ भी ऐसे प्रयोग मिलते हैं। ग्राम्शी ने सही लिखा है कि लोकप्रिय साहित्य पर विचार करते समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि समकालीन सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति लोकप्रिय साहित्य रूपों के माध्यम से होती है। लेकिन इस अभिव्यक्ति के दो रूप मिलते हैं- यांत्रिक और प्रयोगात्मक। यांत्रिक अभिव्यक्ति का उदाहरण यूजेन सुई के पेरिस रहस्य में मिलता है तो प्रयोगात्मक अभिव्यक्ति वालजाक, दास्तोवस्की और ह्यूगो के उपन्यासों में।"[22]कहने का अर्थ यह है कि लोकप्रिय साहित्य और शिष्ट साहित्य सदा एक दूसरे के विरोधी नही होते है। शिष्ट साहित्य लोकप्रिय साहित्य के तत्वों को आत्मसात करते हुए उसका सार्थक एवं रचनात्मक उपयोग कर वह अपने को विकसित भी करता है।

लोकप्रिय साहित्य और कलात्मक साहित्य में एक अंत:संबंध भी पाया जाता है। विश्व में ऐसे उदाहरण भी भरे पड़े हैं जहाँ लोकप्रिय साहित्य के किसी रूप का रचनात्मक उपयोग करते हुए महत्त्वपूर्ण कलात्मक उपन्यास लिखा गया। लोकप्रिय साहित्य का सबसे प्रमुख रूप जासूसी उपन्यासों का है। अमेरिका में एडगर एलेन पो और अर्जेंटीना के बोरर्वेज जैसे लेखकों ने जासूसी कथा शिल्प का रचनात्मक उपयोग करते हुए कलात्मक कथा साहित्य की रचना की है। जादुई यथार्थवाद जो कला शैली का एक महत्त्वपूर्ण रूप है, लोकप्रिय साहित्य के कथा-शैली और

[22] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 306

शिल्प संरचना का उपयोग करके ही उससे कलात्मक साहित्य रचा गया है। बंगला के प्रसिद्ध फिल्मकार सत्यजित राय ने 'फेलुदा के साहसिक अभियान' नामक एक कहानी संग्रह लिखा, जिसमें चार लंबी कहानियाँ हैं। इन कहानियों की शैली चित्रात्मक है और भाषा बोलचाल की और रूप पारदर्शी। कथा की संरचना में ऐसी विश्वसनीयता है, जो उसे यथार्थ बनाती है। स्थानों और स्थितियों का वर्णन यथार्थपरक और इतिहाससम्मत। कोई चरित्र अनावश्यक नहीं, कोई घटना छोड़ने लायक नहीं। भाषा में व्यंग्य और वाग्विदग्धता। यह साहित्य लोकप्रिय भी हुआ और इसे कलात्मक भी माना गया। इससे हम कह सकते हैं कि लोकप्रिय साहित्य कलात्मक साहित्य के निर्माण और विकास में ही भूमिका नहीं निभाता, बल्कि वह स्वयं भी कलात्मक साहित्य भी हो सकता है।

लोकप्रिय साहित्य से कलात्मक साहित्य के संबंध का एक रूप बाजारवाद में दिखता है, जहाँ कलात्मक साहित्य को तरह-तरह से लोकप्रिय साहित्य बनाकर बेचा जाता है। भारतीय साहित्य के इतिहास में 'रामायण' और 'महाभारत' कलात्मक साहित्य के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। बाजारवाद का शिकार ये दोनों महान कृतियाँ हो गई हैं। 'रामायण' और 'महाभारत' पर आधारित सरल, सतही और बाजारू साहित्य बेचा जा रहा है। लेकिन इसके दो रूप हैं- एक तो आधुनिक काल में इन कृतियों के आधार पर और इनसे प्रेरणा और कथा लेकर अनेक सार्थक नयी कृतियों की रचना हुई, जो कलात्मक साहित्य के रूप में दर्ज हुई। तो दूसरी तरफ धार्मिक प्रचार और व्यावसायिक लाभ के लिए रामायण और महाभारत को सतही और सस्ता बनाकर बेचा गया। रामायण और महाभारत से अनेक उपन्यास पैदा किए जा रहे हैं। जो कलात्मक साहित्य को विकृत कर हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। कलात्मक साहित्य को तरह-तरह से लोकप्रिय साहित्य बनाकर बेचा जा रहा है। इसपर विचार करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने लियोलावथेंल को उद्धृत किया है - ''श्रेष्ठ कला को भी उपयोग की वस्तु बनाकर उसे भीड़ की

संस्कृति में शामिल कर लिया जाता है और समाज को भ्रमित करने की छल-योजना के साधन के रूप में उसका उपयोग हो सकता है।''[23]

तकनीकी के विकास ने संसार को बदला है तो इसने कला को भी बदला है। अब कला को बाजार की वस्तु बनाकर बेचने का प्रयास किया जा रहा है। श्रेष्ठ कला को सतही और बाजारू बनाकर बेचने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। ये सब बाजारवाद के दुष्प्रभाव हैं, जिसे श्रेष्ठ कला भी बच नहीं पा रही है। महत्त्वपूर्ण कलात्मक कृतियों के ऐतिहासिक संदर्भ, सर्जनात्मक विवेक और ज्ञानात्मक मूल्य की उपेक्षा करके उन्हें सरल रूप में पाठकों के सामने पेश किया जा रहा है। श्रेष्ठ कला को सरल बनाने की प्रक्रिया में कला का सरलीकरण होता है और प्रचार और मनोरंजन उसका लक्ष्य बन जाता है। बाजारवाद उसका उपभोग करता है। उदाहरण के लिए कबीरदास, सूरदास और मीराबाई के कलात्मक प्रगीत फिल्मी गीतों की तरह गाए और रिकार्ड में भरकर बेचे जा रहे हैं। यह महान कला को घटिया बनाने का उदाहरण भर है। पूँजीवादी व्यवस्था में कला को भीड़ की संस्कृति बना दिया जाता है ताकि कमाई की जा सके। भीड़ की संस्कृति बाजारवाद है, जहाँ संस्कृति को वस्तु के रूप में एक उपभोग का वस्तु बना दिया जाता है। यहाँ उपभोक्ता निष्क्रिय होता है। साहित्यिक कृतियों को बाजारू वस्तु बनाने का सबसे बड़ा साधन टेलीविजन है। वाल्मीकि रामायण, रामचरितमानस और महाभारत जैसी महान कलात्मक कृतियों को टेलीविजन ने सतही, घटिया और बाजारू बना दिया है। ''सच्ची कला के पास पाठक, दर्शक और श्रोता को जाना पड़ता है, जबकि भीड़ की संस्कृति की वस्तु, बाजारू कला-वस्तु उपभोक्ता पर थोप दी जाती है। यही कारण है कि टेलीविजन न केवल कला के सतहीकरण

[23] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 307

की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है बल्कि वह आम जनता की चेतना और कल्पना को अनुशासित और शासित करने का साधन बनता है।''[24]

साहित्य की अवधारणा का विकास एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के दौरान हुआ है। इसलिए कलात्मक साहित्य से लोकप्रिय साहित्य के संबंध पर इस दृष्टि से भी विचार करना होगा। समय के साथ इतिहास की अवधारणा बदलती है। इसलिए साहित्य की अवधारणा भी बदलती रही है। ''लेखक का जो रूप एक समय साहित्य के अंतर्गत माना जाता था, वह बाद में साहित्य से बाहर हो गया। इसके ठीक विपरीत जो कभी साहित्य में शामिल नहीं था, वह बाद में साहित्य मान लिया गया। चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति और भूतनाथ आदि उपन्यासों के लेखक देवकीनंदन खत्री कभी हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार थे। उनके उपन्यासों पर उस समय की साहित्यिक पत्रिकाओं में आलोचनात्मक बहसें हुई हैं। बाद में एक ओर प्रेमचंद और दूसरी ओर छायावाद के आने के बाद साहित्य के अवधारणा बदली और उपन्यास की भी अवधारणा बदली तो आलोचकों ने देवकीनंदन खत्री को उपन्यासकार मानने से इंकार कर दिया।''[25] बाद में जब राजेन्द्र यादव और मधुरेश ने देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों का नये ढंग से विश्लेषण करते हुए उनका नया मूल्यांकन किया है। उनकी फिर चर्चा जोर पकड़ने लगी है। वहीं किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य कोटि में रखा है लेकिन अब किशोरी लाल गोस्वामी को उपन्यासकार के रूप में कोई याद नहीं करता। अर्थात् साहित्य के इतिहास में लेखकों-कवियों का साहित्यिक कलात्मक महत्त्व और उनकी लोकप्रियता घटती-बढ़ती रहती है। कोई लेखक एक समय में गंभीर माना जाए, वही आगे चलकर केवल लोकप्रिय लेखक बन जाए या एक समय का लोकप्रिय लेखक बाद में गंभीर लेखक के रूप में जाना जाए।

---

[24] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 308

[25] लोकप्रिय कविता का समाजशास्त्र - डॉ. रवि रंजन, पृ.सं. 58

साहित्य को गंभीर और सतही या कलात्मक और लोकप्रिय आदि खेमे में बाँटकर देखने के पीछे एक दृष्टि होती है, जिसके आधार पर किसी कृति को गंभीर और किसी को सतही बना दिया जाता है। इस दृष्टि के पीछे एक मूल्य चेतना छिपी होती है, जो साहित्यिक के साथ सामाजिक भी होती है। इसलिए एक लेखक और उसकी रचना को, एक मूल्य चेतना के आलोचक उसे गंभीर और कलात्मक मानें। वही भिन्न मूल्य चेतना के आलोचक उसे कलात्मक और गंभीर न मानकर सतही मानें। हिन्दी साहित्य में पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के मूल्यांकन में मूल्यों का ऐसा टकराव देखने को मिलता है। उग्र को प्रगतिशील आलोचक एक क्रांतिकारी और यथार्थवादी कथाकार मानते हैं जबकि पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने रूढ़िवादी आग्रहों के कारण उग्र को घासलेटी साहित्यकार घोषित कर दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि कलात्मक या गंभीर और सतही या लोकप्रिय साहित्य के विभाजन का कोई सार्वभौम और शाश्वत स्थिति नहीं है।

संस्कृति के दो रूप मिलते हैं- एक अभिजन संस्कृति और दूसरा, जन संस्कृति। अभिजन संस्कृति के समानांतर जनसंस्कृति का विकास होता है। जनसंस्कृति अभिजन संस्कृति का विरोध करता है और विकल्प के रूप में जनसंस्कृति की रचना करता है। जनसंस्कृति की अभिव्यक्ति का सबसे प्रभावशाली रूप लोक-साहित्य है। लोक साहित्य लोकप्रिय भी होता है, लेकिन जिसे समाजशास्त्रीय भाषा में लोकप्रिय साहित्य कहा जाता है, उससे वह एकदम भिन्न होता है। लोकसाहित्य में जहाँ एक ओर जनजीवन की अभिव्यक्ति होती है, वहीं दूसरी ओर यह उस लोक समाज की सामूहिक कृति होती है, जिसके जीवन की अभिव्यक्ति उसमें होती है। अर्थात् लोक साहित्य जनता की सामूहिक कृति है, जो सामाजिक जीवन (लोक जीवन) से प्रसूत होता है। यह सामूहिकता लोक में व्याप्त संस्कार, लोक विश्वास, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, खान-पान, लोकोक्तियाँ , पहेलियाँ, मुहावरे, कहावतें, लोकगीत, लोक कला, लोक गाथा, लोक नृत्य आदि

में दिखती है। विवाह के समय गाये जाने वाले गीतों को देखें या मृत्यु उपरांत शोकगीतों का या अन्य संस्कारों पर गाये जाने वाले गीतों को, उन सबमें सामूहिकता की भावना होती है। ये गीत जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षण को संकेतित करते हैं। लोक साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण बात यही है कि लोक साहित्य की कृतियाँ सामूहिक रूप से रची जाती हैं और लोक के बहुत से जन अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा द्वारा इसमें कुछ न कुछ योग करते रहते हैं और इसकी रचना प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है। इनकी विषय वस्तु लोक जीवन होता है, जिसमें सामूहिकता की भावना होती है। साथ ही गायन और वाचन द्वारा यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तांतरित होती रहती है।

लोक साहित्य,शिष्ट साहित्य एवं लोकप्रिय साहित्य में एक अंत:सम्बन्ध भी पाया जाता है। जब कभी साहित्य अपनी मार्मिकता एवं संवेदना खोने लगती है,तब-तब वह संवेदना के स्तर पर लोकजीवन एवं लोकसाहित्य से जुड़ती है। लोकजीवन एवं लोकसाहित्य के अनुभवों एवं लोकभाषा की व्यंजकता को ग्रहण एवं आत्मसात करते हुए एवं उसका रचनात्मक उपयोग करते हुए वह अपने को विकसित करती है। जिस साहित्य को शिष्ट साहित्य या गंभीर साहित्य या कलात्मक साहित्य कहा जाता है, वह लोकजीवन,लोकभाषा एवं लोकसाहित्य के तत्वों को ग्रहण एवं आत्मसात करके ही हुई है। कई बड़े एवं नामचीन रचनाकारों ने लोकजीवन, लोकभाषा एवं लोकसाहित्य का रचनात्मक एवं सार्थक उपयोग करते हुए कलात्मक एवं श्रेष्ठ साहित्य की रचना की है। उदहारण के लिए, फणीश्वरनाथ रेणु की श्रेष्ठ एवं क्लासिक का दर्जा प्राप्त कर चुकी मैला आँचल में लोकजीवन, लोकभाषा एवं लोकसाहित्य का रचनात्मक एवं कलात्मक उपयोग किया गया है। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है की सिर्फ शिष्ट साहित्य ही लोकसाहित्य के तत्वों को ग्रहण एवं आत्मसात नहीं करता, बल्कि लोकसाहित्य भी शिष्ट साहित्य के तत्वों को ग्रहण एवं आत्मसात करता है। कहने का अर्थ यह है कि लोकसाहित्य के

तत्व शिष्ट साहित्य में, शिष्ट साहित्य के तत्व लोकप्रिय साहित्य में आते रहते हैं, तो इसका उल्टा क्रम भी चलता रहता है।

लोक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अनेक अंतर हैं। लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग और समाज की उपज है या देन है, जबकि लोक साहित्य गण-समाज से आज तक किसी न किसी रूप में निर्मित और विकसित होता आ रहा है। दूसरा अंतर यह है कि लोकप्रिय साहित्य प्रकाशन के युग का साहित्य है, जिसका उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। इसका लक्ष्य व्यावसायिक होता है। वह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की दूसरी वस्तुओं की तरह उत्पादित होकर बाजार के माध्यम से खरीद-बिक्री की वस्तु की तरह जनता तक पहुँचता है, जबकि लोक साहित्य की रचना जन समुदाय करता है और वही उसका श्रोता भी होता है। अर्थात् लोक साहित्य जनता के लिए, जनता के बारे में, जनता द्वारा रचित साहित्य है। लोकप्रिय साहित्य कलम से रोटी कमाने वाले मध्यमवर्गीय लेखकों की मदद से बड़े व्यावसायिक प्रकाशन संस्थानों द्वारा उत्पादित साहित्य है, जिसे उपयोग की दूसरी वस्तुओं की तरह जनता तक पहुँचाया जाता है। अर्थात् लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग का साहित्य है, जिसे आर्थिक उद्देश्य से लिखा जाता है। यह बाजार के नियमों से उत्पादित और संचालित साहित्य होता है। लोक साहित्य जनता का साहित्य होता है, जो गायन और वाचन से श्रोता तक पहुँचती है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अंतरित होती है। यह एक प्रकार से विकसनशील साहित्य होता है।

1.3 संस्कृति,लोक संस्कृति एवं लोकप्रिय संस्कृति : साम्य और वैषम्य

संस्कृति एक जटिल एवं व्यापक अवधारणा है। संस्कृति के अंतर्गत मानव समुदाय की समग्र जीवन पद्धति, सामाजिक विरासत या समस्त सृजन को इसमें सम्मिलित किया जाता है। समाज के मूल्य, मान्यताएँ, विश्वास, विचार भाव, रीति रिवाज, परंपरा, भाषा ज्ञान, कला, धर्म आदि के मूर्त-अमूर्त रूपों को संस्कृति के अंतर्गत ही माना जाता है। पूरन चंद्र जोशी ने संस्कृति

पर विचार करते हुए लिखा है- “ ‘संस्कृति’ शब्द का प्रयोग अनेक और भिन्न अर्थों में होता आया है, जिसमें तीन मुख्य हैं। आम तौर पर शिक्षित समाज में संस्कृति के प्रयोग से साहित्य, संगीत, नाटक, नृत्य, चित्र, स्थापत्य आदि कलाओं का सामूहिक रूप से बोध होता है। इस कला-समूह में मनुष्य समाज की वे गतिविधियाँ और क्रियाकलाप फलीभूत होते हैं, जिनकी सार्थकता महज उनकी उपयोगिता (यूटिलिटी) में नहीं, वह इस बात में भी है कि वे साथ ही साथ सौंदर्य (ब्यूटी) के जीवंत रूप और आनंद के स्रोत भी हैं।”[26] आगे उन्होंने संस्कृति के भौतिक संस्कृति और आध्यात्मिक संस्कृति के रूप में बाँटकर देखा है। उन्होंने लिखा है- “एक ओर संस्कृति में मूल्य, मान्यता, चेतना, विश्वास, विचार, भावना, रिवाज, भाषा, ज्ञान, कर्म, धर्म, जादू-टोना आदि वे सभी अमूर्त स्वरूप शामिल हैं, जिनसे मानव-सृजित कृत्रिम जगत सार्थकता और महत्ता पाता है। दूसरी ओर संस्कृति में विज्ञान और टेक्नोलॉजी तथा श्रम और उद्यम आदि के संयोग से रचे और ईजाद किए हुए भोजन, पोशाक, आवास और भौतिक जीवन को सुखकर और सुविधाजनक बनाने वाले वे सभी नाना प्रकार के मूर्त और स्थूल स्वरूप भी शामिल हैं।”[27] उन्होंने संस्कृति के अमूर्त स्वरूपों को आध्यात्मिक संस्कृति और मूर्त स्वरूप को भौतिक संस्कृति कहा है। भौतिक संस्कृति और आध्यात्मिक संस्कृति के संयुक्त विकास से ही मनुष्यता का विकास होता है।

लोक संस्कृति या जन संस्कृति और शिष्ट या अभिजात्य संस्कृति के संबंधों को समझने के लिए डॉ. उन्नीनाथन, इन्द्रदेव और योगेन्द्र सिंह ने समाज की संरचना को तीन संस्कृतियों में बाँटा है- (i) अभिजात्य संस्कृति (ii) लोक संस्कृति और (iii) जनजातीय संस्कृति। जनजातीय संस्कृति से तत्व अभिग्रहण कर लोक संस्कृति अपने को समृद्ध करती है। उसी प्रकार लोक संस्कृति से तत्व अभिग्रहण कर अभिजात्य संस्कृति अपने को समृद्ध करती है और ठीक इसका उल्टा क्रम भी

---

[26] हंस, अंक अक्टूबर 1997, पृ.सं. 66
[27] हंस, अंक अक्टूबर 1997, पृ.सं. 66

चलता है- अभिजात्य संस्कृति के तत्व लोक संस्कृति और लोक संस्कृति के तत्व जनजातीय संस्कृति में आते रहते हैं। लोक संस्कृति की परिधि व्यापक होती है। इसमें लोक में व्याप्त संस्कार, लोक विश्वास, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार, खान-पान, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, मुहावरे, कहावतें, लोकगीत, लोक कला, लोक गाथा, लोक नृत्य आदि को सम्मिलित किया जाता है।

समाज विकसित होने के क्रम में आज पूँजीवादी समाज व्यवस्था और मुक्त बाजार वाली अर्थव्यवस्था में बदलता चला जा रहा है। पूँजीवाद के प्रसार और मुक्त बाजार वाली अर्थव्यवस्था ने संस्कृति को उद्योग के रूप में परिणत कर दिया है। संस्कृति उद्योग के विस्तार ने अन्य वस्तुओं की तरह संस्कृति को भी बाजार की वस्तु बना दिया है। अन्य वस्तुओं की तरह संस्कृति की खरीद-फरोख्त की जा रही है। संस्कृतिकर्मी की हैसियत एक श्रमिक की तरह हो गई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि अन्य बाजारों की तरह संस्कृति बाजार की अवधारणा विकसित हो रही है। संस्कृति बाजार में संस्कृति का वही रूप ठहर पाएगा, जो उपभोक्ताओं के बीच अधिक से अधिक लोकप्रिय होगा। संस्कृति का संकट यह है कि संस्कृति को विकृत कर, तोड़-मरोड़कर लोकप्रिय संस्कृति में बदला जाएगा। साथ ही पूँजीवादी वर्ग एवं साधन-संपन्न वर्ग आपसी गठजोड़ कर संस्कृति के ऐसे रूप को प्रोत्साहित करेंगे, जो उनके हितों के अनुकूल होंगे।

पूँजीवादी व्यवस्था एवं बाजारवाद में अपने लाभ के रूप वस्तुओं को ढला जाता है। अत: संस्कृति को भी बाजारू आवश्यकताओं के अनुरूप उसे प्रतियोगितापरक एवं लाभ के अनुरूप ढालने की कोशिश जारी है। प्रेस, प्रकाशन, रेडियो, टेलीविजन, विज्ञान, फिल्मों आदि के द्वारा इसका प्रचार-प्रसार किया जा रहा है। पूँजीवादी व्यवस्था में संस्कृतिकर्मी का कर्म एक श्रम है। बाजार ही तय करता है कि यह श्रम उत्पादक है या अनुत्पादक। मार्क्स ने लिखा है- ''एक ही प्रकार का श्रम लक्ष्य की भिन्नता के मुताबिक कभी उत्पादक श्रम होता है तो कभी अनुत्पादक। उदाहरण के लिए मिल्टन ने पेराडाइज लॉस्ट लिखा तो उसका श्रम अनुत्पादक था, पर उस समय जो लेखक प्रकाशकों के लिए बड़े पैमाने पर पुस्तकें पैदा कर रहे थे, उनका श्रम उत्पादक था। मिल्टन ने पैराडाइज लॉस्ट

वैसे ही लिखा जैसे रेशम का कीड़ा रेशम पैदा करता है। वह उसके स्वभाव की सहज क्रिया थी। बाद में उसने उसे पाँच पाउंड में बेचा, लेकिन साहित्य के सर्वहारा जो अपने प्रकाशक के निर्देश पर थोकभाव से बिकाऊ माल के रूप में किताबें पैदा करते हैं, वे उत्पादन श्रमिक हैं, क्योंकि उनकी उत्पादक प्रक्रिया पूँजी से नियंत्रित होती है और अंतत: पूँजी को बढ़ाने में सहायक होती है। एक गायक जब खुद गाकर कुछ कमाता है तो उसका श्रम अनुत्पादक है, लेकिन वही जब किसी व्यावसायिक संस्था या व्यक्ति के निर्देश पर बाजार के लिए गाता है तब उत्पादन श्रमिक बन जाता है''[28] अर्थात् बाजार यह तय करता है कि श्रमिक का कौन सा उत्पादन उत्पादक है और कौन सा अनुत्पादक।

पूँजीवाद समाज में बाजार ही सब कुछ है। बाजारवाद एवं व्यावसायिकता के दबाव में संस्कृति बिकाऊ बन गयी है। संस्कृति उद्योग का विस्तार हुआ, जिसके कारण संस्कृतिकर्मी की हैसियत एक श्रमिक की बन गयी है। अब वह धन की प्राप्ति के लिए ही किताबें लिखने लगा है। पेंटिंग्स एवं संगीत की धुनें भी वह पैसे के लिए बनाने लगा। नृत्य एवं अभिनय भी बाजारवाद की वस्तु बन गई है। मुक्तिबोध के शब्दों में- ''जिस समाज में हर चीज खरीदी और बेची जाती है, जहाँ बुद्धि बिकती है और बुद्धिजीवी वर्ग बुद्धि बेचता है अपने शारीरिक अस्तित्व के लिए ..... जहाँ स्त्री बिकती है, श्रम बिकता है, वहाँ अंतरात्मा भी बिकती है। .... जहाँ सच्चा व्यक्ति स्वातंत्र्य अगर किसी को है तो धनिक वर्ग को है, क्योंकि वह दूसरों की स्वतंत्रता खरीदकर अपनी स्वतंत्रता बढ़ाता है और अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, संपूर्ण समाज व्यवस्था का पदाधीश बनकर प्रत्यक्षत: और अप्रत्यक्षत: स्वयं या विकृत आत्माओं द्वारा अपने प्रभाव और जीवन को स्थायी बनाता है।''[29] पूँजीवाद समाज संस्कृति को भी एक उत्पाद बना देती है और संस्कृतिकर्मी को एक श्रमिक। संस्कृतिकर्मी का काम है। अपने सांस्कृतिक

---

[28] साहित्य और कला - मार्क्स - एंगेल्स, पृ.सं. 138

[29] मुक्तिबोध रचनावली, भाग 5, संपादक नेमिचन्द्र जैन, पृ.सं. 174

उत्पाद का उत्पादन करना अर्थात् लेखक किताबें लिखेगा, पेंटर पेंटिंग्स बनाएगा, संगीतकार संगीत की धुनें तैयार करेगा और सबका एक ही उद्देश्य होगा - अर्थ की प्राप्ति। फिर अपने उत्पाद को बाजार में पहुँचाना। बाजार में वही बिकेगा जो लोकप्रिय होगा। लोकप्रियता के मानदंड ही सांस्कृतिक उत्पादों के मानक तय करेंगे, उन्हीं के अनुरूप सांस्कृतिक उत्पाद आएंगे। कला एवं संस्कृति बाजार के अनुरूप विकसित होंगे।

बाजारवाद के कारण संस्कृति पर गहराते संकट पर विचार करते हुए नामवर सिंह ने कहा है- ''संस्कृतिवाद एक ऐसी विचारधारा है, जो जीवन की सारी समस्याओं को समेटकर संस्कृति की समस्या बना देती है क्योंकि उसके अनुसार जीवन की तमाम समस्याएँ सिर्फ संस्कृति की समस्याएँ हैं। किन्तु संस्कृतिवाद की विचारधारा यहीं नहीं रूकती। इसके बाद वह संस्कृति की अवधारणा को भी संकुचित करती है। इस विचारधारा में अमूर्तन की विशेष भूमिका होती है। संस्कृति एक जीते-जागते क्रिया-व्यापार की तरह कुछ अमूर्त मूल्यों की तालिका बनकर रह जाती है, देशकाल से जो कुछ ऐसी विशेषताएँ जो सार्वभौम और शाश्वत हैं। संस्कृतिवाद की संस्कृति एक ऐसी अनूठी वस्तु है, जिसे किसी मानव-समाज ने नहीं बनाया, बल्कि जो मानव समाज को बनाती है। संस्कृतिवाद की विचारधारा के प्रभाव को नष्ट करने के लिए संस्कृति के इस रहस्यवाद और अमूर्तन का विरोध आवश्यक है।''[30] लेकिन नामवर सिंह के संस्कृतिवाद का अर्थ है बुर्जुआ संस्कृति। वर्ग विभाजित समाज में जो वर्ग सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से वर्चस्वशाली होता है, उसी के सांस्कृतिक मूल्य भी सामाजिक जीवन में हावी होते हैं। जबकि मार्क्सवादियों के द्वारा संस्कृति के सामाजिक आधार पर जोर देने के लिए संस्कृति को आर्थिक आधार बनाकर मात्र रख देते हैं। किसी देश की आर्थिक स्थिति के सुधर जाने से अपने आप सांस्कृतिक उत्थान नहीं हो जाता। आर्थिक स्थिति पर अंशत: निर्भर रहने के बावजूद

[30] वाद-विवाद संवाद - नामवर सिंह, पृ.सं. 47

संस्कृति की सत्ता अंशत: स्वायत्त भी होती है और इस स्वायत्त क्षेत्र के विकास के लिए अलग से प्रयास करने की आवश्यकता होती है। यहाँ तक कि कभी-कभी सांस्कृतिक पिछड़ापन स्वयं आर्थिक विकास में बाधक बन जाता है। तीसरी दुनिया के देशों ने सांस्कृतिक चेतना का विकास करके ही साम्राज्यवादी शिकंजे से अपनी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की थी।

अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में औद्योगिक एवं लोकतांत्रिक क्रांति हुए। उन क्रांतियों का प्रभाव भारत पर पड़ा। भारत में भी राष्ट्रवाद का जन्म हुआ। देश की आजादी की मांग तेज हुई। राजेन्द्र यादव ने लिखा है- "अठाहरवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों के दौरान यूरोप और ब्रिटेन के अंत:संघर्षों, औद्योगिक वैज्ञानिक क्रांतियों में लोकतांत्रिक मूल्यों-विचारों यानी आधुनिकता का विकास हुआ, वही मूल्य हमारी औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति की प्रेरणा भी बने। इस बीच भारत में पढ़े-लिखे अपेक्षाकृत विपन्न अभिजनों का ऐसा वर्ग तैयार हो रहा था, जो राजनैतिक, शैक्षिक रूप से जागरूक था। विडम्बना यह थी कि यूरोप ने जनतांत्रिक मूल्य को अपने यहाँ के सामंती समाज को अपदस्थ करके उपलब्ध किया था। उधर हमारा यह प्रबुद्ध वर्ग उसी सामंती समाज का विस्तार था, जो कलकत्ता जैसे शहरों में आ बसा था। ये अनुपस्थित जमींदार थे। सात समुंदर पार से आकर हमें गुलाम बनाने वाले डच, फ्रेंच और अंग्रेज व्यापार जगत तथा औद्योगिक वर्ग से आये थे, मगर उन्होंने यहाँ की सामंती व्यवस्था को यही सोचकर स्थायीत्व दिया कि उनके साथ सांठ-गांठ से वे अपना साम्राज्य यानी चलाए रख सकेंगे। उनके मानसिक आध्यात्मिक संतोष के लिए साम्राज्यवादियों ने भारतीय संस्कृति की पुरातनता और महानता के मिथक गढ़े। नतीजे में हमारा यह प्रबुद्ध उच्च मध्य वर्ग, मूलत: फ्यूडल महान भारतीय संस्कृति और आधुनिक जनतांत्रिक मूल्यों को एक साथ आत्मसात करने लगा। इसी वैचारिक द्वंद्वात्मकता ने साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में सचमुच दिग्गज व्यक्तित्व दिये। इन लोगों का मूल संकट पारंपरिक परिवार व्यवस्था और जमींदारियों को बनाये रखते हुए आधुनिक समाज में

अपने स्थान निर्धारण को लेना था। भारतीय परिवार की मर्यादा का अर्थ था स्त्री दलितों की यथास्थिति और प्राचीन वर्ण व्यवस्था का संरक्षण। वे आधुनिक उदारता की झोंक में उस व्यवस्था की कुछ अमानवीयताओं में सुधार के लिए तैयार थे, मगर बदलने की बात सोचना उनके लिए संभव नहीं था।''[31] राजेन्द्र यादव ने भारतीय भद्रलोक के उद्भव के कारणों पर ऐतिहासिक व समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार करते हैं तथा उसकी तुलना ब्रिटेन के भद्रलोक से करते हैं। भारतीय भद्रलोक एक ऐसा विकासमान मध्य वर्ग था जिसमें छोटे-मोटे क्लर्क से लेकर बड़े-बड़े वकील, डॉक्टर, व्यापारी, जमींदार- सभी थे। इनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संपर्क अंग्रेजों से था। अंग्रेजों के संपर्क में आने से इनका नए-नए विचारों से संपर्क हुआ। नए विचारों के संपर्क में आने पर न चाहते हुए उन्होंने अपने विचारों में कुछ बदलाव लाए। लेकिन वे अपने घर-परिवार में वही पुरानी सामंती व्यवस्था को बनाए रखना चाहते थे। भारतीय भद्रलोक अमानवीयताओं में सुधार के लिए तैयार थे तो सिर्फ आधुनिकता और उदारता के झोंक में। वे पूरी तरह के बदलाव लाने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए दलित और स्त्री की स्थिति में बहुत हद तक सुधार नहीं हुआ। अब स्थितियाँ बदलनी शुरू हुई है और दलित तथा स्त्री में सामाजिक-राजनीतिक चेतना आई है।

भारतीय मध्यवर्ग ने समाज में जहाँ कुछ हद तक अमानवीयताओं में सुधार के प्रयास किए, वहीं साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में यथास्थितिवाद बनाए रखने पर जोर दिया। मध्य वर्ग की यथास्थितिवाद पर चोट करते हुए राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में इस वर्ग द्वारा विकसित सौंदर्यशास्त्र और भी अधिक जड़ और यथास्थितिवादी है। विश्व साहित्य के घनघोर अध्ययन के बाद इसने जो कला-मूल्य या साहित्यिक आस्वाद बोध अर्जित किया है, उसे वह लगभग परिवर्तनीय और शाश्वत मानने की द्विधाहीन बौद्धिकता में जीता है।

---

[31] हंस, अंक अक्टूबर 1997, पृ.सं. 5-6

उदाहरण के लिए कहानी, कविता, उपन्यास की कलात्मकता को लेकर उसके मन में कुछ मानक मूल्य हैं। भाषा से लेकर कथन भंगिमा तक उसके कुछ पैमाने हैं।अगर रचना उन पर खरी उतरी है तो महान है वरना फूहड़, अधकचरी इत्यादि है। मध्यवर्ग ने इन यथास्थितिवादी सांस्कृतिक व सौंदर्यशास्त्रीय मूल्यों के स्रोतों का विश्लेषण करने पर राजेन्द्र यादव को यह प्रतीत होता है कि इस वर्ग को जब भी अपने अस्तित्व के लिए खतरा महसूस होता है तो वह पहले इसे संस्कृति पर खतरे का नाम देता है। सच तो यह है कि काव्यशास्त्रीय, सौंदर्यशास्त्रीय व सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण की इसकी चिंता मूलत: किन्हीं कला-मूल्यों की चिंता नहीं, इस वर्ग की अस्तित्व रक्षा है जो ऐसे सारे बौद्धिक विमर्श की सुविधा देता है। आगे उन्होंने लिखा है- ‘‘संस्कृति वैसे भी हवा में जन्म नहीं लेती। एक विशेष समय, वर्ग और समाज में ही कोई संस्कृति जन्म लेती, बढ़ती और परवान चढ़ती है। चूँकि संस्कृति एक बौद्धिक अभ्यास, संस्कार या लत भी होती है। इसलिए उत्कृष्टता का आदर्श मॉडल बनकर अगली पीढ़ियों की बौद्धिकता को नियंत्रित, निर्धारित करती रहती है। इस मध्यवर्ग ने साहित्य-कला के क्षेत्र में जो संस्कृति विकसित की है, वही उसका बौद्धिक कवच है। महत्त्वपूर्ण यह भी है कि साहित्य कला के क्षेत्र में उत्कृष्टता के मूल्यों की रक्षा करने वाले खुद भी स्वीकार नहीं करना चाहते कि वे सांस्कृतिक मानकों की रक्षा के नाम पर किन वर्ग, हितों की रक्षा कर रहे होते हैं। वे इसे निरपेक्ष, स्वयंभू और स्वायत्त समझने के लिए मजबूर हैं।’’[32] मौजूदा समय में सांस्कृतिक विमर्श का जो अभिजनवादी पाखंड परिव्याप्त है उसने केन्द्र में आम जनता की संस्कृति नहीं बल्कि एक वर्ग-विशेष की खोखली संस्कृति है, जिसे बुर्जुआ संस्कृति कहना अनुपयुक्त न होगा।

पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन, उपभोक्ता का संबंध अहम होता है। यहाँ व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम वस्तुएँ प्रमुख हो जाती है तथा मानवीय गुण व मूल्य भी खरीदने-बिकने की वस्तु बन

---

[32] हंस, अंक नवम्बर 1997, पृ.सं. 7

जाते हैं। मार्क्स ने लिखा है कि ''पूँजीपति वर्ग ने, जहाँ पर भी उसका पलड़ा भारी हुआ, वहाँ सभी सामंती, पितृसत्तात्मक और काव्यात्मक संबंधों का अंत कर दिया। उसने मनुष्य को अपने स्वाभाविक बड़ों के साथ बांध रखने वाले नाना प्रकार के सामंती संबंधों को निर्ममता से तोड़ डाला और नग्न स्वार्थ के नकद पैसे-कौड़ी के हृदय शून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच कोई दूसरा संबंध बाकी नहीं रहने दिया। धार्मिक श्रद्धा के स्वर्गोपय आनंदातिरेक को, वीरोचित उत्साह और कूपमण्डूकतापूर्ण भावुकता को उसने आनपाई के स्वार्थी हिसाब के बर्फीले पानी में डुबो दिया है।''[33]

20वीं शताब्दी के पाँचवें दशक में समाजशास्त्रीय आलोचकों ने यह कहना शुरू किया कि पूंजीवादी व्यवस्था एवं मुक्त अर्थव्यवस्था में संस्कृति अपने सार तत्व को खोकर भीड़ की संस्कृति या लोकप्रिय संस्कृति के रूप में विकसित होती है। इस लोकप्रिय संस्कृति में सर्जनात्मकता, कल्पनाशीलता व आलोचनात्मक चेतना का नितांत अभाव होता है। कहने का अर्थ यह है कि पूँजीवादी समाज में संस्कृति- चाहे अभिजन संस्कृति हो या लोक संस्कृति, लोकप्रिय संस्कृति में बदलने लगती है और बाजार की शक्तियों से चालित और परिचालित होने लगती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि लोक कलाकार और प्रतिबद्ध संस्कृतिकर्मियों को भी लाभ के जाल में फाँस लिया जाता है और उन्हें मजबूर किया जाता है कि वे बाजार के अनुरूप अपने कला या संस्कृति को बदलें। पूँजीवादी व्यवस्था से बचाने के लिए यह जरूरी है कि भीड़ की संस्कृति या लोकप्रिय संस्कृति से लोक संस्कृति या अभिजन संस्कृति या जनसंस्कृति को अलगाया जाए। ठीक इसी प्रकार लोक साहित्य और लोकप्रिय साहित्य के बीच फर्क को समझा जाए। कहने का अर्थ यह है कि लोकप्रिय साहित्य व लोकप्रिय संस्कृति सर्वग्राही पूँजीवाद का उत्पाद है, जिसके अनुकूल आदर्श मनुष्य वह है जो व्यक्तित्वविहीन, अमानवीकरण

---

[33] का. मार्क्स - फ्रे. एंगेल्स : संकलित रचनाएँ (खंड 1, भाग - 1) - अनुवादक एवं संपादक सुरेन्द्र कुमार पृ.सं. 133

का शिकार, खोखला व हर तरह की जीवंत व्यक्ति से शून्य हो, क्योंकि ऐसे मनुष्य को व्यवस्था अपने अनुकूल ढाल सकती है। उसकी चेतना को तोड़-मरोड़कर अपने सेवा में लगा सकती है। अर्थात् व्यक्तित्वविहीन लोग ही पूँजीवादी समाज में उत्पादक एवं उपभोक्ता के रूप में लोकप्रिय साहित्य व संस्कृति के लक्ष्य है और ऐसे लोगों से ही संस्कृति का उद्योग फल-फूल रहा है।

आज के दौर में सांस्कृतिक उपनिवेशवाद विकसित हो रहा है, जो अविकसित, अल्पविकसित, अर्द्धविकसित व विकासशील देशों की साधनहीन जनता को दलाल बुद्धिजीवियों की मदद से अपने सांस्कृतिक आगोश में ले रहा है। वैचारिक बुद्धिजीवी अपने जनता को उस सांस्कृतिक उपनिवेशवाद का शिकार बनाने के लिए उस देश विशेष की आर्थिक और वैज्ञानिक समृद्धि का रंगीन नक्शा दिखाते हैं। बहुलतावाद व भूमण्डलीकरण के नाम पर वैचारिक बुद्धिजीवियों ने सांस्कृतिक अस्मिता का संकट पैदा कर दिया है। आज के समय में संस्कृति का जो रूप फल-फूल एवं विकसित हो रहा है, वह लोकप्रिय संस्कृति है। इस लोकप्रिय संस्कृति के पैरोकार लोक संस्कृति की संघर्ष चेतना एवं वर्ग चेतना को कुंदकर इसको भी लोकप्रिय संस्कृति में बदलने के षड्यंत्र में संलग्न हैं। साथ ही अभिजन संस्कृति को भी लोकप्रिय संस्कृति के अनुरूप ढालकर उसकी कलात्मकता एवं श्रेष्ठता को विकृत कर रहे है।

आधुनिक समय में पूँजीवाद के कारण समाज और संस्कृति में हुए बदलाव को लेकर लोगों ने इसके विरूद्ध तीखी और तीव्र प्रतिक्रिया दी है, जो संस्कृति, कला और साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। संस्कृति उद्योग के विस्तार से जहाँ संस्कृति, कला और साहित्य का बाजारीकरण हो रहा था। उससे बचने के लिए कुछ सच्चे कलाकारों ने उस व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कला के लिए एक पूर्ण स्वायत्त संसार की कल्पना की है। उन्होंने श्रेष्ठ कला के लिए अमूर्तता, निर्वैयक्तिता, जटिलता, दुरूहता, गूढ़ता, रहस्यात्मकता आदि को अनिवार्य गुण माना है। उन्होंने कला, साहित्य और संस्कृति के लिए लोकप्रियता को दुर्गुण

मानकर उसके खिलाफ प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने कहा कि कला को लोकप्रिय नहीं होनी चाहिए, बल्कि वह जटिल और दुर्बोध होनी चाहिए। पूँजीवादी व्यवस्था और संस्कृति उद्योग के विस्तार से कला और संस्कृति को बचाने का यह तरीका भ्रामक और अनुपयुक्त है। इससे कला और संस्कृति पर संकट खत्म नहीं होगा। उल्टा यह होगा कि कला और संस्कृति जटिल और दुर्बोध होकर जनता से कटती चली जाएगी।

लोकप्रिय संस्कृति का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसकी अभिव्यक्ति के माध्यम भी अनेक हैं। इसके अंतर्गत कला और साहित्य के सभी रूप आ जाते हैं। संगीत, नृत्य, चित्र आदि ललित कलाओं में लोकप्रिय संस्कृति का व्यापक प्रसार और प्रभाव देखा जा सकता है। वर्तमान समय में सिनेमा लोकप्रिय कलाओं में सबसे अधिक प्रभावशाली बनता जा रहा है। सिनेमा के निर्माण में सबसे अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। इसलिए इस पर पूँजीवादी समाज व्यवस्था का सबसे अधिक प्रभाव है। यहाँ व्यावसायिकता और कला का द्वंद्व सबसे अधिक है।

सिनेमा के बाद लोकप्रिय संस्कृति का सबसे अधिक प्रभाव विभिन्न संचार माध्यमों पर है। रेडियो, टेलीविजन संचार माध्यमों में सबसे अधिक प्रभावी है और इसकी पहुँच भी सबसे अधिक है। रेडियो का स्थान आज एफ.एम. रेडियो ने ले लिया है। और यह लोकप्रिय संस्कृति का सबसे प्रभावशाली माध्यम बनता जा रहा है। टेलीविजन ने सिनेमा का स्थान ले लिया है। करीब-करीब हर घर में इसकी पहुँच हो रही है। लोकप्रिय धारावाहिकों ने इसे जनता के बीच और भी लोकप्रिय बनाया है। रामायण, महाभारत, चंद्रकांता जैसे धारावाहिकों ने तो लोकप्रियता का कीर्तिमान ही स्थापित कर दिया है।

रंगमंच जनता से सीधे संवाद स्थापित करने का मंच है। इसमें कला और जनता के बीच सीधा संबंध होता है। इसलिए रंगमंच को जनता से जुड़ी हुई कला कहा जाता है। रंगमंच का इतिहास बहुत पुराना है। रंगमंच पर पूँजीवादी व्यवस्था के पड़ते प्रभाव और उससे अपने को

बचाने के अंतर्विरोध पर मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ''उसमें पुराने जमाने से कला और लोकप्रियता के बीच कहीं विरोध और कहीं एकता की स्थितियाँ मिलती रही हैं। आधुनिक काल में दूसरे कला माध्यमों की तरह उस पर एक ओर व्यावसायिकता हावी हुई है तो दूसरी ओर व्यावसायिकता से बचने के लिए कलात्मक प्रयोगधर्मिता की प्रवृत्ति बढ़ी है।''[34]

वर्तमान समय में संस्कृति उद्योग के विस्तार से सोशल मीडिया का प्रभाव व्यापक हुआ है। फेसबुक, ट्विटर, यू-ट्यूब का दबदबा सबसे अधिक है। इसने पूरे विश्व को एक वैश्विक ग्राम में बदल दिया है। आज संकट संस्कृति पर है। लोक संस्कृति पर भी बाजारवाद, पूँजीवाद का असर गहरा हुआ। अभिजन की संस्कृति हो या लोक संस्कृति हो, सभी अपना मूल स्वरूप खोकर लोकप्रिय संस्कृति में बदलने की ओर अग्रसर है। ऐसे में जरूरी हो जाता है कि लोक संस्कृति का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाए। लोकभाषा, लोक कला, लोक नृत्य, लोक संगीत आदि का सार्थक एवं रचनात्मक उपयोग करते हुए लोकप्रिय संस्कृति के खतरों को कम किया जाए। तभी लोक संस्कृति एवं अभिजन संस्कृति विकृत होने से बची रहेगी।

1.4 लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु

लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग और बाजार का साहित्य है। पूँजीवादी समाज व्यवस्था में अन्य उत्पादों की तरह लोकप्रिय साहित्य भी एक उत्पाद है,जिसका बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जाता है। अन्य उत्पादों की तरह इसके भी उत्पादन,वितरण एवं विनिमय की एक पूरी व्यवस्था है। रचना, रचनाकार, पाठक एवं प्रकाशक से मिलकर इसकी एक पूरी व्यवस्था या संरचना बनती है। माना जाता है कि लोकप्रिय साहित्य एक प्रकार से पूँजीवादी समाज व्यवस्था की पतनशील संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। इस सहित्य को बाजारू साहित्य कहा जाता है और आर्थिक लाभ कमाना ही इस साहित्य का उद्देश्य होता है। लेकिन लोकप्रिय साहित्य का

[34] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 314

एक रूप जिसे नेशनल पॉपुलर या राष्ट्रीय या जातीय लोकप्रिय साहित्य कहा जाता है,की रचना के पीछे राष्ट्रीय या जातीय उद्देश्य होते हैं।

जहाँ तक लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की बात है तो उसे बाजारू, कूड़ा-कचरा, अधकचरा, सतही आदि कहकर उसे साहित्य से खारिज नहीं किया जा सकता। फिर लोकप्रिय साहित्य के दूसरे रूप जिसे नेशनल पॉपुलर कहते हैं, उसकी महत्ता को बिना समाजशास्त्रीय विश्लेषण के समझा ही नहीं जा सकता। लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी समाज व्यवस्था की एक वास्तविकता है, साहित्य से उसे खारिज करना एक सामाजिक वास्तविकता की खतरनाक उपेक्षा होगी। लोकप्रिय साहित्य के विश्लेषण से ही पूँजीवादी समाज व्यवस्था के विचारधारात्मक स्वरूप, उसकी संस्कृति के एक रूप और उसमें मनुष्य की दशा या दुर्दशा को समझा जा सकता है। साहित्य के समाजशास्त्र के विभिन्न विचारधाराओं के समाजशास्त्रियों ने अपने-अपने ढंग से लोकप्रिय साहित्य का विश्लेषण कर उसकी अंतर्वस्तु एवं उसके सामाजिक संदर्भ एवं अभिप्राय को समझने की कोशिश की है।

लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु को समझने के लिए अनुभववादी समाजशास्त्रियों ने सबसे अधिक प्रयास किए हैं। अनुभववादी समाजशास्त्री लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु को समझने में सफल भी रहे हैं। इसका कारण यह है कि अनुभववादी समाजशास्त्री लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु को समझने में इंद्रियबोध, प्रतीती और अनुभव को महत्त्व देते हैं, जिससे लोकप्रिय साहित्य के सामाजिक संदर्भ, अस्तित्व और पाठकीय प्रभाव की विवेचना करने में आसानी होती है। जिसके कारण लोकप्रिय साहित्य के सामाजिक अस्तित्व और उसकी व्यवस्था- उत्पादन, वितरण और उपयोग की दशाओं, स्थितियों और परिणतियों का विश्लेषण कर उसकी अंतर्वस्तु का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन कर लिया जाता है। अमेरिका में लोकप्रिय साहित्य का सबसे अधिक विकास हुआ, जिसके विश्लेषण में अनुभववादी समाजशास्त्री आगे रहे।

लियो लाथवेंल का विश्लेषण इसी पर आधारित है। अमेरिका में लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु के विश्लेषण के संबंध में मैनेजर पाण्डेय ने लियो लाथवेंल को उद्धृत किया है- ‘‘अमेरिका में साहित्य का समाजशास्त्र कमोबेश अंतर्वस्तु विवेचन तक सीमित है। उसका लक्ष्य पाठकों पर लोकप्रिय साहित्य के प्रभाव की खोज है, जिसमें उसने व्यावसायिक और प्रचारात्मक पक्षों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसमें व्यवहारवादी पद्धति का प्रयोग होता है जो अनैतिहासिक है।’’[35]

साहित्य के अनुभववादी समाजशास्त्र का विकास दो दिशाओं में हुआ- एक, संस्थागत विश्लेषण और दूसरा, संस्कृति का उत्पादनपरक परिप्रेक्ष्य। ये दोनों पद्धतियाँ एक-दूसरे के विरोधी न होकर पूरक हैं। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ‘‘संस्थागत विश्लेषण का दृष्टिकोण कुछ पुराना है। फ्रांस और अमेरिका में इसका अधिक विकास हुआ है। इसके अनुसार लोकप्रिय साहित्य का स्वरूप और उसकी अंतर्वस्तु बहुत कुछ सामाजिक संदर्भ से निर्धारित होती है। इसलिए लोकप्रिय साहित्य के उतपादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रिया में शामिल संस्थाओं की कार्य पद्धति और विचारधारा के विश्लेषण से ही लोकप्रिय साहित्य के स्वरूप की पहचान हो सकती है। इस दृष्टिकोण के समाजशास्त्री पीरे वोर्डिए के अनुसार आधुनिक काल में संस्कृति की दुनिया ‘प्रतीकात्मक वस्तुओं का बाजार’ है और लोकप्रिय साहित्य इस बाजार के लिए बड़े पैमाने पर उतपादित होता है। वोर्डिए प्रकाशन, पुस्तक बाजार, पुस्तकालय आदि को लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन, वितरण और उपभोग को प्रभावित करने वाली संस्थाएँ कहते हैं।’’[36]

संस्कृति के उत्पादनपरक परिप्रेक्ष्य में लोकप्रिय साहित्य के आर्थिक और संगठनात्मक पक्षों का विश्लेषण किया जाता है। कुछ समाजशास्त्री इसमें लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन प्रक्रिया में निहित राजनीतिक और विचारधारात्मक अभिप्रायों पर भी ध्यान देते हैं। संस्कृति का

[35] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 317

[36] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 317

उत्पादनपरक परिप्रेक्ष्य यह विश्लेषित करने का काम करता है कि कलात्मक और लोकप्रिय साहित्य का स्वरूप उस सामाजिक, कानूनी और आर्थिक परिवेश से प्रभावित होता है, जिसमें साहित्य का निर्माण, संपादन, प्रकाशन, व्यापार, खरीद-बिक्री और मूल्यांकन आदि का काम होता है। लोकप्रिय साहित्य के रूप और अंतर्वस्तु के परिवर्तन और विकास की सीमाएँ निर्धारित करने वाले छ: महत्त्वपूर्ण तत्वों की चर्चा रिचर्ड पेटरसन की की है- टेक्नोलॉजी, कानून, प्रकाशन, व्यवस्था की औद्योगिक संरचना, प्रकाशन व्यवस्था का सांगठनिक ढाँचा, पुस्तक व्यवसाय में लगे व्यक्तियों का पेशागत जीवन और पुस्तक बाजार। इन सबके मिले-जुले प्रभाव से साहित्य की दुनिया प्रभावित होती है। लेकिन यह पद्धति लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन में अधिक उपयोगी नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु और रूप का विवेचन संभव नहीं है। अधिक से अधिक यह उनके परिवर्तन और विकास के कुछ पहलू उजागर कर सकता है।

लोकप्रिय साहित्य के अनुभववादी समाजशास्त्र के मुख्य सरोकार दो हैं। एक है बाजार की वस्तु के रूप में पुस्तक और दूसरा है उस वस्तु का उपभोक्ता पाठक समुदाय। यही कारण है कि अनुभववादी समाजशास्त्र में चर्चा या तो प्रकाशन व्यवस्था की होती है या फिर पाठकों की मानसिकता की। इस पद्धति में लोकप्रिय साहित्य का अध्ययन तीन स्तरों पर किया जाता है। पहले स्तर पर लोकप्रिय साहित्य की पुस्तकों का अध्ययन होता है, जिनका उत्पादन औद्योगिक प्रक्रिया से होता है। दूसरे स्तर पर उन संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है जो पुस्तकों के प्रकाशन और वितरण में सक्रिय होती है। तीसरे स्तर पर पाठक समुदाय का अध्ययन होता है, जो उन लोकप्रिय पुस्तकों का उपभोक्ता होता है।

अनुभववादी समाजशास्त्रियों के बाद लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु के विश्लेषण में संरचनावादी समाजशास्त्रियों का विश्लेषण देखना समीचीन जान पड़ता है। संरचनावादी समाजशास्त्रियों में रोलावार्थ विशेष हैं और उनकी पुस्तक 'माइथोलॉजीज' इस दृष्टि से

उल्लेखनीय कृति है। रोलावार्थ के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के संबंध में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि- ''वार्थ ने दैनिक जीवन की सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रतीयमान अर्थ के समकालीन रूप का विश्लेषण किया है। वार्थ संस्कृति के बाहरी रूप और अर्थ का ही विश्लेषण करते हैं, उसमें किसी निहित यथार्थ, चेतना और अर्थ की खोज नहीं करते। उनके लिए भाषा ही सब कुछ है।[37]'' कहने का तात्पर्य यह है कि संरचनावादियों ने लोकप्रिय संस्कृति के विभिन्न रूपों का विश्लेषण किया है। उन्होंने लोकप्रिय संस्कृति के एक रूप लोकप्रिय साहित्य का भी विश्लेषण किया। लेकिन इस क्रम में वे अपना पूरा ध्यान कृति के बाहरी रूप और अर्थ पर ही रखते हैं। वे कृति में निहित यथार्थ, चेतना और अर्थ को विश्लेषित करने का प्रयास नहीं करते। उनके विश्लेषण का वस्तु कृति की भाषा है और उसी को सब कुछ मानकर संस्कृति के बाहरी रूप और अर्थ का विश्लेषण करते हैं।

लोकप्रिय संस्कृति के विभिन्न रूपों का अध्ययन संकेत विज्ञान (सेमियाटिक्स) की दृष्टि से भी किया गया है। संकेत विज्ञान में सांस्कृतिक वस्तु एक संकेत (साइन) होता है। इसके तहत सांस्कृतिक वस्तु के अर्थ ने मनोवैज्ञानिक और सामाजिक आधारों की खोज की जाती है। ''उस अर्थ के सृजन, संप्रेषण और विचारधारात्मक नियंत्रण की प्रक्रिया का विवेचन इसका लक्ष्य है। इसकी मान्यता है कि कोई भी सांस्कृतिक वस्तु, लोकप्रिय साहित्य की कोई रचना सभी पाठकों को एक ही अर्थ नहीं देती। अर्थ-बोध की इस विभिन्नता के अनेक कारण हैं। संकेत विज्ञान की पद्धति के सहारे लोकप्रिय साहित्य की रचनाओं में निहित अर्थ की अनेकता और पाठकों के अर्थ बोध की अनेकता का विश्लेषण हो सकता है। इसमें रचना के पाठ विश्लेषण और उसके बोध के विश्लेषण पर जोर दिया जाता है। संकेत विज्ञान के विचारकों की राय है कि लोकप्रिय

[37] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं.318

साहित्य के पाठकों को जितना निष्क्रिय समझा जाता है उतना वह होता नहीं है, बल्कि वह पर्याप्त सक्रिय और सर्जनात्मक होता है।''[38]

लोकप्रिय साहित्य के विश्लेषण के अनुभववादी, संरचनावादी और संकेत विज्ञानवादी दृष्टिकोणों में एक समानता देखने को मिलती है, वह यह कि ये सभी साहित्य के वस्तुपरक विश्लेषण के नाम पर हर तरह के मूल्य निर्णय से बचते हैं। समाज में लोकप्रिय साहित्य के प्रयोजन, प्रभाव और भूमिका का विश्लेषण करने वाले आलोचक मानते हैं कि लोकप्रिय साहित्य भावात्मक दृष्टि से हानिकारक होता है, वह जीवन में पलायनवाद को बढ़ावा देता है, वह राजनीतिक दृष्टि से रूढ़िवादी होता है, पाठक को निष्क्रिय तथा व्यक्तिविहीन बनाता है और कलात्मक साहित्य के बोध की क्षमता का नाश करता है। जबकि लोकप्रिय साहित्य के समर्थक समाजशास्त्री इन सब बातों का खंडन करते हैं। जॉन हॉल के लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ''लोकप्रिय साहित्य का पाठक निष्क्रिय भोक्ता नहीं होता, वह रचनाओं के बीच चुनाव करता है।''[39] लेकिन यह तर्क भ्रामक है क्योंकि लोकप्रिय साहित्य के पाठकों के सामने बाजारू लोकप्रिय साहित्य के रचनाओं के बीच ही चुनाव करना होता है। ''जॉन हॉल यह नहीं मानते कि लोकप्रिय साहित्य राजनीतिक दृष्टि से प्रतिक्रियावादी होता है। वे कहते हैं कि अपराध संबंधी अनेक उपन्यासों में प्रचलित न्याय व्यवस्था पर चोट होती है। एक तो ऐसी स्थितियाँ अपवाद रूप में ही मिलती हैं। दूसरे अराजकता प्रगतिशील नहीं होती। जॉन हॉल की राय में लोकप्रिय साहित्य कलात्मक साहित्य के ग्रहण की क्षमता नष्ट नहीं करता, बल्कि उसकी जरूरत महसूस कराता है। यही नहीं, लोकप्रिय साहित्य की बिक्री से प्राप्त पूँजी से कलात्मक साहित्य का प्रकाशन संभव होता है। यह तो वही बात हुई कि वेश्यावृत्ति को बनाए रखना चाहिए क्योंकि एक तो वेश्याओं के कारण ही बाकी स्त्रियों को

---

[38] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 318

[39] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 318

सतीत्व का महत्त्व मालूम होता है और दूसरे उससे राजकोष की आय बढ़ती है, जिससे समाज कल्याण के कार्यों पर खर्च किया जाता है।''[40]

लोकप्रिय साहित्य के मार्क्सवादी विश्लेषण में अनुभववादियों एवं संरचनावादियों से अधिक सामाजिक चिंता और अंतर्दृष्टि देखने को मिलता है। कार्ल मार्क्स ग्राम्शी, अर्नेस्ट मेंडल, अडोर्नो और लियो लाथवेंल आदि मार्क्सवादियों ने लोकप्रिय साहित्य के विश्लेषण और मूल्यांकन का कार्य किया है। कार्ल मार्क्स ने लोकप्रिय साहित्य की केन्द्रीय विधा अपराध संबंधी उपन्यासों में एक प्रसिद्ध उपन्यास 'मिस्ट्रीज ऑफ पेरिस' की विस्तृत और विश्वसनीय विवेचन और मूल्यांकन किया है। 'मिस्ट्रीज ऑफ पेरिस' यूजेन सुई का उपन्यास है और यह उपन्यास 1842-43 में फ्रेंच की एक पत्रिका में धारावाहिक रूप में छपा था। पुस्तकाकार प्रकाशित होने पर पूरे यूरोप में इसकी धूम मच गई। यूरोप की लगभग सभी भाषाओं में इसके अनुवाद छपे, लंबी चौड़ी समीक्षाएं छापी गयीं। इसकी लोकप्रियता इतनी हो गई थी कि महान रचनाकार बाल्जाक को भी इससे ईर्ष्या होने लगी थी। एंगेल्स ने भी इसकी चर्चा की है। ग्राम्शी ने भी इसका कई बार उल्लेख किया है। मार्क्स ने अपने पूरे साहित्य चिंतन में इसी एक रचना का संपूर्ण विवेचन और विश्लेषण किया है।

मार्क्स के अनुसार 'मिस्ट्रीज ऑफ पेरिस' भलाई के बहाने बुराई का प्रचार-प्रसार करता है। यह उपन्यास लोकप्रिय इसलिए हुआ कि इसमें पाठक ऊपरी तौर पर नैतिकता का बाना धारण किए हुए रहता है, जबकि भीतर-भीतर अपनी क्षुद्र भावनाओं में डूबकर मजा लेता रहता है। उपन्यासकार इसमें समाज की प्रचलित नैतिकता को स्वीकार करते हुए पर-पीड़न की प्रवृत्ति को उकसाने में सफल हैं। इसमें क्रूरता, निर्मम भावना आदि का उत्सवधर्मी वर्णन किया गया है। मार्क्स का मानना है कि उपन्यासकार जिस जीवन के रहस्यों को खोलने का दावा करता है,

[40] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 319

उसका उसे प्रामाणिक ज्ञान नहीं है। उपन्यासकार पाठकों के पूर्वाग्रह के आगे झुकता चलता है। वह समाज की वास्तविकता को बुर्जुआ वर्ग के पाठकों की दृष्टि से देखता है। वह समाज की वास्तविकता का चित्रण करने में रुचि नहीं लेता, बल्कि उस पर अपने पात्रों के माध्यम से भाषण देता है। उपन्यासकार की ईमानदारी अपनी कला के प्रति नहीं है। उसकी चिंता अपने पाठकों के मनोरंजन करने की है। इसलिए यह उपन्यास सतही बन जाता है। मार्क्स ने अपराध और अपराध संबंधी उपन्यास का गंभीर विश्लेषण किया। उन्होंने अपराध की सामाजिक भूमि और भूमिका का जो विश्लेषण किया है, उसकी मदद से लोकप्रिय साहित्य के जासूसी उपन्यासों का मार्क्सवादी समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया जा सकता है।

ग्राम्शी ने लोकप्रिय संस्कृति के विभिन्न पक्षों और रूपों, विधाओं और रचनाओं का विश्लेषण करते हुए लोकप्रिय संस्कृति के मार्क्सवादी समाजशास्त्र के निर्माण की दृष्टि और पद्धति का विकास किया है। वे लोकप्रिय साहित्य को दो स्तरों पर देखते हैं- एक स्तर पर वे जातीय लोकप्रियता जिसे राष्ट्रीय लोकप्रियता भी कहा जाता है, को रखते हैं। यहाँ लोकप्रियता केवल साहित्यिक धारणा नहीं होती, बल्कि वह सांस्कृतिक और राजनैतिक धारणा होती है, जिसमें लेखक और जनता के बीच विश्वदृष्टि की एकता बुनियादी शर्त होती है। दूसरे स्तर पर ग्राम्शी ने व्यावसायिक रूप में सफल बाजारू लोकप्रिय साहित्य और कला के विभिन्न रूपों और रचनाओं का विश्लेषण करते हैं। उनका लोकप्रिय साहित्य को लेकर कुछ सवाल थे- ''आखिर क्यों ये पुस्तकें सबसे अधिक पढ़ी जाती है और प्रकाशित होती है? ये पुस्तकें पाठकों की किन मानसिक आवश्यकताओं को पूरा करती है और किन आकांक्षाओं को संतुष्ट करती है? इस साहित्य में ऐसी कौन-सी भावनाएँ और प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं जो पाठकों को इतना पसंद आती हैं?''[41] ग्राम्शी ने तरह-तरह के लोकप्रिय उपन्यासों- जासूसी, प्रेमपरक, अपराध संबंधी,

[41] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 325

विज्ञान संबंधी, धारावाहिक आदि के साथ रंगमंच ओपेरा, नाटक और कविता का भी विश्लेषण किया है। मैनेजर पाण्डेय ने लोकप्रिय साहित्य के अधिक पढ़े जाने के कारणों की चर्चा करते समय ग्राम्शी के लोकप्रिय साहित्य के विश्लेषण को उद्धृत किया है- ''लोकप्रिय साहित्य के अधिक पढ़े जाने का एक कारण यह है कि उसमें मानवीय भावों की तात्कालिकता होती है जो पाठकों के मन को जल्दी छूती है। दूसरा कारण आधुनिक समाज में जीवन की स्थितियाँ हैं। प्राय: लोग जीवन की व्यवस्थाबद्धता, जकड़-बंदी और आरोपित अनुशासन से मुक्त होने के लिए फैंटेसी और सपनों का सहारा लेते हैं जे इन उपन्यासों में बहुतायत से मिलते हैं। कुछ लोग जीवन में अनिश्चय और आशंका का सामना करते हैं तो साहित्य में आश्वासन और स्थिरता की खोज करते हैं। यही नहीं, जीवन में भद्दी और अश्लील साहसिकता का सामना करने वाले साहित्य में सुन्दर साहसिक अभियानों की कथाओं में रस लेते हैं।''[42] लोकप्रिय साहित्य के अंतर्गत लोकप्रिय कविता की अंतर्वस्तु पर भी विचार करना समीचीन है। जिस कविता में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति होती है, वे कविताएँ समाज में खूब पढ़ी एवं सुनी जाती है। इन कविताओं की लोकप्रियता का कारण राष्ट्रीय-सांस्कृतिक भावों की अभिव्यक्ति होती है, जो लोगों को भावनात्मक स्तर पर उनसे जोड़ती है। इसी प्रकार प्रकृतिपरक कविताएँ लोगों को भावनात्मकता पर प्रकृति के साथ उनका तादात्मय स्थापित करती हैं। जिससे समाज का जुड़ाव प्रकृतिपरक कविताओं से होता है। जन प्रतिबद्ध एवं प्रगतिशील कविताएँ शोषण से मुक्ति एवं समाज में समानता की भावना से परिपूर्ण होती है। समाज में व्याप्त असमानता, अशिक्षा, गरीबी को खत्म करने की बात इन कविताओं में की जाती है। समाज में व्याप्त विषमता के कारण ही ये कविताएँ लोकप्रिय होती है। समाज में प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन का विशेष महत्त्व रहा है। समाज का युवा वर्ग एवं रसिक वर्ग इसकी प्रेमी रहा है। यही कारण है कि प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन की

[42] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - डॉ. मैनेजर पाण्डे, पृ.सं. 326

अभिव्यक्ति से परिपूर्ण कविताएँ लोकप्रिय रही हैं। अस्मितावादी विमर्श के जोर पकड़ने पर स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श आदि पर आधारित कविताएँ समाज में लोकप्रिय हो रही हैं। हास्य, व्यंग्य, मनोरंजन एवं कोरी भावुकता से परिपूर्ण कविताएँ भी लोकप्रिय रही हैं। इन कविताओं की लोकप्रियता का कारण भावों की तात्कालिकता में निहित है।

अडोर्नो ने बाजारू लोकप्रिय कला और साहित्य के उत्पादन, वितरण, विक्रय और उपभोग की पूरी प्रक्रिया को संस्कृति का उद्योग कहा है। संस्कृति का उद्योग छद्म चेतना पैदा करता है। उसमें वस्तु से अधिक उसके प्रभाव का महत्त्व हो जाता है। यही नहीं कलात्मक कला और कृतियों की अनेक प्रवृत्तियों और विशेषताओं को विकृत कर तोड़ा मरोड़ा जाता है और उसे लोकप्रिय बनाकर बाजार के अनुकूल किया जाता है।

लाथवेंल लोकप्रिय साहित्य को 'विचारधारा' मानते हैं और विचारधारा को केवल छद्म चेतना। इसलिए उनकी नजर में लोकप्रिय साहित्य एक सामाजिक भ्रम है। उनका मानना है कि लोकप्रिय साहित्य बुर्जुआ व्यवस्था में व्यक्ति के आत्मविसर्जन को बढ़ाने वाला साहित्य है, जिसका उद्देश्य है व्यापक समाज की चेतना को व्यवस्था के अनुकूल बनाना, उनमें संघर्ष और विरोध की जगह सहमति और स्वीकार की आदत डालना। लोकप्रिय साहित्य पाठक समुदाय की कल्पना को कुंद करके उसके कलात्मक अनुभव की क्षमता को नष्ट करता है। इस साहित्य के माध्यम से कल्पना का संगठन और शासन समाज पर नियंत्रण करने वाली शक्तियों के हाथों में होता है। उनका कहना है कि कल्पना का अंत मनुष्य की स्वतंत्रता का अंत है और लोकप्रिय साहित्य कल्पना के अंत का एक प्रमुख साधन है।

अर्नेस्ट मैंडल ने मार्क्सवाद के ऐतिहासिक भौतिकवाद की मदद से जासूसी-अपराध कथा उपन्यासों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया है। उनका मानना है कि जासूसी उपन्यासों के पीछे सदाचारी डाकुओं की पुरानी लोकप्रिय कथाओं की परंपरा है। लेकिन पूँजीवादी व्यवस्था के

विकास में बड़े शहरों का विकास किया और बुर्जुआ वर्ग को अपराधियों का सामना करना पड़ा। जासूसी उपन्यासों में पूँजीवादी व्यवस्था, उसके शासन तंत्र और पुलिस तंत्र की निर्ममता और रहस्यमयता की अभिव्यक्ति है। पाठक इसलिए इसके प्रति आकर्षित होता है कि समाज ने शासन तंत्र के भीतर रहस्यमयता का जाल फैला है, क्रूरता और निर्ममता है और पाठक उसमें डूबकर अपनी ऊब से मुक्त होना चाहता है। मैंडल इसे बीमार समाज का लक्षण मानते हैं। जो सुख और मानसिक शांति के लिए हत्या, लूट और बलात्कार का वर्णन, चित्रण खोज-खोज कर पढ़ते हैं।

मार्क्सवादी साहित्य चिंतन की परंपरा में लोकप्रिय साहित्य के प्रति उपेक्षा का भाव ही अधिक रहा है। लेकिन अब लोकप्रिय साहित्य की सत्ता को स्वीकार करते हुए जनता के सांस्कृतिक अनुभव की वस्तु और पूँजीवादी समाज की वास्तविकता के रूप में उसका विश्लेषण किया जा रहा है।

1.6 लोकप्रिय साहित्य का रूपविधान

साहित्य का एक रूप लोकप्रिय साहित्य होता है। लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में रूप विधान पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। जबकि लोकप्रिय साहित्य के बाजार, पाठक और प्रकाशक के बीच लोकप्रिय होने का कारण लोकप्रिय साहित्य का रूप भी रहा है। साहित्य के समाजशास्त्र में रूप-पक्ष के समाजशास्त्रीय विश्लेषण विकसित न हो पाने पर मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ‘‘लोकप्रिय कला और साहित्य के विभिन्न रूपों के सामाजिक-ऐतिहासिक अस्तित्व का विवेचन हुआ है, उसकी अंतर्वस्तु के सामाजिक अभिप्रायों की खोज हुई है और उसके पाठकों-दर्शकों की संख्या, रुचि, सामाजिक स्थिति आदि का विश्लेषण भी हुआ है, लेकिन आश्चर्य की बात है उसके रूप-पक्ष की कोई खास चर्चा नहीं हुई है।’’[43] आखिर क्या कारण है कि एक ही विषय पर लिखे गये दो उपन्यासों में से एक सामान्य पाठकों में

[43] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 329

लोकप्रिय होता है और दूसरा केवल कला-मर्मज्ञों के काम आता है। लोकप्रिय कला और साहित्य के रूप की विशेषताओं को समझे बिना उसकी लोकप्रियता के रहस्य को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। रूप केवल अंतर्वस्तु को रूपायित ही नहीं करता है, उसको रूपांतरित भी करता है। एक ही विषय का कलात्मक साहित्य में जो रूप होता है, वही लोकप्रिय साहित्य में नहीं रहता।

लोकप्रिय कला और साहित्य का रचनाकार अपनी रचना का उद्देश्य जानता है, साथ ही वह पाठकों, दर्शकों की आकांक्षाओं को भी पहचानता है। इसलिए वह अपने दर्शकों-पाठकों की रुचि, मांग और जरूरत के अनुरूप कला और साहित्य का निर्माण करता है। इसी से वह अपने विषय का चुनाव और रचना का रूप निर्धारित करता है। लोकप्रिय लेखकों द्वारा ऐसे विषयों का चुनाव किया जाता है जो जनमानस में पहले से किसी न किसी रूप में मौजूद हों। यही कारण है कि वह या तो लोक प्रचलित कलाओं को अपनाता है या फिर तात्कालिक घटनाओं को। उदाहरण के तौर पर हाल के वर्षों में हिन्दी में ऐसे उपन्यासों को देख सकते हैं जो अनुभव की तात्कालिकता से प्रभावित होकर लिखा गया है। हाल के वर्षों में दहेज के लिए स्त्रियों को जलाकर मार डालने की घटनाएँ बढ़ी हैं, विवाहेत्तर काम और प्रेम संबंधों की प्रवृत्ति बढ़ी है तो इन विषयों पर ऐसे अनेक लोकप्रिय उपन्यास लिखे गये हैं, जिनमें स्त्रियों पर तरह-तरह के अत्याचार दिखाए गए हैं।

लोकप्रिय साहित्य के रूप की एक दूसरी विशेषता उसकी सरलता है। यह सरलता विषय के चुनाव, कथा की संरचना, पात्रों के चरित्र और भाषा आदि के स्तर पर मिलती है। लेकिन जो व्यक्ति मनोरंजन या समय काटने के लिए फिल्म देखने या उपन्यास पढ़ने वाला व्यक्ति है, उसके लिए सरलीकरण का कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन अन्य पाठक वर्ग या दर्शक वर्ग के लिए सरलीकरण का महत्त्व है। इसलिए लोकप्रिय साहित्य के प्रकाशन पुस्तकों को संपादित कराकर

उसका सरलीकरण भी करते हैं। पाठकों की रुचि और मांग के अनुसार लिखने के कारण अक्सर लोकप्रिय साहित्य के लेखक को अपनी पूरी योजना भी बदलनी पड़ जाती है। मांग और रुचिके अनुसार लिखने से इनका लेखन फार्मूलाबद्ध हो जाता है। लेकिन पाठकों की रुचि बनाए रखने के लिए समय-समय पर नए फार्मूले भी खोजने पड़ते हैं। लोकप्रिय साहित्य के उपन्यासों का शीर्षक ऐसा रखा जाता है जो उत्सुकता और कुतूहल जगाये, साथ ही उसमें कुछ-कुछ रहस्य और चमत्कार का आभास भी हो। समाज में लोकप्रिय कविताओं को देखें तो समाज में वैसी कविताएँ विशेष तौर पर लोकप्रिय हुई है, जो सहज, सरल एवं बोधगम्य रहे हैं। कविता की संप्रेषणीयता समाज में लोगों की पहली पसंद होती है। कविता की लोकप्रियता कविता की भाषा, शब्द, छंद, तुक, लय, गेयता एवं संगीत तत्व की उपस्थिति से प्रभावित होती रही है। समाज उन कविताओं को खूब पसंद करता है, जिनमें भाषा की सरलता, शब्दों की सहजता, छंदयुक्तता, तुकबंदी हो, लयमय हो, गेय हो एवं उसमें संगीत हो।

लोकप्रिय साहित्य में शैली और भाषा की सहजता पर विशेष जोर होता है। ऐसे साहित्य में शैली संबंधी प्रयोगों के लिए छूट न के बराबर होती है और यहाँ साहित्यिक भाषा का भी प्रयोग नहीं चलता। देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों की लोकप्रियता का एक कारण उसकी भाषा भी है। उन्होंने ऐसी भाषा का चुनाव किया जो हिन्दी और थोड़ी उर्दू पढ़े लोग समझ लें। वहीं उसी समय वे दूसरे साहित्यकार किशोरीलाल गोस्वामी अपनी भाषा के कारण लोकप्रिय नहीं हुए, क्योंकि वे उर्दू की ओर झुकते थे तो उर्दू-ए-मुअल्ला लिखते थे और हिन्दी लिखते थे समास बहुल संस्कृत। लोकप्रियता के लिए यह प्रवृत्ति उपयुक्त नहीं थी। लोकप्रिय उपन्यासों की भाषा सहज, सीधी, ठेस, ठोस, बोलचाल के करीब और चलती हुई भाषा होती है। भाषा की बारीकी, कारीगरी और चमत्कारिता के लिए यहाँ गुँजाइश न के बराबर होती है। लोकप्रिय साहित्य के लेखक अपने पाठकों के सामाजिक जीवन और वर्गीय स्थितियों को ध्यान में रखकर ही शैली

और भाषा का प्रयोग करते हैं। अपने जीवन की भाषा और बोलचाल ने ढंग की शैली वाली रचना की ओर पाठक अधिक आकर्षित होता है। यही कारण है कि व्यावसायिक फिल्मों के संवाद और लोकप्रिय साहित्य व्यापक जनता के बोलचाल हिन्दी में लिखे जाते हैं, जबकि कलात्मक और गंभीर साहित्य के लिए मध्य वर्ग की हिन्दी को अपनाया जाता है। लोकप्रिय कविता की लोकप्रियता में कविता की शिल्प या बुनावट की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण होती है। कविता की लोकप्रियता उसकी शैली से प्रभावित होती है। लोकप्रिय कविता में मिथक, बिंब, प्रतीक आदि के प्रयोग से उसकी लोकप्रियता के शिल्प तत्व को समझा जा सकता है। शब्दों के चयन एवं उनके उतार-चढ़ाव से उसकी लयात्मकता, लोच एवं संगीत तत्व को समझा जा सकता है। कविता की लोकप्रियता में लोक में प्रचलित शैली का भी प्रयोग देखने को मिलता है। इस तरह लोकप्रियता के पीछे भाषा के विभिन्न रूपों की भूमिका रही है।

द्वितीय अध्याय

कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के लिए कविता के समाजशास्त्र को समझना होगा। साहित्य की सभी विधाओं में कविता सबसे प्राचीन एवं लोकप्रिय विधा रही है। आधुनिक युग से पहले का समय कविता का ही रहा है। विश्व में सृजनात्मक अभिव्यक्ति का आरंभ कविता से ही माना जाता है। कहा जाता है कि मनुष्य ने अपने सुख-दु:ख की अभिव्यक्ति के लिए सर्वप्रथम कविता को ही चुना। आदिकवि वाल्मीकि के द्रवित हृदय ने सर्वप्रथम श्लोक के माध्यम से ही करुणामय दु:ख की अभिव्यक्ति की। कविता का जुड़ाव समाज से रहा है। समाज का असर कविता पर रहा है तो कविता का असर भी समाज पर रहा है। कविता जनमानस पर असर पैदा करती रही है। वह अपने श्रोताओं एवं पाठकों में बेचैनी पैदा कर उन्हें अधिक मानवीय एवं संवेदनशील बनाने के प्रति सदैव प्रयत्नशील रही है। प्रयाण गीत तो जन-जन में जोश का संचार करने के लिए प्रसिद्ध ही रहे हैं। अत: कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के लिए कविता के समाज से जुड़ाव एवं उसके अंतर्संबंधों की पड़ताल आवश्यक है। साथ ही कविता की संवेदनशीलता एवं उसके महत्त्व को समझना होगा। और देखना होगा कि कविता की लोकप्रियता के कारण क्या रहे हैं। इसके साथ ही यह भी देखना होगा कि क्या समय के साथ कविता की लोकप्रियता में कमी आयी है।

2.1 कविता की लोकप्रितया के विविध कारण

जब कविता की लोकप्रियता की बात करते हैं तो सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि लोकप्रियता कोई स्थिर और स्थायी नहीं होती है। समय के साथ किसी रचना की लोकप्रियता बढ़ जाती है तो किसी रचना की लोकप्रियता घट जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि रचनाओं की लोकप्रियता घटती-बढ़ती रहती है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- "भारतीय साहित्य में प्रगतिशील आंदोलन के कारण हिन्दी में कबीर और उर्दू में नजीर की लोकप्रियता बढ़ी। निराला की कविता का प्रारंभ में मजाक उड़ाया गया और पंत को छायावाद का राजकुमार घोषित कया गया, लेकिन बाद में

पंत की लोकप्रियता क्रमशः घटती गई और निराला की लोकप्रियता अब भी निरंतर बढ़ती जा रही है। आज निराला हिन्दी ही नहीं, भारतीय कविता के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में से एक हैं। अब तो उनकी कविता की लोकप्रियता विश्वव्यापी हो रही है। मुक्तिबोध की स्थिति भी बहुत कुछ निराला जैसी ही है।"[44]

कविता की लोकप्रियता पर चर्चा करने के क्रम में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाजार में अधिक बिकने वाला साहित्य ही लोकप्रिय होता है, ऐसा जरूरी नहीं है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- "बाजार की मांग और बाजारू मानसिकता के अनुरूप लिखा गया साहित्य बाजार में अधिक बिकता है, वह व्यावसायिक दृष्टि से लोकप्रिय भी हो जाता है। ऐसा साहित्य कुछ लोगों के मनोरंजन का साधन होता है और कुछ लोगों के लिए विलास की सामग्री। लेकिन यह व्यावसायिक लोकप्रियता सीमित होती है।"[45] सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद जैसे कवियों की कविताओं को बार-बार पढ़ा जा रहा है, जबकि हास्य, व्यंग्य जैसी कविताएँ, जो व्यावसायिक दृष्टि से सफल थी, आज मुश्किल से उपलब्ध हैं।

कविता की लोकप्रियता पर बात करने के संबंध में कविता की तात्कालिक लोकप्रियता और कालजयी लोकप्रियता में फर्क करना जरूरी है। तात्कालिक व्यावसायिकता के सहारे कुछ कविताएँ लोकप्रिय हो जाती हैं। ऐसी कविताएँ कवि-सम्मेलनों और व्यावसायिक पत्रिकाओं के सहारे बाजारू लोकप्रियता प्राप्त तो कर लेती है, लेकिन कुछ समय बाद वे अपनी अर्थवत्ता खो देती हैं और उन्हें कोई नहीं पढ़ता। कालजयी कविताएँ समय के साथ निरंतर लोकप्रिय होती जाती हैं।

जब हम कविता की लोकप्रियता की बात करते हैं तो विचारणीय है कि लोकप्रियता पर भी चर्चा कर ली जाए। विद्वानों ने लोकप्रियता के संबंध में कथारूपों की चर्चा अधिक की है, कविता की कम। इसका कारण यह है कि ज्यादातर कथा-साहित्य ही लोकप्रिय होता है। कविताएँ कम ही लोकप्रिय होती हैं। कोई-कोई कविता ही लोकप्रिय हो पाती है। अगर कोई कवि लोकप्रिय है तो जरूरी

---

[44] शब्द और कर्म - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 117-118

[45] शब्द और कर्म - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 115

नहीं है कि उसकी सभी कविताएँ भी लोकप्रिय हों। कभी ऐसा भी होता है कि किसी कवि की कोई रचना लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच जाती है फिर उस कवि की अन्य रचनाएँ उस लोकप्रिय रचना के नीचे दब-सी जाती है। उदाहरण के लिए हरिवंश राय 'बच्चन' की एक रचना 'मधुशाला' लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच गयी। उसके बाद उनकी कई रचनाएँ आईं, लेकिन वे रचनाएँ 'मधुशाला' के नीचे दब-सी गई। उन्हें पहचाना भी गया 'मधुशाला' के कवि के रूप में।

कविता की लोकप्रियता के संदर्भ में यह जानना जरूरी है कि कविता की लोकप्रियता और कविता की श्रेष्ठता में अंतर होता है। जरूरी नहीं है कि जो कविता लोकप्रिय होगी, वह श्रेष्ठ भी होगी। जो कविता श्रेष्ठ है, जरूरी नहीं है कि वह कविता लोकप्रिय भी हो। हम देखें तो जयशंकर प्रसाद की सबसे लोकप्रिय कविता 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से' है, लेकिन वह उनकी सबसे अच्छी कविता नहीं है। लोकप्रियता का पैमाना श्रेष्ठता नहीं है और न ही श्रेष्ठता का पैमाना लोकप्रियता है। ऐसा भी हो सकता है कि कविता लोकप्रिय भी हो और श्रेष्ठ भी।

कविता की लोकप्रियता के क्रम में लोकप्रिय कविता की चर्चा करना भी समीचीन है। कविता की लोकप्रियता और लोकप्रिय कविता में अंतर है। जो कविता जनता में पढ़ी-लिखी जा रही है, वही लोकप्रिय कविता नहीं है। भक्तिकाल के संतों की कविताएँ आम जनता में लोकप्रिय हैं और उन्हें पढ़ा भी जा रहा है लेकिन वह उन संतों की कविता की लोकप्रियता है, लोकप्रिय कविता नहीं। मैनेजर पाण्डेय ने लोकप्रिय कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है- "लोकप्रिय कविता कविता की एक विशिष्ट धारणा है, उसका एक विशेष चरित्र होता है। अपने समय के समाज और जनता की इच्छाओं, भावनाओं, जीवन-उद्देश्यों, जीवन-स्थितियों और संघर्षों की अभिव्यक्ति करने वाली कविता ही लोकप्रिय कविता होती है। लोकप्रिय कविता में जनता की संघर्षशीलता के साथ-साथ उसकी सृजनशीलता की भी अभिव्यक्ति होती है। लोकप्रिय कविता कलाहीन नहीं होती, लेकिन केवल कला की आराधना उसका उद्देश्य नहीं होता। वह जनता के जीवन की कविता होती है और जनता के लिए कविता होती है। लोकप्रिय कविता अपने समय के समाज और जनता की आवाज होती है। एक ऐसी

आवाज, जिसे जनता सुन सके और समझ भी सके।"[46] लोकप्रिय कविता यथार्थवादी होती है, रचना के स्तर पर और शिल्प के स्तर पर भी। लोकप्रिय कविता की रचना का स्वरूप सामाजिक यथार्थ और रचना के भीतर के यथार्थ के संबंध से निर्धारित होता है। रचना के भीतर का यथार्थ सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब होता है, लेकिन दोनों एक नहीं होते। लोकप्रिय कविता के शिल्प में यथार्थवाद के कारण बिंब, प्रतीक और अमूर्तन की संभावना न हो, ऐसी बात नहीं होती। लेकिन उनका विकास यथार्थवादी रचना-दृष्टि के अनुसार ही होता है।

कविता की लोकप्रियता के संदर्भ में यह जानना भी जरूरी है कि लोकप्रियता कला विरोधी नहीं होती है और न ही लोकप्रियता नकारात्मक अवधारणा है। आलोचकों का एक वर्ग ऐसा है जो जनता को भीड़ कहते हैं और लोकप्रियता को कला विरोधी। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- "इनके यहाँ कला, कला के लिए होती है, जनता के लिए नहीं। लेकिन जो रचनाकार जनता को समाज के इतिहास और बुनियादी परिवर्तन की मूल शक्ति मानते हैं और जो साहित्य को बुनियादी परिवर्तन की प्रक्रिया में सहायक समझते हैं, वे कविता लिखते समय या कविता के बारे में सोचते समय जनता की उपेक्षा नहीं कर सकते। वे लोकप्रियता को कविता का आवश्यक गुण मानते हैं।"[47] कविता में से छायावाद की अतिशय कल्पनाशीलता को उतारकर जीवन के यथार्थ से जोड़ने का काम प्रगतिशील कवियों ने किया। प्रगतिशील कवियों ने कविता की लोकप्रियता पर बल दिया और उनकी कविता ने लोकप्रियता पाई भी। साथ ही प्रगतिशील कवियों की कविता लोकप्रिय कविता भी है। प्रगतिशील कवियों की कविता की लोकप्रियता के कारण उनकी कविता को कला विरोधी मानकर खारिज नहीं किया जा सकता।

कविता की लोकप्रियता के विविध पक्षों पर विचार करने के पश्चात कविता की भूमिका जानना आवश्यक है। कविता की भूमिका हमारे जीवन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण रही है। किसी के लिए कविता का मनोरंजन है तो किसी के लिए अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम। किसी के

---

[46] शब्द और कर्म - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 119
[47] शब्द और कर्म - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 118

लिए कविता समय की नब्ज है तो किसी के लिए हर परिस्थितियों से संघर्ष करती समाज की आवाज। कविता बहुत कुछ कहना चाहती है, बशर्ते हम उसे सुनना चाहें। “कम शब्दों में कविता ही इतनी बड़ी बात कह देती है, जो कई बार कहानी, उपन्यास या अन्य विधाएं नहीं कह पाती। कविता अपने समय की सच्चाइयों, संघर्षों को लिए हुई होती है। कविता निरंतर मुठभेड़ करती है। कविता समय के भीतर खो रही संवेदनाओं को पकड़ने का काम करती है।”[48]

ऐसे समय में जब वैश्वीकरण ने पूरे विश्व को एक वैश्विक ग्राम में बदल दिया है। व्यावसायिकता अपने चरम पर है। पूँजीवाद और बाजार ने सबको अपनी गिरफ्त में ले लिया है। सूचनाओं का दौर शुरू हो चुका है। आज सूचना ही महत्त्वपूर्ण बन चुका है। संस्कृति उद्योग जैसे-सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, यू-ट्यूब आदि ने लोगों की रुचि, पसंद, नापसंद आदि को प्रभावित करना शुरू कर दिया है। सूचनाओं के इस दौर में जब लोगों की रुचि, पसंद, नापसंद सब पर नजर रखी जा रही है, वहीं इस वैश्विक ग्राम में जहाँ लोगों के लिए निजी, एकांत जीवन की कल्पना धूमिल होती जा रही है। जहाँ संस्कृति उद्योग के विस्तार से लोगों के पास सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, यू-ट्यूब जैसे माध्यम उपलब्ध हैं। ऐसे कठिन समय में भी कविता समाज में बनी हुई है तो कविता की लोकप्रियता के कारणों की पड़ताल आवश्यक हो जाता है।

कविता की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण राष्ट्रीयता है। आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता की भावना द्विवेदी युग में आकार लेती है और अगले चार दशकों तक (भारत की आजादी तक) हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति बनी रहती है। यद्यपि राष्ट्रीयता की भावना भारतेन्दु युग के कवियों में भी है। भारतेन्दु युग के कवियों की राष्ट्रीयता आलोचनात्मक है। 1857 ई. के विद्रोह के क्रूर दमन से जनता सहमी हुई थी। इसीलिए इस युग के कवि डरी हुई, भय से सिर न हिला सकने वाली जनता से भारतीय समस्याओं के पुनर्विचार का आह्वान करते हैं। इसलिए इस युग के कवि एक ओर

[48] रेतपथ - जुलाई 2014 -- दिसम्बर, 2015, पृ.सं. 7

ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करते हैं तो दूसरी ओर वे भारतीय जनता को अपनी कमजोरियों से परिचित कराते हैं। भारतेन्दु 'भारत भाई' कहकर जनता को संबोधित करते हैं। इस युग के कवि एक ओर ब्रिटिश शोषण की निंदा करते हैं तो दूसरी ओर भारतीय जनता की अकर्मण्यता, अशिक्षा, गरीबी आदि की निंदा। इस युग की राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कई कविताएँ लोकप्रिय हुईं। इस युग की भारतेन्दु की कविता की लोकप्रिय कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

"रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।"[49]

भारतेन्दु की एक मुकरी देखिए -

"भीतर भीतर सब रस चूसै
हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि सज्जन नहिं अंगरेज।"[50]

सन् 1912 ई. में मैथिलीशरण गुप्त ने रचना 'भारत-भारती' की रचना की। 'भारत भारती' को उन्होंने 'मुसद्दस हाली' की ढंग पर रचा था। उनका यह काव्य काफी लोकप्रिय हुआ। उनके इसी काव्य से द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता का विकास होता है। इस काव्य के कारण गुप्त जी भारत की जनता में रच-बस गए एवं राष्ट्रकवि कहलाए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "यह पुस्तक स्वेदश की ममता से पूर्ण नवयुवकों को बहुत प्रिय हुई।"[51]

द्विवेदी युग आजादी के संघर्ष का दौर था। उस समय के राष्ट्रीय नेतृत्व ने जनता में आजादी की आस जगायी तो कवियों ने आजादी की आस को जन-जन तक पहुँचाने का काम किया। कवियों ने अपने क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठकर सामाजिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों को त्यागकर, ऊँच-नीच एवं

---

[49] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाटक 'भारत दुर्दशा' से
[50] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'नये जमाने की मुकरी' से
[51] हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 418

छुआछूत के भेदभाव को मिटाकर सभी भारतीयों को एक होने का आह्वान किया। इस युग की राष्ट्रीयता के सूत्रधार बने मैथिलीशरण गुप्त। नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्या प्रसाद 'हरिऔध', राय देवी प्रसाद 'पूर्ण'- इस समय के महत्त्वपूर्ण कवि हुए। इनकी राष्ट्रीयता का मुख्य तत्व था- परस्पर भेदभाव, ईर्ष्या आदि को त्यागकर आजादी के लिए तत्पर हो जाना। द्विवेदी युग में भारतेन्दु युग की आलोचनात्मक राष्ट्रीयता यहाँ प्रवर्तित होकर आक्रामक रूप अख्तियार कर लेती है। इस युग के कवियों ने अपने अतीत का गुणगान किया है। देश के प्रति इन कवियों का भावुक प्रेम इन्हें जनता में लोकप्रिय बनाती है।

जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' की कविता 'शहीदों की चिताओं पर' इस समय की सर्वाधिक लोकप्रिय कविता है। नंदकिशोर नवल ने लिखा है- " 'हितैषी' जी की गजल क्लासिक का दर्जा प्राप्त कर चुकी हैं, जिसका शेर 'शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले' कभी बच्चों की जुबान पर था।"[52] हितैषी जी की कविता की सबसे अधिक लोकप्रिय पंक्तियाँ देखिए-

"शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।"[53]

छायावाद तक आते-आते राष्ट्रीयता की भावना में बदलाव आता है। जहाँ द्विवेदी युग के कवि आजादी के लिए सीधे-सीधे आत्मोत्सर्ग का आह्वान करते दिखाई देते हैं तो छायावाद के कवि राष्ट्रीयता की भावना को सांस्कृतिक गौरव के माध्यम से अभिव्यक्ति दे रहे थे। इस युग के कवियों की राष्ट्रीयता अपने अंदर विश्व-बंधुत्व की भावना को अपने अंदर समेटे हुए थी।

जयशंकर प्रसाद की राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित लोकप्रिय कविताएँ हैं- 'अरुण, यह मधुमय देश हमारा', 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से', 'शेर सिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि'। 'हिमाद्रि

---

[52] स्वतंत्रता पुकारती - चयन एवं संपादन नंदकिशोर नवल, पृ.सं. 7
[53] स्वतंत्रता पुकारती - चयन एवं संपादन नंदकिशोर नवल, पृ.सं. 137

तुंग श्रृंग से' जयशंकर प्रसाद की सबसे लोकप्रिय कविता है और उस समय की लोकप्रिय कविताओं में से एक।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'जागो! फिर एक बार' उनकी लोकप्रिय कविता है। निराला की इस कविता की लोकप्रियता का कारण उस समय की परिस्थितियाँ थी। उस समय देश पर अंग्रेजों का शासन था। यहाँ की जनता पराधीन थी। कवि निराला ने उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों का चिंतन कर सुप्त भारतीयों को गौरवमयी अतीत की याद दिलाते हुए जगाने का काम किया। इस कविता की लोकप्रियता का कारण उस समय के समाज में है, जो पराधीनता से ग्रस्त था।

छायावाद के समानांतर कविताओं की एक दूसरी धारा चली, जिसे राष्ट्रीय काव्य-धारा या राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के नाम से जाना जाता है। "राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य में दो भावनाएं पूरी शक्ति के साथ व्यक्त हुई- एक ओर तो कवियों ने भारत की आंतरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया और दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी। माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और सुभद्रा कुमारी चौहान ने केवल राष्ट्रप्रेम को ही मुखरित नहीं किया, अपितु उन्होंने स्वयं देश की आजादी की लड़ाई में भाग भी लिया।"[54] इस दौरान की राष्ट्रीय कविताएँ जनता को देश की आजादी के लिए आगे बढ़ने का आह्वान करती है एवं देश की बलिवेदी पर कुर्बान हो जाने का संदेश देती है। यही कारण है कि इस दौर की कई कविताएँ लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच गई। माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की 'विप्लव गायन', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी', श्यामनारायण पांडेय की 'हल्दी घाटी' और 'जौहर' आदि इस काल की लोकप्रिय कविता है। सोहनलाल द्विवेदी की 'युगावतार', जो गाँधी जी पर केन्द्रित है तथा 'भैरवी' की पंक्ति 'वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो, हो जहाँ बलि शीश अनगिनत एक सिरा मेरा मिलो लो' काफी लोकप्रिय हुई।

[54] हिन्दी साहित्य का इतिहास - संपादक नगेन्द्र, पृ.सं. 519

राष्ट्रीय कविताओं में सर्वाधिक लोकप्रिय 'झाँसी की रानी' को देखें। इसके संबंध में संध्या गुप्ता ने लिखा है- "बुंदेलखंडी लोक शैली में गाये जाने वाले छंद में लिखी यह कविता जनमानस पर जादू-सा असर छोड़ती है। वीररस-पूर्ण आल्हा-ऊदल की गाथा की जगह लोग 'झाँसी की रानी' का सस्वर पाठ/ओजपूर्ण गान करने लगते हैं। इसका जमीनी प्रचार-प्रसार ऐसा होता है कि इसकी प्रकाशित पुस्तिकाएँ कांग्रेस अधिवेशन और समारोहों से लेकर, हर हाट-बाजार, मेले तक में एक-एक आने में बिकने लगती हैं और लोग इसे खरीदना-पढ़ना अपना सौभाग्य समझने लगते हैं। अंग्रेज सरकार इसके परिणामों की कल्पनामात्र से भयभीत होकर इसे जब्त कर लेती है।"[55] इस कविता को अंग्रेजी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। फिर भी इसकी लोकप्रियता एवं इसके प्रचार-प्रसार में कमी नहीं आई। इस संबंध में रामजन्म शर्मा ने लिखा है- "सुभद्रा कुमारी चौहान का राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में विशेष महत्त्व है। उनका काव्य 'झाँसी की रानी' सरकार ने जब्त कर लिया, फिर भी वह हिन्दी भाषी जनता को कंठस्थ हो गया था।"[56]

राष्ट्रीयता की भावना से लिखी गई कविताएँ इसलिए लोकप्रिय हुई कि उस समय देश में स्वाधीनता-संग्राम चल रहा था और देश की भावनाएँ स्वाधीनता से जुड़ी हुई थी। इस दौर के राष्ट्रीय कवियों ने इन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति अपने काव्य में की।

कविता की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण धार्मिकता से जुड़ा हुआ है। हिन्दी साहित्य का भक्ति साहित्य काफी लोकप्रिय रहा। भक्ति साहित्य भक्ति आंदोलन की उपज थी। भक्ति आंदोलन की लोकप्रियता का बड़ा कारण उसका समतामूलक रवैया रहा। यह आंदोलन समाज के निम्न वर्ग को समाज के मुख्यधारा से जोड़ने का काम भी किया। भक्ति आंदोलन में एक से एक संत, महात्मा कवि हुए जिन्होंने सामान्य जनता में ज्ञान का दीपक जलाया और उनका आत्मविश्वास जगाया। कबीर, रैदास, सूरदास, तुलसीदास आदि एक से बढ़कर एक कवि हुए, जो काफी लोकप्रिय हुए। इनकी लोकप्रियता का बड़ा कारण उनकी धार्मिकता ही है।

---

[55] राष्ट्रीय एकता में कवियों का योगदान - संध्या गुप्ता, पृ.सं. 20

[56] जब्तशुदा गीत : आजादी और एकता के तराने - रामजन्म शर्मा, वक्तव्य से

भक्ति युग की तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' की लोकप्रियता का एक बड़ा धार्मिक ही है। धार्मिक ग्रंथ होने के कारण ही वह घर-घर इतना पढ़ा गया। इस देश में कथा वाचकों की एक लंबी और सुदृढ़ परंपरा रही है। 'रामचरित मानस' को आज भी कथावाचक सस्वर संगीतमय पाठ करते हैं, जिसका सम्मोहक प्रभाव जन-मानस पर पड़ता है। गीता प्रेस ने सस्ते मूल्य पर रामचरित मानस को प्रकाशित कर इसे घर-घर तक सुलभ करा दिया। रामचरित मानस की लोकप्रियता आज भी बरकरार है, तो इसका सबसे बड़ा कारण धार्मिक ही है। 'रामचरित मानस' सिर्फ धार्मिक ग्रंथ ही नहीं है, बल्कि एक साहित्यिक ग्रंथ भी है, उसके काव्य मूल्य भी हैं और काव्य कसौटी पर एक श्रेष्ठ ग्रंथ भी है। फिर भी रामचरित मानस को पढ़ा गया कवित्व के कारण कम, धर्मग्रंथ होने के कारण ज्यादा।

भक्ति युग की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना है 'पद्मावत'। लेकिन 'पद्मावत' रामचरित मानस के मुकाबले कम ही लोकप्रिय है। रामचरित मानस के मुकाबले 'पद्मावत' के पाठक कम हैं, जबकि 'पद्मावत', 'रामचरितमानस' से कलात्मक दृष्टि से कमजोर रचना नहीं है। इसका कारण है- मुसलमानों का पद्मावत से न जुड़ पाना। जायसी सूफी थे, मुस्लिम धर्मावलंबी। लेकिन मुसलमानों का वर्ग उनसे नहीं जुड़ा। कारण यह रहा है कि मुसलमान उर्दू की ओर झुक गये, अवधी की ओर गये ही नहीं।

कविता की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण प्रगतिशील मूल्य रहे हैं। प्रगतिशील मूल्यों का संबंध प्रगतिशील आंदोलन से रहा है। प्रगतिशील आंदोलन में जनपक्षधरता सर्वोपरि रही है। उनकी दृष्टि समाज में साम्य लाने की रही है। प्रगतिशील आंदोलन ने कविता को जनोन्मुखी, जनपक्षधर बनाया। इससे कविता का जुड़ाव जनता से हुआ। छायावाद के दौर में कविता से जनता की जो दूरी बढ़ गयी थी, उसे फिर जनता से जोड़ने का काम प्रगतिशील कवियों ने किया।

प्रगतिशील आंदोलन तत्कालीन समय की मांग थी। यह भले ही विदेशी विचारधारा से भारत में आया, लेकिन इसके उदय के लिए तत्कालीन परिस्थितियाँ जिम्मेदार थी। छायावाद के दौर में ही किसानों, मजदूरों, भिखारियों के प्रति सहानुभूति के स्वर उठने लगे थे। राजनीति में भी कुछ खास तबके की जगह शोषितों, पीड़ितों व वंचितों के हक की मांग हो रही थी। कांग्रेस में ही एक गुट

समाजवादियों का बन गया था। 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ ही इसकी विधिवत शुरूआत हो गई। प्रेमचंद ने कहा कि- 'शोषितों, पीड़ितों और वंचितों की हिमायत करना साहित्यकार का फर्ज है।' सुमित्रानंदन ने 'युगान्त' लिखकर छायावाद के अंत की घोषणा कर दी और 'युगवाणी' लिखकर प्रगतिवाद के आरंभ की। निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने प्रगतिवाद को विस्तार दिया। प्रगतिशील कविता में शोषित, पीड़ित जनता की आवाज थी। इसलिए ये कविताएँ व्यापक जनसरोकार के कारण जनता में लोकप्रिय हुई।

दिनकर की एक रचना है- 'रश्मिरथी'। 'रश्मिरथी' उस समय काफी लोकप्रिय हुई। क्योंकि समाज जातिवाद से ग्रसित है और यह रचना जातिवाद के खिलाफ आवाज उठाती है। "जातीय विषमता के पाखंड को कवि ने 'रश्मिरथी' में सेनापति कर्ण के माध्यम से व्यक्त किया है। मनुष्य की महत्ता उसके पुरूषार्थ और कर्म से है, जाति से नहीं। कर्ण इस व्यवस्था की क्रूरता का प्रतीक है, जिसमें पौरूष, पराक्रम और तेजस्विता तो है, पर वह अपमान सहने को विवश किया जाता है, क्योंकि उसकी जाति का पता नहीं।"[57] इस रचना की लोकप्रियता का कारण रचना के बाहर, समाज में है। वह समाज की इस समस्या को उठाती है, इसलिए यह लोकप्रिय हुई।

कविता की लोकप्रियता का एक कारण श्रृंगार भी रहा है। श्रृंगारिक रचनाएँ समाज में हमेशा से लोकप्रिय रही है। प्रेम, प्रणय एवं विरह की कविताएं लोगों की संवेदना के अंत:स्थल को स्पर्श करती है, जिससे ये कविताएँ लोगों के ह्रदय से जुड़ जाती है। यही कारण रहा है कि ये कविताएँ लोकप्रिय रही। विद्यापति पदावली के पद आज भी लोगों की जुबान पर है। सूर की विरहणी राधा, जायसी की नागमती लोगों की संवेदना से आज भी जुड़ी है। बिहारी की लोकप्रियता एवं प्रसिद्धि का एकमात्र आधार उनकी सतसई ही है। रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- "श्रृंगारस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और जितना मान 'बिहारी सतसई' का हुआ उतना और किसी का नहीं। इसका एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है। इसकी पचासों टीकाएँ रची गई।"[58]

---

[57] राष्ट्रीय काव्यधारा - संपादक डॉ. कन्हैया सिंह, पृ.सं. 122

[58] हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 168

कविता की लोकप्रियता के संबंध को प्रकृति से जोड़कर भी देखा जा सकता है। सरल, सहज एवं नैसर्गिक प्रकृति का चित्रण जिन कविताओं में हुआ है, वे पाठकों के बीच लोकप्रिय हुई। कवि एवं कविता का प्रकृति से संबंध सरल, सहज एवं नैसर्गिक रहा है। आरंभिक काल से ही कवि प्रकृति से गहरे स्तर से जुड़ा रहा है। इसलिए कविता में प्रकृति का आना स्वाभाविक रहा है, अनायास नहीं। कविता में प्रकृति कहीं आलंबन, उद्दीपन के रूप में उपस्थित रही है तो कहीं सहचरी के रूप में। छायावाद के युग में प्रकृति का मानवीकरण कर दिया गया, जिसका विरोध करते हुए अज्ञेय ने लिखा- "कालिदास 'प्रकृति' के चौखटे में मानवीय भावनाओं का चित्रण करते थे, आज का कवि 'समकालीन मानवीय संवेदना' के चौखटे में प्रकृति को बैठाता है।"[59] भवानी प्रसाद मिश्र ने अज्ञेय की स्थापना का विरोध करते हुए प्रकृति के सहज एवं नैसर्गिक आभा से परिपूर्ण कई कविताएँ लिखीं। वे अपनी कविता में प्रकृति के साधारण एवं असाधारण- सभी रूपों का अत्यंत चित्रमय भाषा में सजीव निरूपण करते हैं। 'सतपुड़ा के जंगल' उनकी सर्वाधिक लोकप्रिय एवं महत्त्वपूर्ण रचना है। यह प्रकृति की कविता है, जिसमें उन्होंने सतपुड़ा के घने जंगल को अविरल जल प्रवाह की भांति निर्मल रूप में प्रस्तुत किया है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"झाड़ ऊँचे और नीचे
चुप खड़े हैं आँख मींचे
घास चुप है, कास चुप है
मूक शाल, पलाश चुप है।
बन सके तो धँसो इनमें,
धँस न पाती हवा जिनमें,
सतपुड़ा के घने जंगल
ऊँघते अनमने जंगल।"[60]

[59] रूपाम्बरा - संकलन संपादन सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ.सं. 18
[60] रूपाम्बरा - संकलन संपादन सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ.सं. 255

प्रकृति के महत्त्वपूर्ण कवि केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में भी प्रकृति के सौंदर्य नैसर्गिक आभा लिए हुए हैं। उनकी कविताओं में खेत-खलिहान, नदी, रेत, पोखर, सभी आते हैं। उनकी एक बहुत ही लोकप्रिय कविता है- 'बसंती हवा'। इस कविता की विशेषता है- इसके छोटे-छोटे वाक्य। हल्की, उल्लास एवं जीवन से भरपूर नटखटी है बसंती हवा, जो सबको हिलाती-डुलाती चलती है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"जहाँ से चली मैं
जहाँ को गयी मैं
शहर, गाँव, बस्ती
नदी, रेत, निर्जन
हरे खेत, पोखर
झुलाती चली मैं
झुमाती चली मैं
हवा हूँ, हवा हूँ
बसंती हवा हूँ।"[61]

कविता की लोकप्रियता का कारण आंदोलन भी रहे हैं। आंदोलन से जुड़कर कई कविताएँ लोकप्रियता के शिखर पर पहुँची है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान कई कविताएँ लोकप्रिय हुई, जैसे 'झांसी की रानी', 'पुष्प की अभिलाषा', 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है', 'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले' आदि। सन् 1974 ई. के आंदोलन से जुड़कर दिनकर की कविता 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है' की लोकप्रियता अपने चरम पर पहुँच गयी। सन् 1974 ई. में जयप्रकाश नारायण ने 'संपूर्ण क्रांति' का नारा दिया और इंदिरा गाँधी के खिलाफ जनांदोलन छेड़ दिया। इस दौरान उन्होंने रामधारी सिंह दिनकर की कविता 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'

[61] रूपाम्बरा - संकलन संपादन सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ.सं. 244

का पाठ किया। आपातकाल के दौरान यह कविता सबसे ज्यादा लोकप्रिय रही। जबकि इस कविता की रचना दिनकर ने भारत के प्रथम गणतंत्र दिवस के दिन की थी। लेकिन इस कविता ने अपनी लोकप्रियता के शिखर को संपूर्ण क्रांति के आंदोलन के दौरान छुआ।

कविता की लोकप्रियता का एक कारण शिल्प भी रहा है। कविता की लोकप्रियता, कविता की भाषा, शब्द, छंद, तुक, लय, गेयता, संगीत तत्व की उपस्थिति आदि से प्रभावित होती रही है। कविता वही लोकप्रिय हुई, जिसकी भाषा सरल एवं सहज होने के साथ आसानी से संप्रेषणीय रहे हैं। बड़ा कवि सरल एवं सहज शब्दों में ही गंभीर बात कह देता है। कविता में सरलता एवं सहजता की साधना कठिन साधना है। कविता के साधना पर कम ही कवि ध्यान देते हैं। ज्यादातर कवि जल्द से जल्द अपना स्थान बनाना तो चाहते हैं लेकिन साधना नहीं करना चाहते। जिससे उनकी कविता में गहराई नहीं आ पाती। कविता का कोई रूप या फॉरमेट नहीं होता, जिस पर कविता लिखी जा सके। कविता लिखने की साधना करनी होती है। छायावाद के दौर में छंद से मुक्ति का संघर्ष चला। निराला मुक्त छंद के प्रवर्तक बने। मुक्त छंद के हिन्दी कविता में आने से पहले छंद, तुक, लय आदि का निर्वाह किया जाता था, उनमें गेयता व संगीत तत्व की उपस्थिति भी होती थी। छायावाद के दौर में कविता छंद के बंधन से मुक्त हुई तथा उसमें तुक आदि के निर्वाह का प्रचलन खत्म हुआ। निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन आदि की कविता को देखें तो उसमें एक लय मौजूद है एवं उनमें संगीत तत्वों का ध्यान रखा गया है, जिसके कारण इनकी कविताएँ गेय हैं। कविता की लय हिन्दी भाषा के समकालीन कवियों जैसे अरुण कमल, राजेश जोशी, कात्यायनी, नीलेश रघुवंशी आदि में भी मौजूद हैं। जिन कवियों ने छंद मुक्त, तुक विहीन, लय विहीन कविता लिखी है, उनकी कविता संप्रेषणीय नहीं रही है तथा वे बोझिल होकर पाठकों से दूर भी रही है।

कविता की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उसका काव्य मंच से जुड़ाव भी रहा है। काव्य सम्मेलनों में विशाल जनता की भागीदारी होती थी। इससे कवि और जनता के बीच संवाद होता था। कवि और जनता के संवाद से जो साहित्यिक वातावरण उपस्थित होता था, उसमें कविता पल्लवित-

पुष्पवित होती थी। काव्य सम्मेलनों से कविता श्रोताओं के द्वारा पाठकों तक पहुँच जाती थी तो वहीं श्रोता भी पाठक बन जाते थे। नयी कविता आंदोलन के पहले तक हिन्दी के प्राय: सभी बड़े कवि काव्य-सम्मेलनों में भाग लिया करते थे। काव्य मंचों पर दिनकर, बच्चन, नेपाली जैसे कवियों को सुनने के लिए विशाल जनसमूह एकत्रित रहता था और इन कवियों को सुनना अपने आप में एक रोचक अनुभव था।

कविता की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उसका लोक से जुड़ाव भी रहा है। कविता में लोक के पर्व-त्योहार, आचार-विचार जीवन मूल्य आदि की अभिव्यक्ति होती रही है। कविता में लोक की भाषा, बोली, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोकगीत, गायन की लोक शैली आदि स्थान पाते रहे हैं। हिन्दी कविता में देखें तो अमीर खुसरो से लेकर नागार्जुन तक प्राय: सभी कवियों ने अपने को लोक से जोड़ा है। भारतेन्दु ने अपनी कविता में लावनी, चैती, मुकरी, होली आदि लोक शैली का प्रयोग किया है। नयी कविता के दौर में कविता लोक से दूर हुई और वह अभिजन की संस्कृति का हिस्सा बनने लगी, जिससे कविता की लोकप्रियता में काफी कमी आयी। आज पुन: समकालीन कवियों ने अपनी कविता को लोक से जोड़ने का काम किया है और कविता की खोई लोकप्रियता को लाने का प्रयास किया है। विश्वनाथ त्रिपाठी, अरूण कमल, मंगलेश डबराल, बलदेव वंशी आदि कवियों में लोक की उपस्थिति इसका प्रमाण है।

पिछले कुछ वर्षों से वैश्वीकरण के फलस्वरूप हिन्दी साहित्य में विमर्शों का दौर चल रहा है। स्त्री-विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श पर चर्चा-परिचर्चा आए दिन आयोजित किए जा रहे हैं। हाशिए पर खड़ी स्त्री, दलित एवं आदिवासी आज महत्त्वपूर्ण बन गए हैं, जिसके कारण हिन्दी कविता में स्त्री, दलित एवं आदिवासी विषय को लेकर कविताएँ लिखी जा रही हैं। इन कविताओं में स्त्री, दलित एवं आदिवासी की पीड़ा, दु:ख-दर्द, शोषण, भेदभाव आदि को प्रमुखता से उठाए गए हैं। ये कविताएँ अस्मितावादी विमर्श के कारण खूब पढ़े गए एवं लोकप्रिय भी हुए हैं।

कविता की लोकप्रियता संस्कृति उद्योग के विस्तार से एक तरफ बढ़ी है तो दूसरी तरफ घटी भी है। संस्कृति उद्योग के अनेक रूप हैं जैसे टेलीविजन, सिनेमा, रेडियो, सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, यू-ट्यूब, ट्विटर आदि। संस्कृति उद्योग के विस्तार से कविता को एक नया मंच मिला है। कविता की पहुँच लोगों तक पढ़ी है। कविता के पाठक भी बढ़े हैं और श्रोता भी। आजकल कविता पर कई तरह के आयोजन किए जा रहे हैं, जिसमें लोगों की भागीदारी बढ़ी है। विभिन्न समाचार चैनलों द्वारा भी कविता पर कई कार्यक्रम किए गए हैं। कई पत्र-पत्रिकाओं ने कविता पर विशेषांक निकालकर कविता विधा को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया है।

2.2 कविता की लोकप्रियता में कमी की पड़ताल

कुछ वर्षों से यह कहा जा रहा है कि कविता की लोकप्रियता में कमी आयी है। बात सिर्फ कविता की लोकप्रियता में कमी की नहीं है, बल्कि कविता पर मँडराते संकट की है। आज कविता ही पहचान के संकट के दौर से गुजर रही है। कभी साहित्य की लोकप्रिय एवं केन्द्रीय विधा रही कविता आज अपने अस्तित्व को बचाने के जद्दोजहद में लगी हुई है। साहित्य में हाशिए पर धकेल दी गई कविता पर संकट गंभीर है। आज लिखी जा रही कविता में वह गतिशीलता नजर नहीं आती, जो इसकी पहचान थी। एकरसता में अर्थ खोती कविता अपने समय के नब्ज को पहचानने में असमर्थ सिद्ध हो रही है। अब तो कहा जा रहा है कि कविता के दिन लद गये। संकट इतना बढ़ गया है कि अब तो कविता के पाठक भी मिलने मुश्किल हो रहे हैं। अब सवाल यह है कि कविता आज के समय में कहाँ खड़ी है। ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि कविता पर मँडराते संकट के साथ कविता की लोकप्रियता में कमी की पड़ताल की जाए।

कला के संबंध में अंर्स्ट फिशर के दिए गए वक्तव्य की चर्चा आज की कविता के संदर्भ में करना समीचीन जान पड़ता है। उन्होंने लिखा है- ''वह कला, जो जनता की जरूरतों की उपेक्षा करती है और केवल कुछ चुनिंदा लोगों के द्वारा समझे जाने को गौरव की बात मानती है। मनोरंजन उद्योग को यह मौका देती है कि वह धड़ाधड़ घटिया चीजों का उत्पादन करता रहे। जिस अनुपात में लेखक और

कलाकार समाज से ज्यादा से ज्यादा विमुख होते जाते हैं, उसी अनुपात में बर्बरतापूर्वक घटिया चीजों का कूड़ा करकट जनता पर ज्यादा से ज्यादा उड़ेला जाने लगता है।"[62]

अंर्स्ट फिशर का यह वक्तव्य कला के सभी रूपों के लिए प्रासंगिक है। हिन्दी साहित्य में देखें तो प्रगतिशील आंदोलन के कमजोर पड़ने पर हिन्दी कविता में रूपवादी कलावादी रूझान बढ़ने लगा। प्रयोगवाद, नई कविता और अकविता के व्यक्तिवादी कवि जनता से दूर रहने लगे। इनके लिए कला कला के लिए होने लगी, जनता के लिए नहीं। इस रूपवादी-कलावादी रूझान से कविता में अनावश्यक कलात्मकता पर जोर दिया जाने लगा। रूपवादी-कलावादी रूझान से आलोचना भी प्रभावित हुई। फलस्वरूप रूपवादी-कलावादी आलोचकों ने प्रगतिशील आंदोलन की कविताओं पर सरलीकरण, कलाहीनता और सौंदर्यविहीनता का आरोप गढ़ने लगे। इससे हिन्दी कविता में सूक्ष्मता, अमूर्तन और कलावाद को बढ़ावा मिला। इससे हिन्दी कविता की लोकप्रियता में काफी कमी आयी। उस दौर के कवि कवियों एवं आलोचकों के लिए लिखने लगे। जनता एवं कवि के बीच दिनोंदिन दूरियाँ बढ़ती गयी। कमोबेश स्थिति आज भी कुछ ऐसी ही है।

जब हम कविता की लोकप्रियता में कमी की बात करते हैं तो हमें यह देखना होगा कि आज कैसी कविता लिखी जा रही है। आज की कविता क्यों पाठकों से दूर है। कविता एवं पाठकों के बीच बढ़ती दूरी पर चिंता व्यक्त करते हुए अभिताभ खरे ने लिखा है- "विस्मय की बात है कि जिस भारतीय समाज ने अपने सैकड़ों-हजारों साल कविता के सहारे काटे हों, जिसका अधिकांश जीवन-व्यापार कविता के शब्दों, छंदों, उसकी लय के साथ संपादित होता रहा हो, जिसकी पीढ़ी-दर-पीढ़ी कविता सुनते-गुनते, उसमें उतरते-उतराते, उसे खुद में उतारते बड़ी होती रही हो,बीतती रही हो, उसी में कविता आज सिकुड़ते-सिकुड़ते हाशिए पर जा पड़ी है। आज संभवत: ऐसा कोई कवि नहीं है जिसकी पंक्तियाँ लाखों-करोड़ों भारतीयों के कंठों में बसी हो, उनके जीवन-मूल्यों को उनके जीवन-आचरण को प्रभावित करती हों, संचालित करती हों। ..... क्या समाज बदल गया है, इतना अमानवीय हो गया

[62] कला की जरूरत - अन्सर्ट फिसर, पृ.सं. 110

है कि कविता जैसी अत्यंत सघन मानवीय अनुभूति और अभिव्यक्ति उसके लिए अर्थहीन और अप्रासंगिक हो गई है? या आज की कविता ही समाज के बदलते हुए यथार्थ को समझने में, उसके मर्म तक पहुँचने में विफल हो रही है।"[63]

आधुनिक युग में कविता और जनता के बीच दूरी बढ़ी है। मैनेजर पाण्डेय इस बढ़ती दूरी की जड़ तक पहुँचने का प्रयास करते हैं। वे लिखते हैं- "यह सच है कि आधुनिक काल में जनजीवन से कविता की दूरी बढ़ी है, कविता की दुनिया क्रमश: सिमटी और सिकुड़ी है और जनजीवन में कविता के लिए जगह लगातार कम हुई है। इसके लिए दोषी वह काव्य-दृष्टि है, जो जटिलता को काव्य का अनिवार्य गुण मानती है और कविता की भाषा, उसकी बनावट, अनुभूति की संरचना तथा अर्थ के निर्माण की प्रक्रिया को जटिल रूप में रचती हुई उसे अबूझ पहेली बना देती है।"[64]

कविता की लोकप्रियता में कमी की पड़ताल करते हुए हमें अमिताभ खरे के वक्तव्य में और मैनेजर पाण्डेय के वक्तव्य में फर्क साफ दिखता है। अमिताभ खरे कविता की लोकप्रियता में कमी के संदर्भ में कविता के शब्द, छंद और लय की चर्चा करते हैं तो उनका इशारा आधुनिक युग में लिखी जा रही लय-छंद-तुक विहीन कविताओं की ओर है। लय-छंद तुकविहीन कविताओं ने कविता और जनता के बीच दूरी बढ़ायी है, यह बात सच भी है। मैनेजर पाण्डेय ने कविता की लोकप्रियता में कमी के संदर्भ में प्रगतिशील आंदोलन के कमजोर पड़ने पर लिखी जा रही रूपवादी-कलावादी कविताओं पर चर्चा की है। उनका ध्यान उन कविताओं पर है, जो काव्य में कलात्मकता को अनिवार्य गुण मानती है। उनका इशारा उस समय लिखी जा रही कविता की दुर्बोधता को लेकर भी है। रूपवादी-कलावादी रूझान से लिखी गई कविताएँ जनता का अपनापन पा न सकी। इससे कविता की लोकप्रियता में कमी आई।

कविता की लोकप्रियता में कमी के संदर्भ में छंद, लय, तुक की चर्चा करना जरूरी है। सूर्यकांत त्रिपाठी ने मुक्त छंद की वकालत की। छंद मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति से जोड़ा गया। मुक्त दंद

[63] आलोचना - सहस्त्राब्दी अंक चौदह, पृ.सं. 133
[64] आलोचना की सामाजिकता - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 211

की पृष्ठभूमि में उस समय की तत्कालीन परिस्थितियों को समझना आवश्यक है। उस समय दुनिया में सभी जगह मुक्ति के आंदोलन चल रहे थे। ऐसे में भाव, संवेदना में परिवर्तन हुआ। इस नए भाव, संवेदना को पुराने बँधे-बँधाये छंद में व्यक्त करना संभव न हुआ तो उसके लिए मुक्त दंद जैसा नया काव्य रूप सामने आया। आज हमारी संस्कृति, भाषा, रीति रिवाज- सभी पर आधुनिकता का गहरा असर हुआ है। इनके असर से कविता का प्रभावित होना स्वाभाविक है। इसलिए कविता के स्वरूप में बदलाव आया। कविता के स्वरूप में बदलाव के क्रम में कुछ लोगों ने लय मुक्त, तुक विहीन, छंद मुक्त कविता लिखने लगे। यही कविता अपना स्वरूप खोने लगी है एवं उसकी जनता से दूरी बढ़ने लगी है। हम निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध आदि कवियों की कविताओं को देखें तो हम पाते हैं कि उनमें एक लय मौजूद है। इन सभी ने आधुनिक छंद में कविताएँ लिखी हैं एवं नए छंदों का निर्माण भी किया है। साथ ही मुक्त छंद में भी कविता लिखी है। आज के कवियों में जैसे- अरूण कमल, राजेश जोशी, कात्यायनी, नीलेश रघुवंशी आदि को देखें तो इनके मुक्त छंदों में भी एक लय मौजूद है। विष्णु खरे जैसे गद्य कविता लिखने वाले कवियों में भी एक लय है।

अब हम कविता की लोकप्रियता के संदर्भ में देखें तो छंद को कविता की पहचान से जोड़ देना भी कविता की लोकप्रियता में कमी का एक कारण रहा है। लोक चेतना में यह स्थापित कर दिया गया है कि छंद के बिना कविता नहीं होती है। आधुनिक समय में दुनिया काफी बदली है तो कविता का रूप भी बदला है। दुनिया की सभी भाषाओं में कविता के रूप में बदलाव देखने को मिलता है। कहीं भी कविता में छंद के लिए आग्रह पर जोर नहीं है। हिन्दी में आलोचकों का एक वर्ग ऐसा रहा है जो छंद की अनुपस्थिति मात्र से ही उसे कविता की श्रेणी से खारिज कर देना चाहते हैं। मुक्तिबोध, अज्ञेय जैसे कवियों को भी छंद के आधार पर खारिज करने वालों की कमी नहीं रही है। ''छंद के चले जाने से कविता के याद रखे जाने में होने वाली आसानी कम हुई हो, इतना भर कह दिया जाना तो समझ में आता है, केवल आसानी से याद रखे जाने की कसौटी को कविता की परिभाषा और पहचान के साथ

नाभि नाल संबद्ध कर देने के कुचक्र ने भी गड़बड़ की है। छंद की जगह लय पर इतना आग्रह रहा होता तो शायद इतना बुरा नहीं हुआ होता।"[65]

आज के समय में कविता की लोकप्रियता में कमी तो आयी है। खुद कविता भी संकट के दौर से गुजर रही है। कविता पर मंडराते संकट के संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय की टिप्पणी समीचीन है। उन्होंने लिखा है- "आजकल हिन्दी कविता की स्थिति अत्यंत विचित्र है। कवियों को एक से बढ़कर एक पुरस्कार मिल रहे हैं, लेकिन कविता को पाठक नहीं मिल रहे हैं। जैसे-तैसे कविता की किताबें छप रही हैं, लेकिन अत्यंत सीमित संख्या में। किसी भी कविता-संग्रह की एक हजार से ज्यादा प्रतियाँ नहीं छपतीं। वे भी अगर सरकारी खरीद न हो तो दुकानों में पड़ी रहती हैं। किताबों के बाजार में उनकी कोई माँग नहीं है। कविता को पाठकों तक पहुँचाने का एक माध्यम छोटी पत्रिकाएँ हैं, जिनमें से अधिकांश की दशा अत्यंत दयनीय है। हिन्दी की कोई भी लघु पत्रिका एक-दो हजार से अधिक नहीं छपती और वह भी अनियमित। जो केवल कविता की पत्रिकाएँ हैं, उनकी हालत और भी खराब है। हिन्दी के कुछ दैनिक अखबार अपने पाठकों को स्वाद बदलने के लिए रविवार के संस्करण में थोड़ी जगह कविता को देते रहे हैं। उनमें से कुछ ने अब वह भी बंद कर दिया है और पाठकों का स्वाद बदलने या बढ़ाने के लिए कविता से अधिक जायकेदार मसालों की खोज कर ली है।"[66] मैनेजर पाण्डेय ने कविता की लोकप्रियता में कमी की वजह जानने के क्रम में पाठकों पर ध्यान दिया है। कविता के पाठक सीमित हो गए हैं। कविता छप तो रही है लेकिन सीमित संख्या में। कविता को पाठकों तक पहुँचाने की जिम्मेदारी लघु-पत्रिकाओं एवं दैनिक समाचार-पत्रों की थी। यहाँ तो लघु पत्रिका भी संकट के दौर से गुजर रही है। दूसरी बात उनकी संख्या बहुत ही सीमित है। दैनिक समाचार पत्रों में यदा-कदा ही कविता पर कुछ छप जाती है। ऐसे में पाठकों तक कविता की पहुँच कैसे हो, विचारणीय सवाल यह है।

---

[65] बहसतलब : 2 : कविता तो रहेगी : मोहन श्रोतिय, समालोचना ब्लॉग, दिनांक जुलाई 17, 2012

[66] हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 205

मैनेजर पाण्डेय ने कविता के संदर्भ में कहा कि- “कवियों को एक से बढ़कर एक पुरस्कार मिल रहे हैं, लेकिन कविता को पाठक नहीं मिल रहे हैं।”[67] आज के समय में अधिकांश कवियों का ध्यान येन-केन-प्रकारेण पुरस्कार, पद, मान, सम्मान पाने में है। वे किसी भी तरह से अपना नाम साहित्येतिहास में दर्ज करना चाहते हैं। वे इस क्रम में आलोचकों एवं सरकारी-गैर सरकारी संस्था के अधिकारियों से सांठ-गांठ करके या जोड़-तोड़ करके या उनकी चाटुकारिता करके पुरस्कार पा तो लेते हैं, लेकिन इससे कविता का भला नहीं होता। ऐसा नहीं है कि सभी पुरस्कार, मान-सम्मान एवं पद ऐसे ही दिए जाते हैं। पुरस्कार के क्रम में संपादक, आलोचक एवं रचनाकार की भूमिका पर यहाँ नंदकिशोर नवल की टिप्पणी समीचीन जान पड़ता है। उन्होंने लिखा है- “जबसे हिन्दी में पुरस्कारों की बाढ़ आयी है, कविगण निर्णायकों के पीछे लग गये हैं, जिनमें तीनों ही श्रेणियों के लोग होते हैं। दिलचस्प यह है कि रचनाकार निर्णय तो करते हैं, लेकिन रचना की श्रेष्ठता अथवा हीनता तय करने का दायित्व आलोचक का मानते हैं। आए-दिन वे आलोचकों को भला-बुरा कहते रहते हैं कि वे अपने कर्तव्य से चूक रहे हैं। गलत निर्णय से पुरस्कार पाने वाले कवि को स्थायी लाभ हो या नहीं, कविता का भारी नुकसान जरूर होता है। पुरस्कृत कविता या कवि मॉडल के रूप में प्रचारित किया जाता है।”[68]

कविता की लोकप्रियता में कमी का एक बड़ा कारण कविता के पाठकों की संख्या का सीमित होते जाना भी है। कविता एवं पाठक के बीच दूरी बढ़ने से भी कविता के पाठकों की संख्या में कमी आयी है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि- “आज का कवि किसी वास्तविक पाठक के लिए नहीं, बल्कि संभावित पाठकों के लिए लिखता है।”[69] मैनेजर पाण्डेय का इशारा साफ है कि आज का कवि किसी खास विचारधारा या किसी खास वर्ग के लिए लिखता है। अगर उसके कविता का सरोकार आम जन से नहीं होगा तो स्वाभाविक है कि वे उसके पाठक भी नहीं होंगे। रामधारी सिंह ‘दिनकर’, हरिवंश राय ‘बच्चन’, नागार्जुन जैसे कवियों के लिए कभी पाठकों की कमी नहीं रही। लेकिन कविता

---

[67] हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 205
[68] कविता पहचान का संकट - नंदकिशोर नवल, पृ.सं. 302
[69] हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 209

के पाठक आज कौन हैं, इसकी पड़ताल जरूरी है। हिन्दी में कविता लिखने, पढ़ने और उस पर चर्चा करने का काम कुछ सीमित साहित्यिक वर्ग के लोग करते हैं। कविता के पाठक कवि ही हैं जो एक-दूसरे की रचनाओं को पढ़ते हैं, उन पर लिखते हैं और उस पर चर्चा भी कर लेते हैं। कविता का पाठक शिक्षण-संस्थाओं, अकादमियों में ही सीमित हो गया है। कविता का पाठक जो जनसमुदाय होता था, आज कविता से दूर चला गया है। कविता की सार्थकता तभी है, जब वह जन समुदाय से जुड़े, उनकी चेतना का हिस्सा बने।

हिन्दी कविता के पाठक नहीं हैं। यह बात सच भी है। लेकिन इसी हिन्दी भाषी दुनिया में घटिया और सतही, सनसनीखेज और फूहड़ साहित्य को पढ़ने वाला एक व्यापक पाठक वर्ग मौजूद है। अशोक वाजपेयी ने लिखा है- "यह नहीं कि हिन्दी भाषी साहित्य या कविता के नाम पर कुछ पढ़ या सराह नहीं रहे हैं: घटिया और सतही, सनसनीखेज और फूहड़ साहित्य का व्यापार विराट है और अपार हिन्दी जन द्वारा ही सम्पोषित है। लाखों लोग घटिया ढंग से हास्य और व्यंग्य, दयनीय रूप से भावुक और गलदश्रु कलीशों से भरी कविता आधी-आधी रात तक बैठकर सुनते हैं: वे उन लेखकों और कवियों की रचनाएँ हैं जिनका हमारी सारी आलोचना या गंभीर और उत्तरदायी साहित्य चर्चा में भूल से भी कभी जिक्र नहीं होता। कारण जो भी हो यह मानने से कोई छुटकारा नहीं कि जब हिन्दी कविता ने समकालीन जीवन, उसके अंतर्विरोधों और संघर्षों से, उसकी बहुलता और गहराई से जूझने की इतनी व्यापक और खरी चेष्टा शुरू की है तब उसके लिए हिन्दी समाज में बहुत कम जगह बची है।"[70] अशोक वाजपेयी का इशारा उन लोकप्रिय कविताओं की तरफ है जिसमें सतही हास्य, व्यंग्य, मनोरंजन एवं भावुकता होती है। इन कविताओं का बड़ा पाठक आज भी मौजूद है। लेकिन दूसरी तरफ जिसे मुख्य धारा की कविता कहते हैं, वह पाठक की समस्या से जूझ रही है।

कविता और पाठक के बीच बढ़ती दूरी को गोपेश्वर सिंह ने ऐतिहासिक दृष्टि से समझने का प्रयास किया है। उनका कहना है कि भारतेन्दु युग से लेकर द्विवेदी युग तक कविता के पाठक थे।

[70] कविता का कल्प - अशोक वाजपेयी, पृ.सं. 23-24

छायावाद के युग में कविता और पाठक के बीच दूरी बढ़ी। लेकिन छायावाद ने अपनी प्रगीतात्मक प्रवृत्ति और व्यापक सरोकार से देर से ही सही पाठकों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। पाठकों और कविता के बीच वास्तविक दीवार बनना शुरू हुआ- प्रयोगवाद एवं नयी कविता के युग में। हिन्दी कविता भाव एवं शिल्प के स्तर पर पश्चिमी काव्य-प्रतिमानों से होड़ लेने लगी। पहले की काव्य परंपरा को पुराने भाव बोध का कहकर नए प्रतिमानों के आधार पर नए काव्य-मूल्य स्थापित किए गए। गोपेश्वर सिंह ने लिखा है- “पुरानी केंचुल उतारकर नए विशेषण के साथ कविता जब पाठक के पास पहुँची तो मालूम हुआ कि व्यंग्य, विडम्बना, विसंगति, अलगाव, एकांत, नियति, तनाव आदि के कारण और तत्सम प्रधान अभिजन काव्य-भाषा के साथ वह ऐसे मोमजामे में बदल गई जिस पर से पाठक की दृष्टि फिसल-फिसल जाती थी।”[71]

“प्रयोगवाद-नई कविता से अपनी काव्य-परंपरा के श्रेष्ठ और लोकप्रिय तत्वों को नकारकर जो काव्य-यात्रा शुरू हुई, वह अभिजन-आधुनिकता, अभिजन प्रगतिशीलता, अभिजन काव्य-भाषा और अभिजन काव्य-रुचि की यात्रा थी। उसका संबंध भारतेन्दु, मैथिलीशरण, माखनलाल, बच्चन, दिनकर और नागार्जुन वाली परंपरा से न होकर इलियट, मायोवस्की, टाइप यूरोपीय आधुनिकता-प्रगतिशीलता था। यह ऐसी आधुनिकता और प्रगतिशीलता थी, जिसे पाठक की दरकार नहीं थी।”[72] लोकप्रियता को काव्य-दोष मानकर कठिन काव्य-निकष बनाए गए। नए कवितावादियों ने तो काव्य-सम्मेलनों में जाना ही बंद कर दिया। इनका दबदबा ऐसा बना कि वही हिन्दी कविता की मुख्य और वास्तविक धारा समझा जाने लगा। उसका असर अब भी बना हुआ है।

कविता की लोकप्रियता में कमी का एक कारण कविता का मंच से कट जाना भी है। नए कवितावादी कवियों ने काव्य-सम्मेलनों में जाना बंद कर दिया। इससे जो कविता काव्य-पाठ द्वारा जनता तक पहुँचती थी, वह सिलसिला बंद हो गया। काव्य-सम्मेलनों में जाने वाले कवि को हेय

---

[71] आलोचना का नया पाठ - गोपेश्वर सिंह, पृ.सं. 152-153

[72] आलोचना का नया पाठ - गोपेश्वर सिंह, पृ.सं. 153

समझा जाने लगा। काव्य-मंच से हिन्दी कविता का कट जाना आत्मघाती सिद्ध हुआ। कविता काव्य-मंचों के द्वारा एक विशाल जनसमूह से संवाद करती थी। इससे जनता में काव्य-रुचि का परिष्कार होता था और एक तरह से वह काव्य में प्रशिक्षित भी हुआ करता था। कवि और जनता के संवाद से एक नया साहित्यिक वातावरण निर्मित होता था, जिसमें कविता पल्लवित-पुष्पित हो रही थी। मुख्यधारा की कविता का काव्य-मंचों से हट जाने पर वहाँ सतही हास्य, व्यंग्य मनोरंजन एवं भावुकता से परिपूर्ण लोकप्रिय कविता करने वाले कवियों का वहाँ कब्जा हो गया। इससे काव्य मंच सतही मनोरंजन का माध्यम बन गए।

जब से हिन्दी कविता में लोकप्रियता को नकारा गया, उसके साथ कविता की सहजता, ऐन्द्रिकता और भावावेग की भी विदाई हो गयी। कविता में जो जीवंतता होती थी, वह धीरे-धीरे गायब हो गई। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- "इतिहास गवाह है कि हिन्दी कविता की परंपरा में वही कविता सजीव और आकर्षक बनी है, जो लोकप्रियता का बहिष्कार नहीं, परिष्कार करती हुई विकसित हुई है। इसका एक प्रमाण है भक्ति आंदोलन की कविता और दूसरा प्रगतिशील आंदोलन की कविता। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी तथा मीरा के काव्य की अमरता और नागार्जुन की कविता की अपार लोकप्रियता का यही कारण है कि उसमें लोकप्रियता का विकास है। कविता में लोकप्रियता केवल रूप की विशेषता नहीं है, उसके स्वभाव का गुण है। वह कविता की कल्पना से लेकर अभिव्यक्ति तक की पूरी प्रक्रिया में व्याप्त होती है। कविता की लोकप्रियता के इतिहास से यह भी साबित होता है कि वह हमेशा एक जैसी नहीं होती, उसका रूप बदलता रहता है। कबीर की कविता में लोकप्रियता का जो रूप है, वही तुलसी के काव्य में नहीं है और वह नागार्जुन की कविता में जैसी है, वैसी ही धूमिल की कविता में नहीं है।"[73] कविता से जब लोकप्रियता के तत्व को नकारा गया और जब उससे सहजता, ऐन्द्रिकता और भावावेग की विदाई हो गयी तो कविता आम पाठक से दूर हो गयी। इससे कविता को भारी नुकसान उठाना पड़ा और उसकी लोकप्रियता बुरी तरह प्रभावित हुई।

---

[73] हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 216

जब कविता से लोकप्रियता को नकारा गया तब कविता की बुनावट पर ज्यादा जोर दिया गया। अशोक वाजपेयी ने लिखा है- "कविता एक चीज है, जो आप बनाते हैं, अपनी जिंदगी से बनाते हैं, विचार से बनाते हैं, अनुभव से बनाते हैं, जाने काहे-काहे से, अपनी मूर्खता और अपने विवेक से बनाते हैं, जिससे आप बनाना चाहें, लेकिन कविता अंतत: आप बनाते हैं। यानी एक रचना जो आप करते हैं।"[74] लेकिन बाद के कवियों ने कविता बनाते या कविता की रचना करते समय भारी गड़बड़ कर दी, जिसका नतीजा हुआ कि कविता में संरचनात्मक बिखराव हुआ। इससे कविता की बोझिलता बढ़ी और संप्रेषणीयता में कमी आई। आज की अनेक कविताएँ व्यवस्था और गठन के अभाव के कारण पाठकों के लिए अबूझ पहेली बनी हुई है। शमशेर बहादुर सिंह को अत्यंत जटिल काव्य संवेदना और सूक्ष्म शिल्प के कारण ही कवियों का कवि कहा गया। यह भी एक कारण है कि कविता पाठक से दूर है। लेकिन अशोक वाजपेयी का इस संदर्भ में कहना है कि- "आज की कविता अति बौद्धिक है और सहज बोधगम्य नहीं एक हद तक जायज होते हुए भी उतनी जायज नहीं जितनी यह शिकायत कि आज बहुत सी सहज ही बोधगम्य कविता प्रासंगिक नहीं।"[75]

आज की कविता की लोकप्रियता में कमी का एक कारण यह भी है कि वह आज नागर की कविता बनती जा रही है। इस नागर कविता में गाँव का समाज, वहाँ के लोगों की जिंदगी, उस जिंदगी के संघर्ष, उस संघर्ष के अनुभव और उस अनुभव की भाषा के लिए जगह ही नहीं बची है। आज की अधिकांश नागर कविता एक गढ़ी हुई साहित्यिक हिन्दी में लिखी जा रही है। उसका बोलचाल की भाषा, उसके मुहावरे और कथन-भंगिमा से कोई आत्मीय संबंध नहीं रह गया है। लोकभाषाओं से उसका संबंध क्रमश: घटता ही जा रहा है। कुछ कवियों की भाषा पर अंग्रेजी के शब्द, मुहावरे और संरचना का इतना गहरा असर है कि वह अनुवाद की भाषा लगती है।

कविता की लोकप्रियता में कमी का एक कारण संस्कृति उद्योग का विस्तार है। संस्कृति के उद्योग के अनेक रूप हैं जैसे टेलीविजन, रेडियो, सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, यू-ट्यूब आदि। जैसे-

---

[74] कुछ पूर्वग्रह - अशोक वाजपेयी, पृ.सं. 116

[75] कविता का जनपद - अशोक वाजपेयी, पृ.सं. 14

जैसे संस्कृति के उद्योग का विस्तार हुआ है, कविता पर संकट बढ़ता ही जा रहा है। संस्कृति उद्योग का उपभोग की संस्कृति से गहरा रिश्ता रहा है। "कोई भी उद्योग केवल उपभोग की वस्तु ही पैदा नहीं करता, उस वस्तु की जरूरत और इच्छा भी पैदा करता है। यह बात दूसरे उद्योगों की तरह संस्कृति के उद्योग यानी कि फिल्म, टेलीविजन और बाजारू साहित्य के उद्योग के बारे में भी सच है।"[76] संस्कृति के उद्योग केवल मनोरंजन के माध्यम भर नहीं है, वे समाज की सांस्कृतिक आकांक्षाओं को पूरा करने के आसान साधन भी बन गए हैं। यही कारण है कि कविता जैसी कला सांस्कृतिक जीवन के हाशिए पर चली गई है।

कविता की लोकप्रियता तभी बढ़ेगी, जब लोगों की दिलचस्पी कविता में बढ़ेगी। मैनेजर पाण्डेय कविता की लोकप्रियता में कमी की पड़ताल करते हुए टी.एस इलियट को उद्धृत किया है- "हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गद्य या कविता के लिए जरूरी है कि वह दिलचस्प हो। यह पहली शर्त है, लेकिन आसान नहीं। आजकल साहित्य अधिकाधिक उबाऊ होता जा रहा है। यह उसका अंत की ओर बढ़ना है।"[77] लेकिन कविता सिर्फ दिलचस्प होने से सार्थक नहीं होगी। किंतु उबाऊ होने से व्यर्थ जरूर हो जाएगी। जो कविता पाठकों को आकर्षित नहीं करती, वह बहुत दिनों तक जीवित भी नहीं रहती। वर्तमान समय में कविता उबाऊ होती जा रही है। साथ ही वह जटिल भी होती जा रही है। ऐसी कविता लिखी जा रही है, जो पाठकों को समझ में ही नहीं आती है। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- "आजकल हिन्दी की अनेक कविताएँ पाठकों को मुँह चिढ़ाती हैं, वे बूझो जो जाने की चुनौती देती हुई पाठकों को बेवकूफ साबित करती लगती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि जब से केवल विचारों की कविता लिखी जाने लगी है, तब से वह नीरस और निर्जीव होने लगी है। यह बात एक हद तक ही सही है। कविता विचारशीलता के कारण निर्जीव और उबाऊ नहीं होती, बशर्ते कि वह विचारशीलता जीवन के अनुभवों से उपजी हो, समकालीन संवेदनाओं से जुड़ी हो और इतिहास से मुठभेड़ करती हो, जैसा कि मुक्तिबोध की कविताओं में दिखाई देता है। लेकिन जब कविता में अमूर्त और मनगढ़ंत

[76] हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 211
[77] हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 214

विचार संध्या-भाषा में उपस्थित होते हैं, तब वे आतंक पैदा करते हैं। आज की हिन्दी कविता में विचारों का ऐसा आतंक बहुत है।"[78]

अंत में अशोक वाजपेयी के शब्दों में कहूँ तो- "कविता को लेकर बहुत सारे लोग दु:खी रहते हैं, जो लिखते हैं वे, और वे भी जो कृपापूर्वक या आदतन कविता पढ़ते-सुनते हैं, कवियों में से जो लोकप्रिय बहुसंख्यक हैं उनका दु:ख यह है कि उन्हें आलोचना गंभीरतापूर्वक नहीं लेती है और जो गंभीर अल्पसंख्यक हैं वे दुखी हैं कि वे लोगों से दूर हैं। कविता सुनने वाले दु:खी हैं कि उन्हें कविता समझ में नहीं आती और जब आती है तो उनको जीने या आदमी की हालत को समझने में कोई सीधे मदद नहीं करती। इन सबके बावजूद यह बात कुछ अचरज की है कि कविता बराबर लिखी जाती है और कविता की मृत्यु और उसके केंद्रीय विधा न रह जाने की घोषणाओं के बावजूद, वह आज भी हमारी एक बुनियादी जरूरत बनी हुई है।"[79]

2.3 कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र

जब से साहित्यिक रूपों के समाजशास्त्र का विकास हुआ है, तब से उपन्यासों की ही चर्चा सबसे ज्यादा रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में उपन्यासों की ही चर्चा की गई है। थोड़ी-बहुत चर्चा नाटकों की भी मिल जाती है। लेकिन कविता की चर्चा न के बराबर की गई है। मैनेजर पाण्डेय ने कविता के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए लिखा है- "अब तक साहित्य के विभिन्न रूपों के समाजशास्त्र का जो विकास हुआ है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि सभी साहित्य रूपों के समाजशास्त्र का समान विकास नहीं हुआ है। उपन्यास का समाजशास्त्र सबसे अधिक विकसित है तो कविता का समाजशास्त्र सबसे कम।"[80] प्राय: सभी आलोचकों ने अपनी आलोचना के केन्द्र में उपन्यासों को रखा है। जब बात लोकप्रियता की आती है तो उसके केन्द्र में लोकप्रिय अपराध कथाएँ, जासूसी कथाएँ और साहसिक कथाएँ ही हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो सभी

---

[78] हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 214

[79] कवि कह गया है - अशोक वाजपेयी, पृ.सं. 173

[80] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 218

समाजशास्त्रीय आलोचकों ने प्राय: लोकप्रिय अपराध कथाओं, साहसिक कथाओं और जासूसी कथाओं को अपनी आलोचना का विषय बनाया है। जार्ज लुकाच, ल्यूसिए गोल्डमान, लियो लावेंथल और रेमण्ड विलियम्स जैसे समाजशास्त्रीय आलोचकों ने इन्हीं कथारूपों की समाजशास्त्रीय दृष्टि से विवेचना की है, कविता की नहीं।

फ्रांस की मादाम स्तेल के साहित्य चिंतन से साहित्य के समाजशास्त्र का विकास हुआ और अब तक साहित्य के समाजशास्त्र को विकसित हुए दो सौ वर्ष हो चुके हैं। इन वर्षों में साहित्य के समाजशास्त्र का आधार मजबूत हुआ है और उसका पर्याप्त विकास और विस्तार भी हुआ है। समाजशास्त्रीय दृष्टि और पद्धति में भी गहराई और विविधता नजर आती है। इन सबके बावजूद कविता का समाजशास्त्र अभी विकसित नहीं हो पाया है। साहित्य के समाजशास्त्री कविता के विश्लेषण से बचते रहे हैं। मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- "साहित्य के समाजशास्त्र के अब तक के इतिहास में कविता के समाजशास्त्रीय दृष्टि और पद्धति का विकास नहीं हो पाया है। कविता साहित्य के समाजशास्त्र के लिए आज भी एक चुनौती है। यह चुनौती साहित्य के समाजशास्त्र के अधूरेपन का एक प्रमाण भी है। यह ऐसी चुनौती है जिसका सामना करने से अधिकांश समाजशास्त्री बचते हैं। जिन्होंने कोशिश की है उनमें से अधिकांश यांत्रिक या कुत्सित समाजशास्त्री कहे गये हैं। इसलिए बहुत कम समाजशास्त्री कविता से 'मुठभेड़ की' कोशिश करते हैं।"[81]

साहित्य के समाजशास्त्र में कविता पर गंभीरता से विचार नहीं किया गया है। साहित्य के समाजशास्त्र में कविता के विश्लेषण के प्रमाण हम ढूँढ़ते हैं तो हमें निराशा हाथ लगती है। मैनेजर पाण्डेय कविता के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए अंग्रेजी साहित्य की चर्चा करते हैं। अंग्रेजी साहित्य में भी कविता के समाजशास्त्र के विकसित न हो पाने की ओर इशारा करते हुए उन्होंने लिखा है- "अंग्रेजी में साहित्य के समाजशास्त्र की जो मौलिक और संपादित पुस्तकें मिलती हैं, उनमें कहीं भी कविता के समाजशास्त्रीय दृष्टि और पद्धति पर विचार का कोई महत्त्वपूर्ण प्रयास नहीं दिखाई देता,

[81] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 219

फिर किसी कविता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण तो बहुत दूर की बात है। अगर कहीं इस दिशा में कुछ प्रयास हुए हैं तो उनकी दयनीयता स्वयंसिद्ध है।"[82] क्या कारण है कि दो सौ वर्षों के इतिहास में कविता का समाजशास्त्र विकसित नहीं हो पाया है। क्या साहित्य के समाजशास्त्री कविता की समझ नहीं रखते? या इन आलोचकों ने कविता के विश्लेषण की कोशिश ही नहीं की। कविता का समाजशास्त्र विकसित न हो पाने के कारणों पर विचार करते हुए प्रो. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- "कविता अगर आज भी साहित्य के समाजशास्त्र की पकड़ में नहीं आती है, उसे अंगूठा दिखाती है तो इसका एक मुख्य कारण साहित्यिक समाजशास्त्र का वह रूप है जो कविता के स्वरूप को समझने में अक्षम है।"[83]

कविता के स्वरूप को समझने के लिए साहित्य के समाजशास्त्र के प्रतिमानों में बदलाव लाकर ही कविता के समाजशास्त्र को समझ सकते हैं। अब तक जो साहित्य के समाजशास्त्र के प्रतिमान रहे हैं, उन प्रतिमानों के आधार पर कविता के समाज का विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। अगर हम कविता में समाज की खोज उसी तरह करेंगे, जैसे कि हम उपन्यासों और नाटकों के संदर्भ में करते हैं तो यह कविता के रूप के साथ ज्यादती है। कविता का रूप और शिल्प गद्य से भिन्न होता है। कविता का यथार्थ, उपन्यास और नाटक के यथार्थ से भिन्न होता है। कविता में यथार्थवाद को ठीक उसी तरह से नहीं देखा जा सकता, जैसा कि उपन्यास या नाटक के साथ होता है। कविता में यथार्थवाद की अवधारणा को लागू करना या यथार्थवाद के सहारे उसकी आलोचना करना, साहित्य के समाजशास्त्र के प्रतिबिंबन सिद्धांत को दोहराया जाना है। मैनेजर पाण्डेय कविता के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए लिखते हैं- "वर्णनात्मक और कथात्मक कविताओं के प्रसंग में यथार्थवाद भले ही कुछ उपयोगी हो, लेकिन प्रगीत और प्रगीतात्मक संरचनावाली कविताओं की व्याख्या में यथार्थवाद बहुत सहायक नहीं होगा। अगर प्रगीत भी रोमांटिक, बिंबाश्रित, प्रतीक निर्भर और अत्यंत

---

[82] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 219
[83] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 221

आत्मपरक हो तो यथार्थवाद वैसे ही दुर्बल और असहाय सिद्ध होगा।"[84] वस्तुत: यथार्थवाद के सहारे वर्णनात्मक और कथात्मक कविताओं की समाजशास्त्रीय विश्लेषण या व्याख्या तो हो सकती है, लेकिन रोमांटिक, बिंबाश्रित, प्रतीक निर्भर और आत्मपरक कविताओं के संदर्भ में उसकी सीमाएं दिखने लगती हैं। कविता में जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति जब प्रतिनिधिक तौर पर हो, तो वहाँ यथार्थवाद के प्रतिमान के सहारे उसकी व्याख्या हो सकती है।

अब उन कविताओं को देखें, जहाँ यथार्थ की सीधी अभिव्यक्ति नहीं है और कविताओं में सीधी यथार्थ की अभिव्यक्ति देखने को कम ही मिलती है। कविता में यथार्थ और अनुभव की सीधी अभिव्यक्ति उसमें "पुनर्रचित यथार्थ और अनुभव की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए कविता का यथार्थ, जीवन के यथार्थ से अलग होता है, कभी उससे कुछ अधिक, कभी उससे कुछ कम।"[85]

कविता में यथार्थ की अभिव्यक्ति भी कई रूपों में होती है। चूँकि कविता का यथार्थ सतही नहीं होता है इसलिए कविता में यथार्थ की अभिव्यक्ति कई बार प्रतीकात्मक रूप में होती है। कविता में यथार्थ की अभिव्यक्ति पर विचार करते हुए गरिमा श्रीवास्तव लिखती हैं- "उसमें (कविता में) वास्तविक जीवन के यथार्थ के बदले प्रतीकात्मक ढंग से यथार्थ चित्र प्रकट किए जाते हैं। यह रचनाकार की प्रतिभा क्षमता, संवेदन सामर्थ्य पर निर्भर करता है कि वह जीवन के अनुभवों को, यथार्थ को भेदकर उसके भीतर कितने जगह प्रवेश कर कविता की रचना करता है। कविता का यह बहुस्तरीय यथार्थ ही आलोचक के लिए समस्या खड़ी करता है।"[86]

कविता के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में एक बड़ी बाधा उसके यथार्थवादी विरोधी रूप को लेकर है। कविता में यथार्थ बोध की अभिव्यक्ति को लेकर आलोचकों एवं कवियों की राय सकारात्मक नहीं रही है। गरिमा श्रीवास्तव कविता में यथार्थबोध की अभिव्यक्ति पर नाब्लो नेरूदा को अपनी संपादित पुस्तक 'उपन्यास का समाजशास्त्र' में नाब्लो नेरूदा को उद्धृत किया है- "जहाँ

---

[84] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 222
[85] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 223
[86] उपन्यास का समाजशास्त्र - संपादिका गरिमा श्रीवास्तव, पृ.सं. 287

तक यथार्थवाद का सवाल है तो मैं कविता में यथार्थवाद को पसंद नहीं करता। कविता यथार्थवाद विरोधी होती है। उसके यथार्थवाद विरोधी होने के अनेक कारण हैं। आश्चर्य की बात यह है कि कवि इस सच्चाई को समझते हैं लेकिन आलोचक नहीं।"[87]

जहाँ तक साहित्य के समाजशास्त्र के इतिहास में कविता की बात है तो उसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण दो रूपों में किया गया है- एक, कविता को कला और साहित्य का अंग मानकर, और दूसरा, एक स्वतंत्र विधा के रूप में। कविता सबसे प्राचीन विधा है। यह प्रारंभ से ही मनुष्य के अनुभवों को साझा करती रही है। कविता के पास मनुष्य के आदिम अनुभव से लेकर आधुनिक जीवन के प्रसंग सभी कुछ हैं। इसकी संवेदना मनुष्य के सुख-दु:ख से जुड़ती रही है। वह अपने आरंभ से ही मनुष्य के साझे अनुभवों से खुद को एकाकार करती रही हैं। डॉ. शशि मुदीराज ने कविता के समाजशास्त्र के विकास क्रम पर विचार करते हुए लिखी है- "कविता के समाजशास्त्र की नींव रखते हुए हर्डर ने दो महत्त्वपूर्ण प्रत्यय दिए- लोक काव्य और भाषा की उत्पत्ति तथा कविता की उत्पत्ति की अभिन्नता। हर्डर की दृष्टि बहुत व्यापक थी। उन्होंने समस्त जीवन को कविता का क्षेत्र माना है और कहा कि हमारा सारा जीवन ही काव्यशास्त्र है, क्योंकि हम देखने की प्रक्रिया में बिंबों की रचना करते चलते हैं।"[88]

जब कविता के समाजशास्त्र के विकास की बात आती है तो हमें मार्क्सवाद की ओर देखना पड़ता है। मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र कला और साहित्य को अधिरचना के अंतर्गत मानकर उसपर विचार करता है। कविता के अंतर्गत उसको मानकर ही उस पर विचार किया जा सकता है। डॉ. शशि मुदीराज कविता के समाजशास्त्र के विकास के क्रम में क्रिस्टोफर कॉडवेल की पुस्तक 'इल्यूजन एंड रियलिटी' का हवाला देती है, जिसमें कविता के समाजशास्त्र पर विचार किया गया है। इस पुस्तक में कविता के स्रोत एवं उसकी भाषा पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रकाश डाला गया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'छायावाद का समाजशास्त्र' में क्रिस्टोफर कॉडवेल को उद्धृत किया है- "यह पुस्तक केवल

[87] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 223
[88] छायावाद का समाजशास्त्र - डॉ. शशि मुदीराज, पृ.सं. 27

कविता के बारे में है, बल्कि कविता के स्रोतों के बारे में भी है। कविता भाषा में लिखी जाती है और इसलिए यह भाषा स्रोतों के बारे में भी है। भाषा एक सामाजिक उत्पादन है, एक ऐसा साधन जिसके द्वारा लोग एक-दूसरे के साथ संप्रेषण स्थापित करते हैं। इसलिए कविता के स्रोतों का अध्ययन समाज के अध्ययन से अलग नहीं किया जा सकता।"[89] कॉडवेल का कहना है कि कविता, भाषा और समाज में सीधा संबंध स्थापित करके अध्ययन करने से, कविता की आंतरिक संरचना और उन पर प्रभाव डालने वाले सामाजिक आर्थिक तत्वों के बीच सीधा संबंध स्थापित होगा। ऐसा करके ही कविता का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जा सकता है।

साहित्य के समाजशास्त्र के इतिहास में कविता पर जो विचार किया गया है उसमें से एक है- साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य में कविता भी सम्मिलित है तो कविता भी समाज का दर्पण हुआ। यानी कविता में समाज की झलक मौजूद होगी। कोई भी रचनाकार इतना तो यांत्रिक नहीं हो सकता कि वह अपनी रचनाओं में समाज के प्रति कोई प्रतिक्रिया न दे। जहाँ तक कविता की बात है, उसमें यथार्थ की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति होती है। उसमें वर्णन की एक सीमा होती है। उसकी एक संरचना होती है। उसमें समाज के यथार्थ की अभिव्यक्ति इन्हीं सीमाओं के तहत होगी। कवि अपने विवेक के साथ अनुभव, मूल्यचिंता के साथ कविता में कहीं न कहीं मौजूद तो रहता ही है, लेकिन इन्हीं सीमाओं के भीतर। डॉ. गरिमा श्रीवास्तव ने कविता के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए लिखा है- "टी.एस.इलियट ने कविता को जब पलायन के रूप में देखा तो उसका आशय था कि 'स्व' से मुक्ति, रचना के उठान के लिए आवश्यक है। अज्ञेय ने त्रिशंकु में इलियट का रूपांतरण प्रस्तुत करते हुए कहा कलाकार जितना ही संपूर्ण होगा, उतना ही उसके भीतर भोगने वाला प्राणी और रचने वाली मनीषा का पृथकत्व स्पष्ट होगा।"[90]

साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के लिए ल्युसिए गोल्डमान ने उत्पत्तिमूलक संरचना का सिद्धांत दिया। उनका मानना था कि प्रतिबिंबन समाज के बाहर से नहीं भीतर से होता है। केवल तथ्य

[89] छायावाद का समाजशास्त्र - डॉ. शशि मुदीराज, पृ.सं. 27

[90] उपन्यास का समाजशास्त्र - संपादिका गरिमा श्रीवास्तव, पृ.सं. 288

की प्रस्तुति कर देने से कविता संभव नहीं है। कविता में एक सामाजिक दर्शन होता है। इसलिए आलोचक कविता की समाजशास्त्रीय दृष्टि से आलोचना करते समय समाज की स्थिति के साथ-साथ कवि की विचारधारा को भी देखता है।

साहित्य में कई रचनाएँ कालजयी होती है। कालजयी रचना में छिपे अमरत्व के समाजशास्त्र को समझना साहित्य के समाजशास्त्री के लिए महत्त्वपूर्ण है। मॉल्कम ब्रेडबरी ने माना है कि रचना में श्रेष्ठतर मूल्यजीवित रहते हैं। कोई भी कृति या रचना वस्तुओं या स्थितियों का यथातथ्य विवरण प्रस्तुत नहीं करती। वह अपने समाज और समय की परिस्थितियों से लगातार टकराती रहती है। उसके टकराहट में उस लेखक का अमरत्व छिपा रहता है। आलोचक का दायित्व होता है कि वह उस संवेदनात्मक अभिव्यक्ति को पकड़े। रामचरितमानस हिन्दी की कालजयी रचना है। उसके कालजयी होने का एकमात्र कारण धार्मिक नहीं है। उसमें श्रेष्ठ मानव जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। राम का उदात्त चरित्र, भातृ-प्रेम, परिवार के सभी सदस्यों में त्याग की भावना, राजा का कर्तव्य आदि सब कुछ उसमें अभिव्यक्त हुई है, जो लोगों के हृदय से जुड़ती है। सजग आलोचक कालजयी रचनाओं के विश्लेषण में संवेदना के तार्किक क्षमता का भी प्रयोग करता है। मुक्तिबोध ने इसी संदर्भ में 'ज्ञानात्मक संवेदना' और 'संवेदनात्मक ज्ञान' शब्दों का प्रयोग किया है। कविता के समाजशास्त्र पर विचार करने के क्रम में गरिमा श्रीवास्तव ने कविता में यथार्थ के संघर्ष की अभिव्यक्ति पर विचार किया है। इस क्रम में उन्होंने कविता में यथार्थ के रूपों का उल्लेख करते हुए परमानंद श्रीवास्तव को उद्धृत किया है जो उन्होंने मुक्तिबोध की कविताओं में यथार्थ की अभिव्यक्ति और उनके कवि कर्म की जटिलता को रेखांकित करते हुए लिखा है- "मुक्तिबोध के कवि-कर्म की जटिलता अकारण नहीं है। उसके पीछे यथार्थ की कठोर विसंगतियों की चेतना है और वस्तु परिस्थिति का जटिल दबाव है। यथार्थ और फैंटेसी के जिस अंतर्गठन से मुक्तिबोध की कविताएँ संभव हुई हैं, उसके पीछे विराट कल्पना, वैचारिक साहस, उग्र असंतोष और तनावमूलक दृष्टि है।"[91]

---

[91] उपन्यास का समाजशास्त्र - संपादिका गरिमा श्रीवास्तव, पृ.सं. 289

कविता पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विवेचना करने में सबसे प्रमुख बाधा है- यथार्थ की अभिव्यक्ति। कविता में यथार्थ का प्रतिबिंब अन्य कला रूपों से अलग होता है। साथ ही कविता की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह अन्य कलारूपों को अपने अंदर समाहित भी करती है। इसलिए कविता पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने के लिए पर्याप्त सावधानी बरतने की जरूरत होती है। कविता में यथार्थ का प्रतिबिंबन सीधा, सरल, सपाट नहीं होता। कविता में यथार्थ, जटिल, सूक्ष्म और ऐंद्रिक भी होता है। कविता में रूप-प्रतिरूप जैसा प्रतिबिंबन हो भी सकता है और नहीं भी। अपने रूप में कविता गहरी और विशिष्ट विधा है।

कविता के समाजशास्त्र को समझने के लिए कविता के स्वरूप को भी समझने की जरूरत है। कविता में जीवन की ठोस सच्चाइयों को मूर्त रूप में दिखाया जाता है। वह व्यक्ति के अनुभवों को ही ज्यादा महत्त्व देती है। कविता में जो सामाजिक अनुभव होता है, वह भी वैयक्तिक अनुभूति से आता है। हम कविता की सामाजिकता को समाजशास्त्र की उन सामाजिक संस्थाओं, संरचनाओं, संबंधों एवं नियमों से निर्धारित एवं परिभाषित नहीं कर सकते हैं। कविता की व्यापकता में व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से लेकर उसके मानवीय पक्ष तक सभी सम्मिलित हैं। कविता की संवेदना में मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी, प्रकृति सभी सम्मिलित हैं। मैनेजर पाण्डेय ने कविता की सामाजिकता एवं उसकी संवेदना पर विचार करते हुए अर्डोनो को उद्धृत किया है- "कविता से हम आशा करते हैं कि वह समाज के विरूद्ध और व्यक्ति के पक्ष में खड़ी हो, वह भौतिक जीवन के दमनकारी प्रभावों और उपयोगितावादी दबावों से हमें बचाए। कविता से यह मांग भी सामाजिक है।"[92]

कविता के समाजशास्त्र को समझने के लिए कविता की आत्मपरकता पर भी चर्चा करना समीचीन है। कविता में आत्मपरकता होती है। कविता के एक रूप प्रगीत को आत्मपरक रचना ही मानी जाती है। कविता में आत्मपरकता का अर्थ यह नहीं है कि वह सामाजिक नहीं है। कविता दूसरे साहित्य रूपों की तुलना में अधिक गहरे स्तर पर सामाजिक और ऐतिहासिक होती है। उसकी सामाजिकता और

[92] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 224

ऐतिहासिकता की पहचान के लिए कविता की आंतरिक बनावट के प्रति अधिक संवेदनशील अंतर्दृष्टि जरूरी है। इसी तरह से हमें प्रगीत के समाजशास्त्र को समझने के लिए उसके मर्म को समझना होगा, तभी हम प्रगीत में निहित उसकी आत्मपरकता में निहित मानवीयता को समझ सकते हैं।

कविता के समाजशास्त्र को समझने के लिए कविता के रूप पर भी विचार करना जरूरी है। कविता के रूप का संबंध कविता के शिल्प से है। शिल्प का अर्थ कविता की रचना एवं बुनावट से है। कवि शब्दों को गढ़कर एक रूप देता है। कवि इसके लिए जीवन के विविध प्रसंग, रूप, प्रकृति आदि का चुनाव करता है। मैनेजर पाण्डेय ने कविता के समाजशास्त्र पर विचार करने के क्रम में कविता के रूप पर विचार करते हुए लिखा है- "कविता में जीवनानुभव या अनुभूति से रूप का, संबंध, दूसरे साहित्य रूपों की तुलना में अधिक आत्मीय और कुछ जटिल होता है।"[93] कविता के रूप को समझने के लिए कविता में बिंब, प्रतीक, संकेत, फैंटेसी के साथ लय, छंद और संगीत की आंतरिक संरचना को समझना होगा। इनसे ही कविता का विशिष्ट रूप सामने आता है।

कविता पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने के क्रम में भाषा पर भी विचार करना महत्त्वपूर्ण है। कविता की भाषिक संवेदनशीलता में सामाजिक संवेदनशीलता निहित होती है। जब भाषा के स्तर पर कविता समाज से जुड़ती है, "तब कविता की भाषा केवल कवि की मानसिकता को ही व्यक्त नहीं करती, वह अपने समय और समाज की मानसिकता को भी व्यक्त करती है।"[94]

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र पर विचार करने के लिए हमें कविता के समाजशास्त्र के इन पहलुओं को ध्यान में रखना होगा। तभी हम कविता के लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझ सकते हैं।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र के दो आधार हैं- पहला आधार आर्थिक पक्ष से जुड़ा हुआ है तो दूसरा आधार सांस्कृतिक पक्ष से। आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्ष से जोड़कर ही कविता

---

[93] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 225
[94] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 226

की लोकप्रियता के समाजशास्त्र का विश्लेषण किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर उन लोकप्रिय कविताओं को लिया जा सकता है जिसमें सतही हास्य, व्यंग्य, मनोरंजन एवं भावुकता है। हास्य एवं सतही मनोरंजन ही ज्यादातर इन लोकप्रिय कविताओं की विषयवस्तु होती है। इन कविताओं की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को आर्थिक पक्ष से जोड़कर ही समझा जा सकता है। हिन्दी की रीतिकालीन कविताओं के समाजशास्त्र को भी आर्थिक पक्ष से जोड़कर विश्लेषित कर सकते हैं।

सांस्कृतिक पक्ष से जोड़कर उन कविताओं की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझा जा सकता है जो 'नेशनल पॉपुलर' श्रेणी में आते हैं। रामधारी सिंह 'दिनकर', माखनलाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', गोपाल सिंह 'नेपाली' आदि कवियों की कविताएँ 'नेशनल पॉपुलर' श्रेणी में आते हैं और इनकी कविताओं के लोकप्रियता के समाजशास्त्र को इसी दृष्टि से समझा जा सकता है। कालजयी श्रेणी के जातीय कवियों को जैसे- तुलसीदास, कबीर, रैदास आदि के समाजशास्त्र को भी इसी दृष्टि से विश्लेषित किया जा सकता है।

अत: कविता के लोकप्रियता के समाजशास्त्रीय विश्लेषण को समग्रता से समझने के लिए कविता को आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्ष से जोड़कर उसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना होगा। समाजशास्त्र में कविता को एक उत्पाद माना गया है। यही कारण है कि आर्थिक प्रक्रिया को इसमें शामिल किया गया है। इसमें मुख्य रूप से तीन बातों की चर्चा की जाती है-

I. रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंधों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखना, परखना एवं उसको विश्लेषित करना।

II. रचना के प्रकाशन एवं उसकी निरंतरता को समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषित करना। रचना के प्रकाशन एवं पुन: प्रकाशन के अंतराल एवं उसकी मांग की निरंतरता की समाजशास्त्रीय दृष्टि से पड़ताल करना।

III. रचना की प्रासंगिकता पर आलोचकों की क्या प्रतिक्रिया रही है, इसकी समाजशास्त्रीय दृष्टि से पड़ताल करना।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के लिए पहले रचना, रचनाकार एवं पाठक संबंध को समझना आवश्यक है। साहित्य के समाजशास्त्र की दो धाराएँ हैं- एक, मीमांसावादी, जिसमें साहित्य में समाज की खोज की जाती है। मीमांसावादी धारा के अंतर्गत ही मार्क्सवादी, आलोचनात्मक समाजशास्त्री और संरचनावादी समाजशास्त्री हैं।

दूसरी अनुभववादी, जिसमें पुराने विधेयवादी दृष्टि के साथ संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टियाँ शामिल हैं।

मीमांसावादी रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंध को समझने के लिए सामाजिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया को आवश्यक मानते हैं। और इसे समझने के लिए यथार्थवादी दृष्टि अपनाने की बात करते हैं। उनका मानना है कि केवल कुछ तथ्यों एवं अनुभवों के आधार पर इसे नहीं समझा जा सकता है। रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंध को समझने के लिए एक सैद्धांतिक ढाँचा होना चाहिए, जिससे साहित्य और साहित्य निर्माण के गतिशील संबंध को समझा जा सके। साहित्य प्रक्रिया को समझने के लिए इनका जोर रचना की विवेचना में होता है। यह विचारधारा रचना की व्याख्या, रचना में विचारधारा की पहचान और विचारधारा के सौंदर्यबोधीय रूप का विवेचन करके रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंध का विवेचन करते हैं।

अनुभववादी विचारधारा इंद्रियबोध, प्रतीति और अनुभव के आधार पर रचना, रचनाकार एवं पाठक अंतर्संबंध को समझने पर जोर देते हैं। यह विचारधारा रचना में प्रवेश करने से बचती है। वह जीवन के अनुभवों को ज्यादा महत्त्व देती है। वह रचना में उपस्थित मूल्यों, विचारधाराओं एवं संघर्ष से बचकर रचना की व्याख्या करना चाहती है।

रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंध को समझने के लिए हमें दोनों विचारधाराओं को अपनाना होगा और उनके आधार पर रचना की लोकप्रियता को समझना होगा। कविता का यथार्थ साहित्य की अन्य विधाओं से अलग होता है। इसलिए कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के लिए उसके यथार्थबोध को समझना होगा। कविता में उपस्थित यथार्थ की पहचान कर

कविता की परिस्थितियों के साथ कविता के कलात्मक प्रभाव एवं उसकी अंत:प्रकृति पर विचार कर ही कविता की लोकप्रियता की सामाजिकता को समझ सकते हैं।

कविता की लोकप्रियता की सामाजिकता के बाद कविता की लोकप्रियता पर पाठक की अभिरुचि पर विचार करना आवश्यक है। मैनेजर पाण्डेय ने साहित्यिक अभिरुचि के समाजशास्त्र पर विचार करते हुए लेविन एल. शूकिंग को उद्धृत किया है- "साहित्य के इतिहास के सामने मुख्य सवाल यह होना चाहिए कि किसी समय में एक राष्ट्र या जाति के विभिन्न वर्गों के लोगों के बीच कौन-सा साहित्य लोकप्रिय था और उसकी लोकप्रियता के क्या कारण थे। इस मुद्दे पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए उन्होंने जिन तीन बिन्दुओं को दृष्टिपथ में रखना जरूरी समझा है, वे हैं- (i) युग की बौद्धिक चेतना (ii) पाठक समुदाय में परिवर्तन (iii) पाठक वर्ग के विस्तार से साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन।"[95]

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के क्रम में पाठक की रुचि-अभिरुचि का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है। किसी विशेष समय में पाठक की रुचि किधर और किस रूप में रही, इसका विश्लेषण आवश्यक है। पाठक की रुचि से साहित्य प्रभावित होता है। जो कविता समाज में पढ़ी और सुनी जा रही होती है, वैसी कविता की विपुल मात्रा में रचना होना इसका प्रमाण है।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के क्रम में कविता के वर्गाधार पर भी विचार करना जरूरी है। कविता अपने समय एवं समाज की ही उपज होती है। जो कविता लोकप्रिय होगी, उसका एक वर्गाधार भी होगा। हमें देखना होगा कि उस वर्गाधार में कौन-कौन लोग शामिल हैं। वह लोकप्रिय कविता समाज के किन लोगों का प्रतिनिधित्व कर रही है। उस कविता को समाज में कौन-से लोग सुन रहे हैं या पढ़ रहे हैं। उस लोकप्रिय कविता का पाठक समाज का अभिजात्य वर्ग है या समाज का निम्न वर्ग।

[95] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 27-28

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र के व्यापक परिदृश्य को समझने के क्रम में हमें कविता के सर्जक कवि के जीवन मूल्यों, आदर्शों एवं संघर्षों को भी सामाजिक परिस्थिति के रूप में विश्लेषित करना होगा। इस क्रम में लोकप्रिय कविता के पाठक एवं श्रोता की सामाजिकता एवं मानसिकता को भी विश्लेषित करना होगा, जिससे उनका सामाजिक परिदृश्य उभरकर सामने आएगा।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के क्रम में हमें उस कविता की लोकप्रियता के प्रकाशन एवं निरंतरता को समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषित करना होगा। कोई कविता लोकप्रिय होगी तो वह बार-बार पढ़ी जाएगी या सुनी जाएगी। कहने का अर्थ है कि कविता के पाठकों के साथ-साथ हमें उसके श्रोताओं को देखना होगा। कविता के पुन: प्रकाशन एवं प्रकाशन और पुन:प्रकाशन के बीच के अंतराल से उसकी मांग की निरंतरता को समझा जा सकता है। सोशल मीडिया के आगमन से प्रकाशन का परिदृश्य बदल गया है। अब लोकप्रिय कविताओं को सोशल मीडिया के प्लेटफार्म पर प्रकाशित किया जा रहा है एवं सुना भी जा रहा है।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के क्रम में एक दृष्टि आलोचकों पर भी डालनी होगी। ऐसे भी लोकप्रिय कविताओं पर आलोचक लिखने से बचने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। इस क्रम में कविता की लोकप्रियता की प्रासंगिकता पर आलोचक की दृष्टि क्या रही है, इसकी पड़ताल की जानी चाहिए।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को सांस्कृतिक पक्ष से जोड़कर समझने के क्रम में कविता के लोकप्रियता को कथ्य सापेक्षता की दृष्टि से एवं शिल्प सापेक्षता की दृष्टि से उसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हैं। कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से विश्लेषित करने के लिए कविता की अंतर्वस्तु एवं शिल्प की सामाजिकता को समझना होगा। कविता की अंतर्वस्तु में ऐसा क्या है, जिसके कारण वह कविता लोकप्रिय हुई। कविता की अंतर्वस्तु को कविता की संवेदना एवं उसके निर्मिति के कारणों की सामाजिक पड़ताल के माध्यम से समझ सकते हैं। इसी तरह कविता के शिल्प की सामाजिकता को समझना होगा। कविता की लोकप्रियता के

संबंध में देखना होगा कि उसकी काव्य-संवेदना में कितनी विविधता है और जीवन के किन पक्षों से उसकी संवेदना जुड़ी हुई है। फिर कविता की ढाँचा या बुनावट को समझना होगा। क्योंकि कविता की एक निर्मिति होती है और वह निर्मिति भाषा में ही रूपायित होती है। इस क्रम में हम मिथक, बिंब एवं प्रतीकों के प्रयोग को भी देख सकते हैं। साथ ही शब्दों के चयन एवं उनके उतार-चढ़ाव से उसकी लयात्मक, लोच एवं संगीत तत्व को जान सकते हैं।

तृतीय अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' का रचना संसार

गोपाल सिंह 'नेपाली' एक लोकप्रिय कवि और गीतकार रहे हैं। उनमें एक कवि की नैसर्गिक प्रतिभा थी। उत्तरछायावाद दौर के 'कवि त्रयी' (बच्चन-दिनकर-नेपाली) की एक कड़ी नेपाली ही थे। उन्होंने अद्भुत प्रेम गीत रचे हैं। प्रकृति से उनका लगाव बचपन से ही था। प्रकृति से यही लगाव उनकी कविताओं में भी दिखाई देता है। राष्ट्रप्रेम उनकी कविताओं का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा है। उन्होंने आजादी के पहले देशभक्ति की कविताएं लिखी हैं, तो आजादी के बाद भी। जहाँ मंचीय कवि के रूप में उन्होंने अपार लोकप्रियता हासिल की, वहीं फिल्मी दुनिया में अपनी पहचान एक सफल गीतकार के रूप में बनायी।

3.1 गोपाल सिंह 'नेपाली' रचित कृतियाँ

गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य जीवन की शुरूआत किशोरवय अवस्था में हुई। उस समय उनकी आयु सोलह वर्ष थी और वे बेतिया राज उच्च विद्यालय के छात्र थे। उनके काव्य प्रतिभा के प्रस्फुटन में उनके दो गुरूओं- श्री महावीर सिंह 'वीरन' और मंगल पाण्डेय का अहम योगदान था। महावीर सिंह 'वीरन' स्वयं एक प्रतिभासंपन्न कवि थे। उनकी एक काव्यकृति 'मानसलहरी' सन् 1901 में प्रकाशित हो चुकी थी। वहीं, मंगल पाण्डेय प्रखर साहित्य सेवी थे। उनकी विशेष रुचि छात्रों में साहित्यिक संस्कार विकसित करने में थी। इन दोनों के साहचर्य में ही वे काव्य रचना की ओर उन्मुख हुए। नंदकिशोर नंदन ने गोपाल सिंह 'नेपाली' के संबंध में लिखा है- "काव्य-गगन में नेपाली 1927 में अपनी पहली कविता 'भारत गगन के जगमग सितारे' के साथ अवतरित हुए, जिसे लोगों ने पहले तो उनके मधुर कंठ से सुना और बाद में वही कविता हिंदी के प्रख्यात पत्रकार, नाटककार और शब्द चित्रकार रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा संपादित 'बालक' पत्रिका में प्रकाशित हुई। नेपाली की कवित्व-प्रतिभा के पुष्पों का प्रस्फुटन तो और पहले से ही हो रहा था, लेकिन सोलह वर्ष की अवस्था में इस कविता के जरिये वह कवि के रूप में प्रकाश में आने लगे। 1927 से 1930-32 तक आते-आते

उनकी प्रतिभा से हिंदी जगत भली-भांति परिचित हो उठा।"[96] बाल मासिक पत्रिका 'बालक'के नवम्बर 1930 में उनकी पहली रचना 'भारत गगन के जगमग सितारे' प्रकाशित हुई। इसके बाद उनकी कविताओं के प्रकाशन का जो दौर शुरू हुआ, वह उनके अंत तक बना रहा। 1931 ई. में मोतिहारी से प्रकाशित 'विकास' पत्रिका के कई अंकों में भी उनकी बाल कविताएं छपीं।

सन् 1931 ई. में गोपाल सिंह 'नेपाली' को पहली बार अखिल भारतीय स्तर के साहित्य सम्मेलन- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता अधिवेशन में भाग लेने का सुअवसर मिला। जहाँ उनकी मुलाकात आचार्य शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामधारी सिंह 'दिनकर' और बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे साहित्यकारों से हुई। इस मुलाकात का उनके जीवन पर गहरा असर हुआ। वे अब काव्य रचना के साथ साहित्य संगठन की ओर भी उन्मुख हुए। बेतिया में उन्होंने 'कविवासर' नामक एक साहित्यिक संस्था की स्थापना की, जहाँ नियमित रूप से साहित्यिक संगोष्ठियां आयोजित की जाती। इसी संस्था के साथ सन् 1932 ई. में नेपाली ने हस्तलिखित पत्रिका 'प्रभात' और 'द मुरली' नामक अंग्रेजी की टाइप की हुई पत्रिका का संपादन किया। सन् 1932 में इलाहाबाद (प्रयाग) में द्विवेदी मेला आयोजित किया गया, जहाँ पुन: एक बार इन्हें काव्य पाठ करने का मौका मिला। "उनके काव्य पाठ ने श्रोताओं को सम्मोहित कर लिया। दैनिक 'आज' ने अपनी टिप्पणी में उनके काव्यपाठ को सर्वश्रेष्ठ ठहराया। कथा सम्राट प्रेमचंद तो उछल ही पड़े और गले लगाकर पूछा- 'बरखुदार कविताई क्या माँ के पेट से सीखकर आये हो।' प्रेमचंद उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने दो वर्षों की अवधि में ही उनकी दस कविताएँ अपनी प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'हंस' में प्रकाशित की।"[97] इस समारोह के बाद श्री दुलारे लाल भार्गव से उनका संपर्क हुआ। उन्होंने नेपाली को अपनी पत्रिका 'सुधा' (लखनऊ) के संपादन विभाग में काम करने के लिए बुला लिया। यहीं महाकवि निराला से उनका परिचय हुआ तथा उनका साहचर्य प्राप्त हुआ। वहीं उन्होंने अपनी काव्य कृति 'पंछी' को अंतिम रूप दिया। जिसकी भूमिका स्वयं निराला जी ने लिखी। सन् 1934 ई. में वे ऋषभ

[96] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 15
[97] गोपाल सिंह नेपाली - डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 13

चरण जैन के संपादन में दिल्ली से प्रकाशित होने वाले विविध विषय विभूषित सिनेमा प्रधान साप्ताहिक 'चित्रपट' के सहायक संपादक बने। ऋषभ चरण जैन के सौजन्य से उनका पहला काव्य संग्रह 'उमंग' अप्रैल 1934 ई. में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की भूमिका प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत ने लिखी। इसी वर्ष 'पंछी' का प्रकाशन भी हुआ। 'पंछी' गंगा पुस्तकमाला लखनऊ के 144वें पुष्प के रूप में प्रकाशित हुआ। 'उमंग'से लेकर 'हिमालय ने पुकारा' तक उनके कुल 7 काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। इन संग्रहों के अलावा देश की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी सैकड़ों कविताएँ प्रकाशित हुई।

1. उमंग

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं का प्रथम काव्य संग्रह है। इस काव्य संग्रह में उनकी कुल छोटी-बड़ी 63 कविताएं संकलित हैं। 'उमंग' का प्रथम प्रकाशन सन् 1934 ई. में प्रकाशित हुआ था। परवर्ती संस्करणों में दो कविताएं इसमें से निकाल दी गई। 'उमंग' के पंचम संस्करण 1986 में 61 कविताएं संकलित हैं। 2011 ई. में गोपाल सिंह 'नेपाली' के जन्मशती के अवसर पर नंदकिशोर नंदन के संपादन में इसका नया संस्करण प्रकाशित हुआ।

'उमंग' की कविताएं उनके प्रारंभिक जीवन की सृजनात्मकता का परिचय हमें कराती है। इस काव्य-संग्रह में प्रकृति प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और जीवन के विविध अनुभवों की मार्मिक अभिव्यक्ति सहज-सरल भाषा में हुई है। प्रकृति की सजीव एवं सहज कविताओं के अंतर्गत 'हरी घास', 'पीपल', 'मंसूरी की तलहटी', 'बेर', 'सरिता', 'हिलोर', 'पंछी', 'मौलसिरी', 'मधु ऋतु', 'वसंत', 'किरण', 'नौका विहार' और 'देहात' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। छायावाद के बाद छायावादोत्तर काल के जिन कवियों ने प्रकृति का चित्रण किया है, उनकी तुलना में नेपाली जी का प्रकृति चित्रण उत्कृष्ट है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने जब अपने काव्य सृजन की यात्रा आरंभ की, तब वह समय छायावाद के उत्कर्ष का था। इसलिए इनकी आरंभिक रचनाओं में छायावादी काव्य संस्कार दिख जाते हैं। लेकिन जल्द ही वे पुराने को अस्वीकार कर नए युग और नए परिवर्तन का स्वागत करने को तत्पर दिखते हैं-

"अरे युगान्तर, आ जल्दी अब खोल, खोल मेरा बंधन
बँधा हुआ इन जंजीरों से तड़प रहा कब से जीवन।"[98]

'उमंग' उनका पहला काव्य संग्रह है। फिर भी इस काव्य संग्रह में जीवन की गहन एवं सहज मानव अनुभूतियों की व्यंजना करने वाली कविताएं मौजूद हैं। 'तत्व', 'अंतर', 'कारण', 'निश्चय', 'परिचय', 'अनुरोध', 'लालसा', 'परिवर्तन', 'वचन' और 'करुणा' शीर्षक कविताएं अपनी गहरी अनुभूति के कारण हमारा ध्यान बरबस खींचती है। 'निश्चय' कविता की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"चाहे हो मेरे विरूद्ध में भावी का सारा निर्णय
चलता रहूँ राह पर अपनी, जग में मचता रहे प्रलय
लगता जहाँ तनिक जाने में बड़े-बड़े वीरों को भय
उस वेदी पर चढ़कर देखूँ, रे यह यौवन का निश्चय।"[99]

जब गोपाल सिंह 'नेपाली' ने काव्य सृजन प्रारंभ किया, उस समय स्वतंत्रता आंदोलन चरम पर था। ऐसे समय में वे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से खुद को अलग कैसे कर सकते थे। इसलिए उनकी कविताओं में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की गहरी अनुभूति की अभिव्यक्ति है। "स्वाधीनता आंदोलन की क्रांतिकारी चेतना को प्रतिबिंबित करने वाली 'हम', 'सत्याग्रह', 'मोहन से', 'स्वागत', 'प्रस्थान' और 'स्वतंत्रता की ओर' शीर्षक कविताएँ हैं।[100] महात्मा गांधी उस समय भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के केन्द्र में थे। उन्होंने भारतीय जनता को साथ लेकर अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन छेड़ रखा था। लेकिन नेपाली का युवा मन सत्य और अहिंसा की जगह सशस्त्र संघर्ष का हिमायती था। इसलिए वे अपनी क्रांतिकारी चेतना का परिचय देते हुए गाँधी जी को ब्रिटिश सत्ता से समझौते की नीति छोड़कर संघर्ष करने का आह्वान करते हैं, उन्हें ब्रिटिश सत्ता के द्वारा भारतीयों के बर्बर-शोषण दमन की ही नहीं, राष्ट्रीय स्वाभिमान की भी याद दिलाते हैं। नेपाली जी की पक्षधरता आम जनता के प्रति थी।

[98] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 18
[99] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21
[100] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 10

इसलिए दरिद्र, दुःखी और दास भारत की दशा उन्हें व्यथित करती थी। इस काव्य संग्रह में से 'मोहन से', 'स्वागत', 'सत्याग्रह', 'हम', 'स्वतंत्रता की ओर', 'प्रस्थान' और 'उद्गार' शीर्षक कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जहाँ नेपाली जी ने अपनी जन पक्षधरता को दिखाया है।

"लगता है मेला अलबेला बलिवेदी पर प्राणों का
ऐसी-वैसी यह न लड़ाई, महासमर मरदानों का
जिसमें अंत नहीं आहुति का, प्राणों के बलिदानों का।"[101]

नेपाली को प्रेम, सौंदर्य और यौवन का अलमस्त गायक कहा जाता है। ये मनुष्य ही नहीं, मनुष्येतर प्रकृति से भी समान गहराई के साथ प्रेम करते हैं। इनकी कविताओं में जवानी का जोश है तो यौवन की मस्ती भी है। इस काव्य संग्रह की 'मस्ती', 'चिह्न', 'उमंग' और 'जवानी' शीर्षक कविताएँ उनके मस्तीपन और फक्कड़पन के अंदाज को ही अभिव्यक्त करती है। 'प्रेम' शीर्षक कविता से इनकी प्रेम दृष्टि को देखा जा सकता है-

"तुम कब समझोगे नंदन वन के
सुंदर, सरस, सुमन सुकुमार
इठला इठला कर करते हैं
कुछ दिन वन-समीर से प्यार।"[102]

इस काव्य संग्रह की सबसे द्रवित करने वाली कविता है- 'डगमग बिहार'। सन् 1934 में बिहार में विनाशकारी भूकंप आया था, जिसमें जान-माल की व्यापक क्षति हुई थी। उन्होंने 'डममग बिहार' कविता लिखकर भूकंप से पीड़ित जनता की वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति की है-

"सुन हिली धरा, डोली दुनिया, भव सागर में डगमग बिहार
'वैशाली', 'मिथिला' जब उजड़ी तब उजड़ गया लगभग बिहार
है व्यर्थ प्रश्न यह, कौन मरा

---

[101] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 83
[102] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27

जब बालू से ही कुँआ भरा

गिर पड़े भवन, उल्टी नगरी

फट गई 'हमारी वसुंधरा'।"[103]

2. पंछी

'पंछी' गोपाल सिंह 'नेपाली' की 'उमंग' के बाद की कृति है। इसका प्रकाशन भी सन् 1934 में हुआ। नेपाली ने इस काव्य कृति को सरस-सरल कविताओं का संग्रह कहा है। इस काव्य कृति की प्रस्तावना सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने लिखी है। 'पंछी' काव्य दो पंछियों की प्रणय कथा को लेकर चलता है। इस काव्य में कुल तीन पात्र हैं- वनराजा, वनरानी और बुलबुल। यह काव्य प्रतीक काव्य के रूप में है। वनराजा और वनरानी पुरुष और स्त्री के प्रतीक हैं और उनकी गाथा मानव-जीवन की शाश्वत गाथा है।

पंछी काव्य दो पंख में बँटा हुआ है। पहले पंख में वनरानी, वनराजा, आलिंगन, गगन पथ से, क्रीड़ा तथा अधीरता खंड है। दूसरे पंख में वियोग, चीत्कार, विदा, विलाप, आश्वासन, चिरप्रेमी तथा चहक खंड है।

'पंछी' काव्य के विषय में गोपाल सिंह 'नेपाली' ने लिखा है- "दूसरी कविता-पुस्तक निकली 'पंछी'। यह मेरे प्रभात काल की 15 मिन्टी रचना है। 'पंछी' के रूप में मैंने कोई खास चीज दी, ऐसा समझ लेने की धृष्टता से मैं बराबर बचता रहा हूँ। 'पंछी' मेरी एक ऐसी दृष्टि है, जो मैंने काव्य की गंभीर धारा में डुबकी लगाते वक्त चारों और फेंकी थी।"[104] नेपाली जी इस काव्य कृति को अपनी महत्त्वपूर्ण कृति मानने से बचते रहे। लेकिन पाठकों ने इसे काफी पसंद किया। प्रकृति की मनोहर छवि के साथ एकनिष्ठ प्रेम की कथा पाठकों के हृदय को छू लेती है।

नेपाली ने वनरानी को 'उस सनातन प्रेमिका' के रूप में वर्णित किया है, जो अपने रूप, गुण, शील और गरिमा से गर्व की अधिकारिणी है। वह अपनी मर्यादा और नारी वर्गोचित गुणों से बँधी है।

[103] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 103

[104] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 7

वह अपने संसार में मग्न रहती है। कितने ही प्रेमी उसके पास प्रणय-निवेदन लेकर आते हैं लेकिन वह सबकी उपेक्षा कर देती है।

> "तरुण हृदय का दान माँगने कितने भिक्षुक आए,
> ....
> पर इस निर्मम 'वनरानी' ने सबको ही ठुकराया
> रोकर, मरकर सब कुछ कर-कर धन न किसी ने पाया।"[105]

एक दिन कुसुम वन का वनराजा भटकते हुए पल्लव वन में आ जाता है। वनराजा भी अकेला था। वह अभी तक किसी सुंदर कोकिल से बँध नहीं सका था। वह अपने पर गर्वान्वित था। नेपाली ने वनराजा को उस सनातन प्रेमी के रूप में अंकित किया है, जिसे अपने रूप, गुण, ऐश्वर्य पर अभिमान है। वनराजा के गाने पर वनरानी उस पर रीझ जाती है। वह वनराजा से मिलने को बेचैन हो जाती है। वनरानी की बेचैनी एक प्रेमिका की बेचैनी है, जो एक प्रेमिका के हृदय में छिपी हुई प्रेम की अभिलाषा को जगाकर प्रेमी के लिए तड़प रही है। उसे लग रहा है कि उसे जन्म-जन्म का साथी मिल गया है। जिसकी तलाश में वह एकाकी जीवन जी रही थी, वह तलाश पूर्ण हुई। प्रेमी-प्रेमिका का जब दर्शन होता है, जब दोनों की आँखें एक-दूसरे से चार होती हैं-

> "बंद बाँसुरी हुई वृक्ष में छाई नीरवता सी,
> आँखें चार हुई दोनों की नेह-नीर की प्यासी,
> नाच उठी लोचन में माया लज्जा सी, ममता सी
> दीख पड़ी दोनों को कुछ-कुछ चित्रों में समता सी।"[106]

वनराजा की तलाश वनरानी पर और वनरानी की तलाश वनराजा पर पूर्ण हो जाता है। दोनों प्रेमी-प्रेमिका आलिंगन में बँध जाते हैं। उनका यौवन पूर्णता प्राप्त करता है। इसके साथ ही इस काव्य का पहला पँख भी पूर्णता प्राप्त कर लेता है।

---

[105] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 19
[106] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 25

इस काव्य के दूसरे पँख में वियोग, वियोग की दशा में वनरानी की दशा और अंतत: दोनों के पुनर्मिलन को सुंदर तरीके से अभिव्यक्त किया गया है। वनराजा और वनरानी दोनों के दिन सुख से बीत रहे थे कि अचानक एक दिन हवा का झोंका आया और वनराजा को दूर उड़ा ले गया। वनराजा, वनरानी से बिछुड़ गया। वनराजा के वियोग में वनरानी की दशा एक विरहनी की मनोदशा है, जिसकी मार्मिक अभिव्यक्ति नेपाली जी ने की है-

"रोते-रोते रजनी बीती, रोते ही दिन आया,
रोते-रोते शिथिल पड़ गयी उसकी नन्हीं काया,
पिघल चली करुणा आहें से, दृग में जल भर आया,
रात-रात भर जाग-जाग जल आँखों में ढुलकाया।"[107]

वनरानी, वनराजा को ढूँढने के लिए दसों दिशाएँ घूमती है। जब रो-रो के वनरानी का हाल बुरा था, तभी उसे एक सखी बुलबुल मिलती है। बुलबुल को नेपाली जी ने उस सहेली के रूप में वर्णित किया है, जो अपनी सखी के दु:ख में दु:खी है और सहज करुणा से द्रवित होकर उससे सहानुभूति जताती है। वनराजा को ढूँढते-ढूँढते वनरानी और बुलबुल एक ऐसे स्थान पर पहुँचती है, जहाँ एक कोटर में एक पंछी अपनी अंतिम साँस ले रहा था। उसका शरीर जर्जर हो चुका था। वह पंछी वनराजा था। वनराजा को देखते ही वनरानी पुलकित मुस्कान से भर जाती है और वापस चलने को कहती है। लेकिन वनराजा तो सिर्फ वनरानी से मिलने के लिए ही जिंदा था। वह वनरानी से गले मिलकर प्राण त्याग देता है। वनरानी भी आगे कुछ बोल नहीं पाती। उसकी गला रूँध जाती है और आँखों से अश्रु झरने लगते हैं और वह भी प्राण त्याग अपने चिर-प्रेमी से कभी न बिछुड़ने के लिए मिल जाती है।

नेपाली जी ने दो पंछियों के माध्यम से प्रणय-कथा कही है। इस काव्य में उन्होंने प्रेम का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। यहाँ संयोग और वियोग दोनों की ही अभिव्यक्ति पाठकों के हृदय को छू लेती है।

---

[107] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 41

इस काव्य में उन्होंने प्रकृति का भी बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है।

3. रागिनी

'रागिनी' गोपाल सिंह 'नेपाली' की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इन कविताओं में स्वतंत्रता की बलवती भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इन कविताओं की पृष्ठभूमि में प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति का काल है, जब दूसरे देशों की स्वतंत्रता की रक्षा कर युद्ध से भारतीय सैनिक अपने देश लौट रहे थे। प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटेन ने भारत को युद्ध में झोंक दिया था। भारतीयों ने यह सोचकर ब्रिटेन का साथ दिया था कि युद्ध की समाप्ति पर भारत को स्वतंत्र कर दिया जाएगा। लेकिन ब्रिटेन का ऐसा कोई इरादा नहीं था। उन लौटै हुए सैनिकों में से एक गोपाल सिंह 'नेपाली' के पिताजी रेल बहादुर सिंह भी थे, जिन्होंने उन्हें अपने उस घाव का दाग दिखलाया था, जो लड़ाई के मोर्चे पर लगी गोली से पैदा हुआ था। इन लौटे हुए सैनिकों में भी अपने देश की स्वतंत्रता के लिए मर मिटने की विद्रोही चेतना पनप रही थी। रागिनी की 'विद्रोही', 'जंजीर', 'टुकड़ी', 'भाई-बहन' जैसी कविताओं की रचनाभूमि यही है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' का गहरा सरोकार राष्ट्रीय आंदोलन से था। वे राष्ट्रीय आंदोलन से निरंतर जुड़े रहे। नेपाली जी अपनी प्रेरणा का स्रोत माखनलाल चतुर्वेदी को मानते थे। चतुर्वेदी जी राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि थे। 'रागिनी' एक लघु काव्य संग्रह है। इस काव्य संग्रह में उनकी 31 कविताएँ संकलित हैं। इन 31 कविताओं में से 9 कविताएँ राष्ट्रीय आंदोलन एवं उसमें तरूणाई की भूमिका से गहन सरोकार रखती हैं। इनमें से तो दो कविताएँ तो राष्ट्रीय आंदोलन के समय सबकी जुबान पर थीं। चाहे बूढ़े हो या जवान, सबने इन कविताओं को कंठस्थ किया। ये दो कविताएँ हैं- 'टुकड़ी' और 'भाई-बहन'। 'टुकड़ी' 8 पंक्तियों की एक छोटी सी कविता है, लेकिन है बड़ी बेधक। इस कविता में अंग्रेजी सरकार के पिट्ठू भारतीयों की कायरता पर तीखा प्रहार किया गया है। उनकी अवसरवादिता को आड़े हाथ लिया गया है। इतना ही नहीं वीर और कायर का अंतर दो टूक शब्दों में बता दिया गया है। इस कविता से अंग्रेजी प्रशासन के भी कान खड़े हो गए थे।

"चल बढ़ बची हुई टुकड़ी अब / कर न विचार, तनिक क्या बीता

कदम-कदम पर ताल दे रहा / गरज, दमक, हुंकार पलीता

मरते हैं डरपोक घरों में / बाँधे गले रेशम का फीता

यह तो समर, यहाँ मुट्ठी भर / मिट्टी जिसने चूमी जीता।"[108]

'भाई-बहन' शीर्षक कविता स्वतंत्रता आंदोलन के समय काफी लोकप्रिय हुई। यह कविता लोगों की जुबान पर चढ़ गई थी। यह कविता नवयुवक-नवयुवतियों को देश पर बलिदान होने के लिए प्रेरित करती थी। यह सन् 1934 का समय था। गाँधी जी द्वारा उस समय आंदोलन वापस ले लिया था। देश में निराशा का वातावरण था। ऐसे समय में नेपाली की इन पंक्तियों ने देश के लिए बलिदान होने की प्रेरणा दी-

"भाई एक लहर बन आया, बहन नदी की धारा है।

संगम है, गंगा उमड़ी है, डूबा कूल-किनारा है

यह उन्माद, बहन को अपना भाई एक सहारा है

यह अलमस्ती, एक बहन ही भाई का ध्रुवतारा है

पागल घड़ी, बहन-भाई है, वह आजाद तराना है।

मुसीबतों से, बलिदानों से, पत्थरों को समझाना है।"[109]

इस संग्रह की कविता 'विद्रोही' विद्रोह करने की प्रेरणा भारतीयों को देता है। बिना विद्रोह किए स्वतंत्रता हासिल नहीं हो सकती। विद्रोही नवनिर्माण करता है, लेकिन पहले वह सब कुछ नष्ट करता है। उसके लिए स्वर्ग की कल्पना नहीं होती।

"एक अनिष्ट के संगी साथी, स्वर्गों की कल्पना न कर

....

अट्टहास कर विग्रह, सोने की लंका में आग लगे।"[110]

---

[108] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 45

[109] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51

[110] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 22

इस काव्य संग्रह की ‘विद्रोही’, ‘जंजीर’, ‘तरूणाई’, ‘देश-दहन’, ‘अलख’, ‘जवानी’ शीर्षक कविताएँ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रति नेपाली की प्रतिबद्धता को प्रतिबिंबित करती है। ‘देश-दहन’ की निम्न पंक्तियाँ स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में द्रष्टव्य है-

“बस, आगे तू बढ़ न मसीहा, / ऐसे पुतले गढ न मसीहा
तुर्की चाल कदम अंग्रेजी / तब के दोहे पढ़ न मसीहा
ऐसा ताप जवानी का यह, देश-दहन की यह ज्वाला
किंकण के बदले है कंकड़, प्राण गा रहे चौताला।”[111]

इस काव्य संग्रह में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के बाद प्रकृति-प्रेम की अभिव्यक्ति काफी सशक्त है। इस काव्य में प्रकृति का नैसर्गिक चित्रण हृदय को छू लेता है। ‘वनश्री’, ‘काले मेघों के गर्जन में’, ‘धारा’, ‘सावन-भादो’,, ‘मालव की डगर पर’, ‘पावस और कवि’ जैसी कविताओं में प्रकृति का जीवंत चित्रण है। ‘पावस’ ऋतु कवि को आकर्षित करती है, तभी तो वह कहता है-

“यह कवि की प्यारी बेला रे, काले घन का घिर आना
श्रम हरने के लिए शांति में, मन चाहे जब कुछ गाना
जब आँखों के आगे टपकें आँखों की जैसी बूँदे
तब पावस का एक अनुभवी, कवि कैसे आँखें मूँदे।”[112]

‘रागिनी’ में कवि के प्रकृति-प्रेम के साथ मानवीय प्रेम, भावना और करुणा की भी अभिव्यक्ति मिलती है। प्रेम को तो हृदय से ही जाना जा सकता है। प्रेम की वेदना गहरी और व्यापक होती है और सच्चा प्रेमी जीवन भर उसी में डूबता-उतराता है। इसलिए कवि कहता है-

“भीतर रोना, बाहर हँसना, संगिनी जान गया हूँ मैं
नाच गई काटों में मीरा / झूम-झूम गा गए कबीरा
जग बदला मेरी बारी में / गंगा बनी गहरी गंभीर

[111] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 28
[112] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 42

इतना है कि प्रेम की वाणी पहचान गया हूँ मैं।"[113]

इस प्रकार नेपाली जी का यह काव्य संग्रह एक महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि काव्य संग्रह है। इस काव्य संग्रह में राष्ट्र प्रेम, प्रकृति प्रेम, प्रेम भावना, सबकी अभिव्यक्ति है। "'रागिनी' वस्तुत: परिपक्व भावों की रागिनी है। इसकी कविताओं में पर्याप्त विविधता है किंतु अपनी मूल संवेदना में यह प्रेम, प्रकृति और राष्ट्रीयता की गीतमयी त्रिवेणी है।"[114]

4. नीलिमा

'नीलिमा' गोपाल सिंह 'नेपाली' की चौथी कृति है। यद्यपि इसका प्रकाशन 'पंचमी' और 'नवीन' के बाद हुआ। इस काव्य संग्रह में कुल 33 कविताएँ हैं। नेपाली जी ने इस कृति को अपनी पत्नी 'वीणा रानी' को समर्पित किया है। इस काव्य संग्रह में प्रकृति, राष्ट्रप्रेम,, रहस्य तथा प्रेम की कविताएँ हैं।

नेपाली जी के इस काव्य संग्रह की प्रकृतिपरक कविताएँ पहले से प्रौढ़ हैं। पहली कविता 'गगन भी नील नयन भी नील' में उन्होंने गगन और नयन के बीच सामंजस्य दिखलाया है-

"गगन का नील निराला लोक

गगन का नील सिंधु गंभीर

नयन जैसे सागर का तीर

नयन जैसे नभ की तस्वीर"[115]

इस काव्य संग्रह की 'नीलिमा', 'आया मेरा श्याम उमड़के', 'यह कली गजब ढा रही आज', 'दार्जिलिंग की बूंदा-बाँदी' प्रकृति सौंदर्य की कविताएँ हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"गगन के आँगन से घनश्याम

मचा देते दिशि दिशि बरसात।"[116]

---

[113] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14

[114] गोपाल सिंह नेपाली - डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 42

[115] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 13

[116] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 13

('गगन भी नील नयन भी नील' कविता से)

"निहारो स्नेही, बूँद-बूँद जल बरसे!

छाई काली घटा घुमड़ के

आया मेरा श्याम उमड़ के

नीचे यह लोभी चातक है, स्वाति-बूंद ऊपर से।"[117]

('आया मेरा श्याम उमड़ के' कविता से)

"आया वसंत मच गई धूम

सज गई प्रकृति की रंगभूमि

हैं खिले 'फूल तो फूल', किंतु

यह कली गजब ढा रही आज।"[118]

('यह कली गजब ढा रही आज' कविता से)

"फुहियों में पत्तियाँ नहाई,

आज पाँव तक भीगे तरुवर

उछल शिखर से शिखर पवन भी

झूल रहा तरू की बाँहों पर

निद्रा भंग, दामिनी चौंकी

झलक उठे अभिराम सरोवर

घर के, वन के अगल-बगल से

छलक पड़े जल-स्रोत मचलकर।"[119]

('दार्जिलिंग की बूँदा-बाँदी' कविता से)

---

[117] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 15

[118] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 25

[119] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27

'रागिनी' में प्रेमपरक कविताएँ भी हैं। 'दो बूँद', 'दबे पाँव तुम आई रानी', 'मैं चोरी-चोरी आता हूँ', 'मैं विद्युत में तुम्हें निहारूँ', 'विदा होने वाले से', 'उग आया गगन में वही चाँद' गहरी प्रेमानुभूति की कविताएँ हैं। 'नीलिमा' काव्य संग्रह में नेपाली ने जो समर्पण लिखा है, उसमें गहरी प्रेमानुभूति की झलक मिल जाती है-

"जिसका प्रेम मेरे लिए आषाढ़ का पहला दिन है
जिसकी बड़ी-बड़ी आँखों में मेरी दुनिया छिपी हुई है
जिसके होंठों में मुझे सारी मुसीबतों का जवाब मिलता है
जिसके संध्या की तरह मेरे सामने आते ही
मेरे मन-मंदिर के सारे दीपक जल उठते हैं
उसी
पहले क्षण की तरह नवीन
पहले झोंके की तरह मतवाली
आंसू की तरह दुबकी सहमी-प्यारी
अपनी रानी को।"[120]

उनकी कविता 'नुपुर आज बजाओ ना' में प्रेम की विकलता द्रष्टव्य है-

"यों तो पहले से टूटे हैं जग-वीणा के तार
उत्सव बिना जगत सूना है, लगता जीवन भार,
पर जब आता पावस, होती फुहरियों की बौछार
सुन संगीत झमक उठता है, मंत्र मुग्ध संसार
प्यासे मेरे प्राण, प्रेम से जीवन सुधा पिलाओ ना
पढ़कर मंत्र, छिड़क ममता-जल, आओ आज जिलाओ ना।"[121]

[120] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 5
[121] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 16-17

नेपाली यौवन और मस्ती के कवि रहे हैं। उनकी कविताएँ 'सरस बसंत बुला लाया मैं' और 'गाये जा रंग लाये जा' उनकी नैसर्गिक मस्ती की ही अभिव्यक्ति करते हैं। 'देख रहे हैं महल तमाशा' में उनकी प्रगतिशील चेतना देखने को मिलती है। इस काव्य संग्रह की अंतिम कविता है 'कोई'।

"यह अनूठा खेल दिखाकर नटवर खेल रहा है कोई
यह मोहक संसार बसाया / जड़-जंगम का मेल मिलाकर
बना दिया फिर चंचल पागल / मूर्ति-मूर्ति को सुरा पिलाकर
मिट्टी की दीवाल खड़ीकर / दो आँखों में बत्ती धर दी
मानव की सुंदर प्रतिमा में / अपनी उज्ज्वल आत्मा भर दी
निमिष-निमिष में हँसा-रूलाकर / प्रेमी खेल रहा है कोई।"[122]

5. पंचमी

'पंचमी' गोपाल सिंह 'नेपाली' की पाँचवीं कृति है। यद्यपि इसका प्रकाशन 'नीलिमा' से पूर्व हो चुका था। इस काव्य संग्रह में उनकी 47 कविताएँ संकलित हैं। 'पंचमी' की प्रस्तावना में नेपाली जी ने लिखा है- "पंचमी के रूप में अब मैं साहित्य देवता के चरणों में पाँचवाँ फूल रख रहा हूँ। इधर मैं इतनी 'स्पीड' से लिखता रहा हूँ कि इसकी कुछ कविताएँ मेरी वर्तमान भावधारा कही जा सकती हैं। अपनी पाँचों कविता पुस्तकों में मुझे यह सबसे ज्यादा प्रिय, संगत और नवीन लगती है।"[123]

'पंचमी' में प्रकृति से संबंधित कविताएँ हैं- 'भोर', 'प्रभातगान', 'संध्या-गान', 'तारों की रात', 'मेघ', 'धार पर जले लहर के दीप', 'पंछी', 'लहरियाँ', 'वसंत गीत', 'पतझड़ का चाँद', 'आधी रात', 'प्राची', 'मेघ उठे सखि काले-काले', 'सावन', 'नन्हीं बूँदें', 'विहँस रही नव कलिका', 'दोपहरी' और 'अम्बर'। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"मारकर तुम किरणों के बाण, खिलाते नयनों के जलजात
ऊँघती होती काली रात

[122] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27
[123] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 10

बुझे चुके होते नभ के दीप

चरण तब बज उठते हैं मंद।"[124]

('भोर' शीर्षक कविता से)

"काले बादल मेरी काया, सावन मेरी जीवन माया

बिजली में मेरा प्राण दीप, प्रिय का पथ चमकाता आया,

यह सावन की जलधार मधुर, यह सावन की सधार मधुर

बूँदों में मेरे जीवन की वाणी की है झंकार मधुर

परछाई बनकर आए हो, काले घन में तुम छाए हो

उसको खोजूँ मैं बिजली में, बादल में जिसे छिपाए हो।"[125]

('सावन' शीर्षक कविता से)

'पंचमी' की दो कविताएँ 'विशाल भारत' और 'हिमाचल' राष्ट्रीय चेतना से संपन्न कविताएँ हैं। 'विशाल भारत' में कवि भारत की गौरवशाली परंपरा के अखंड भारत की महिमा का गान करता है-

"भीतर आंगन:

भरा फूल से/ स्वर्ण धूल से

नदी कूल से / वन दुकूल से

जहाँ राम थे / मधुर श्याम थे

पूर्णकाम थे / शक्ति धाम थे

डरता था जिनसे महाकाल

भारत अखण्ड भारत विशाल।"[126]

'हिमांचल' कविता में प्रकृति सौंदर्य है तो राष्ट्रीय चेतना भी-

---

[124] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 23

[125] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 30

[126] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 32-33

"नभ में मेघ उमड़ आया है
शिखर-शिखर पर हिम छाया है
मानसरोवर में हंसों का
एक झुण्ड उड़ता आया है
हिमगिरि है गजराज, धरा पर
घट भर-भर जल डाल रहा है
नभ के वन में आज गरजते
हुए मेघ के हरि को देखो।"[127]

इस संग्रह में उनकी प्रेमपरक कविताएँ भी हैं। कवि प्रेम चाहता है, कोई धन नहीं। तभी तो वह कहता है-

"मैं प्यार माँगता हूँ / मनुहार माँगता हूँ
बस दो युवा हृदय का / संसार माँगता हूँ
अपने किशोर मन का / मुझको निवास दे दो।"[128]

इस संग्रह की कई कविताओं में उनकी वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें उनकी जीवन दृष्टि के साथ स्वाभिमान भी झलकता है। उनकी निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"अफसोस नहीं इसका हमको, जीवन में हम कुछ कर न सके
झोलियाँ किसी की न भर सके, संताप किसी का हर न सके
अपने प्रति सच्चा रहने का जीवन भर यत्न किया
देखा-देखी हम जी न सके, देखा-देखी हम मर न सके।"[129]

इस संग्रह में उनकी एक कविता रवीन्द्रनाथ टैगोर की मृत्यु पर है, जो उन्होंने रवीन्द्रनाथ टैगोर को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है-

---

[127] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 46
[128] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 107
[129] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 124

> “मणि से उसके काव्य अलंकृत, / उसके प्राण बीन से झंकृत
> दिगदिगन्त में लोक-लोक में / उसके अमर गान थे मुखरित
> गा-गाकर कवि बना हुआ था, चुप होकर संसार हो गया।”[130]

‘पंचमी’ उनकी प्रौढ़ रचना है। इसमें विविधता के साथ लालित्य भी है।

6. नवीन

‘नवीन’ गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की ही नहीं, बल्कि उत्तर-छायावादी काव्यों में भी अन्यतम काव्यकृति है। इसका प्रथम संस्करण पुस्तक भंडार, पटना द्वारा 1944 ई. में और दूसरा संस्करण 1964 ई. में प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में उनकी 39 कविताएँ संग्रहित हैं। इसमें एक ओर राष्ट्रीयता से गहरे स्तर पर संपृक्त कविताएँ हैं तो दूसरी ओर विश्व-मानव की वेदना से।

सन् 1944 के आस-पास की कविताएँ इसमें है। इस समय अन्य भारतीयों के साथ नेपाली को यह अहसास हो गया था कि भारत को स्वतंत्र होने में ज्यादा दिन नहीं बचे हैं। इसलिए कवि स्वतंत्र हो रहे राष्ट्र की आकांक्षा और कल्पना को लेकर ‘नवीन’ कविता लिखता है। कवि देश की नयी पीढ़ी अर्थात् युवा पीढ़ी को नए राष्ट्र के निर्माण के लिए नई कल्पना करने का आह्वान करता है, देश की व्यथा दूर करने का आह्वान करता है। यह कविता कथ्य, भाषा और छंद तीनों ही दृष्टियों से अमूल्य है। कवि कहता है कि समाज की तमाम नीतियाँ और मनुष्य की पुरानी रीतियाँ अब घिस गई है। उनसे समाज की कुरीतियाँ दूर नहीं होगी। इसके लिए मौलिक कल्पना करनी होगी-

> “अब घिस गई समाज की तमाम नीतियाँ
> अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियाँ
> हैं दे रही चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ
> निज राष्ट्र के शरीर के श्रृंगार के लिए
> तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो, तुम कल्पना करो।”[131]

---

[130] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 120

[131] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11

द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ होने पर कांग्रेस में मतभेद उभरा कि ब्रिटेन का युद्ध में साथ दें या ना दें। गाँधी जी और उनके अनुयायी ब्रिटेन का साथ देना चाहते थे। सुभाषचन्द्र बोस जैसे नेता इसके खिलाफ थे। इसी पृष्ठभूमि में नेपाली जी ने 'आज जवानी के क्षण में' शीर्षक कविता में लिखते हैं-

"भोलेपन की हद, जुल्मों को पिछले जन्मों का फल समझो
अपनापन की हद, जालिम के मन को भी तुम निर्मल समझो
चाहे उनको मानव समझो / चाहे उनको दानव समझो
उनके समूल उन्मूलन में कुछ ऐसा खेल रचो साथी
दुनिया के सूने आंगन में कुछ ऐसा खेल रचो साथी"[132]

स्पष्ट है वे गाँधी की नीति के विरोध में, ब्रिटेन का साथ न देने का पक्षधर थे। ब्रिटेन को उन्होंने दानव कहा, जिसका समूल नाश वे चाहते थे। भारत की पराधीनता के कारण अभावग्रस्त, शोषित, उत्पीड़ित, भूखे भारत की यातना से इतने आहत थे कि वे क्रांतिकारियों के हर कदम के साथ थे।

अन्य राष्ट्रीय कविताओं में 'स्वतंत्रता का दीपक', 'मैं गायक हूँ स्वच्छंद हिमाचल का' और 'भारत माता' राष्ट्रीय आंदोलन के समय काफी लोकप्रिय थी और ये कविताएँ स्वाधीनता सेनानियों को बहुत प्रिय थी। 'नया संसार' और 'तुम आग पर चलो' शीर्षक कविताएँ कवि की क्रांतिकारी चेतना के साथ ही उनकी विश्व दृष्टि का भी परिचायक है। 'युवक बसाएंगे हिलमिलकर नया संसार' से प्रारंभ होने वाली कविता रूढ़िवादी पुरातन संसार को ध्वस्त कर एक नए मानवीय संसार के निर्माण का आह्वान करती है।

इस संग्रह में उनकी कविता 'कवि और कविता' कवि कर्म को परिभाषित करती है। उन्होंने लिखा है-

"कवि का जीवन एक जगत है जग के भीतर जग के बाहर
जग का पुण्य जहाँ सुंदर है और पाप भी नहीं असुंदर

---

[132] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 37

जन्म जहाँ पर मधुर राग है सधा हुआ जग की वीणा पर
मरण जहाँ पर करुण गीत है रूँधा हुआ जिससे जग का स्वर
कविता है कवि हृदय क्षितिज पर बालारुण का आना
जीवन की प्राची में उठकर मधुर-मधुर मुसकाना।”[133]

इस संग्रह की कविता ‘जल रहा है गाँव’ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह कविता ब्रिटिश शासन काल में भूमिपतियों के शोषण-उत्पीड़न से त्रस्त किसानों की मार्मिक वेदना की अभिव्यक्ति है।

“झुरमुटों के पास में यह धुआँ उठा है जो
जल रहा है गाँव / जल रहा है गाँव
उदी-उदी झोपड़ी, सूनी-सूनी गैल
बाजरे के खेत में जुत रहे थे बैल
रोटियों के वास्ते पिस रहे किसान
खड़ी फसल की याद में खिल रहे किसान
पर कराल मेघ बन / लाल-लाल मेघ बन
चैत के आकाश में यह धुआँ उठा है जो
जल रहा है गाँव / जल रहा है गाँव।”[134]

उनकी एक कविता है ‘दुखिया’। इस कविता में उन्होंने 1943 ई. के भारत की मार्मिक तस्वीर अंकित की है-

“यह सूना गाँव, गली सूनी-सूनी / लगती जैसे संयासी की धूनी
मिट्टी के फूटे घड़े भरे पनघट / प्यासों को रेत बने, जग को मरघट
आँखों में जो फसलें झूमीं झूलीं / प्राणों से वे ही आज रहीं ओझल।”[135]

---

[133] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 25
[134] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 87
[135] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 72

नेपाली संवेदनशील कवि थे। उनकी गहरी संवेदनशीलता को व्यक्त करने वाली कई कविताएँ इस संग्रह में हैं- ‘कोई रो रही थी’, ‘नौजवान की मौत’ और ‘अभागिनी’। ‘नौजवान की मौत’ शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

> “रह गया देखता ही वसंत / रह गया सोचता ही माली
>
> नीचे ज़मीन पर लुढ़क गई / यौवन की भरी हुई प्याली
>
> साथी कुहराम मचाते थे / घर की दीवारें रोती थी
>
> शोभा-सुषमा उस कुटिया की / अब मरी-मरी सी होती थी।”[136]

कवि नेपाली का प्रकृति प्रेम इस काव्य संग्रह में और अधिक प्रौढ़ होकर निखर चुका है। ‘मैं प्रभात का पहला झोंका’, ‘कुछ गूँज गई, कुछ गीत गाये’, ‘पश्चिम नभ की भरी जवानी’, ‘बादल और पृथ्वी’, ‘मेघ और झरना’ तथा ‘पहाड़ी कोयल’ प्रकृति की अद्भुत कविताएँ हैं।

‘दो प्राण मिले’, ‘तुमने मेरा दर्द न जाना’, ‘है दर्द दिया में बाती में जलना’, ‘दर्द में भर प्यार में’, ‘दुनिया एक तुम्हारी आँखें’ और ‘दीपक जलता रहा रात भर’ - उनकी श्रेष्ठ प्रेम कविताएँ हैं, जो इस संग्रह में है।

इस प्रकार “ ‘नवीन’ निस्संदेह नेपाली की समस्त काव्य प्रवृत्तियों को रेखांकित करने वाला प्रतिनिधि काव्य संग्रह है। प्रकृति और प्रेम, राष्ट्र और दर्शन, करूणा और विद्रोह तथा कविता और लोक सबको इसमें स्वर मिला है। काव्य भाषा की नवीनता, छंदों के नूतन प्रयोग और भंगिमाओं के जीवंत रेखांकन से यह काव्य कृति नेपाली की ही नहीं उत्तरछायावाद की एक प्रतिनिधि काव्य कृति बन गयी है।”[137]

7. हिमालय ने पुकारा

‘हिमालय ने पुकारा’ गोपाल सिंह ‘नेपाली’ का अंतिम काव्य संग्रह है। इस काव्य संग्रह की 38 कविताओं में कवि की राष्ट्रीय चेतना की प्रखर और गंभीर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

---

[136] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 57-58

[137] पंछी तथा अन्य कविताएँ - संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 5

‘हिमालय ने पुकारा’ में जहाँ चीनी आक्रमण से संबंधित दर्जन भर कविताएँ हैं, वहीं पाकिस्तान और उससे जुड़ी कश्मीर समस्या पर ‘हमारे कुछ पड़ोसी प्रजातंत्र’, ‘शासन चलता तलवार से और ‘भारत का कश्मीर है’ शीर्षक कविताएँ हैं।

गोपाल सिंह ‘नेपाली’ ने भारत चीन युद्ध से आहत होकर इस काव्य संग्रह की कविताओं की रचना की थी। इस संग्रह की पहली कविता है- ‘चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा’। यह कविता उन्होंने उस समय लिखी, जब भारत पर चीन का आक्रमण नहीं हुआ था, लेकिन चीनी आक्रमण की आशंका बनी हुई थी। चीन हिमालयी क्षेत्र में घुसपैठ कर रहा था। उसने तिब्बत को आक्रमण द्वारा हथिया लिया था। उस समय तत्कालीन भारत की जनसंख्या 40 करोड़ थी। उनका यह आह्वान 40 करोड़ भारतीयों का आह्वान था। नेपाली जी संपूर्ण राष्ट्र को संबोधित करते हुए लिखते हैं-

“शंकर की पुरी, चीन ने सेना उतारा
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा
हो जाए पराधीन नहीं गंगा की धारा
गंगा के किनारों को शिवालय ने पुकारा।”[138]

इस काव्य संग्रह में तीन प्रयाण गीत हैं। और तीनों में ही चीनी आक्रमण से बचने, अपने को सजग होने का आह्वान है। तीनों ही प्रयाण गीत उस समय जन-जन में लोकप्रिय थे। स्वयं नेपाली जी घूम घूमकर इन कविताओं का पाठ करते और ‘वन मैन आर्मी’ बनकर पूरे भारत में जन-जन का आह्वान करते ताकि चीन के संभावित खतरे से निपटा जा सके। उन्होंने चीन के संभावित खतरे को 1959 में ही व्यक्त कर दिया था और 1962 में चीन का आक्रमण हो ही गया।

इस काव्य संग्रह की एक कविता है- ‘हिमालय और हम’। यह कविता भारत के लिए हिमालय के महत्त्व को बतलाती है। नेपाली ने लिखा है-

“गिरिराज हिमालय से भारत का कुछ ऐसा ही नाता है

---

[138] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 42

चालीस करोड़ों का जत्था, गिर-गिर कर भी उठ जाता है
इतनी ऊँची इसकी चोटी कि सनल धरती का ताज यही
पर्वत-पहाड़ से भरी धरा पर केवल पर्वतराज यही।"[139]

नेपाली तत्कालीन समय में भारत पर बढ़ते खतरे को लेकर चिंतित थे। यह चिंता अकारण नहीं थी। तत्कालीन सरकार ने उन आशंकाओं पर कोई कार्रवाई नहीं की, जिसका नतीजा 1962 के शर्मनाक हार के रूप में मिली। नेपाली जी ने उस समय राष्ट्र कवि का दायित्व निभाया। नेहरू की कड़ी आलोचना की। उन्होंने भारतवासी को जगाने का काम किया। उन्होंने भारतवासी को अपनी रक्षा के प्रति सचेत होने को कहा। वे लिखते हैं-

"भारत के प्यारों, सोये सितारों जागो
बैरी दुआर आये, तुम सिर उतारो जागो
तुम लाल सोते रह गये, शंकर भी सोते रह गये
घायल हिमालय रोया, तुम घाव धोते रह गये
इतना न सोना बेटों, बिस्तर कबर हो जाए
अपना हिमालय लूटके, कल को उधर हो जाए।"[140]

भारत-चीन युद्ध के अलावा इस काव्य संग्रह में कुछ ऐसी भी कविताएँ हैं, जो काफी लोकप्रिय हुई। ऐसी ही एक कविता है- 'यह मेरा हिन्दुस्तान है'। इस कविता में उन्होंने भारत की सभी विशेषताओं को समाहित किया है। इस कविता की अंतिम चार पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"हम उसी तरह आजाद हैं / जिस तरह सितारे-चाँद हैं
सर लाख कटे, हम नहीं हटे / इतिहासों को हम याद हैं
जापान देश जापानी का, ईरानी का ईरान है / यह मेरा हिन्दुस्तान है।"[141]

---

[139] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 18
[140] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 28
[141] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 37

'मेरा देश गर्वीला' में उन्होंने भारत की रंग-बिरंगी संस्कृति को विश्लेषित किया है तो वहीं 'नवीन कल्पना करो' में देश के विकास के लिए, देश को शक्तिशाली बनाने के लिए, देश को सुखी-संपन्न बनाने के लिए मौलिक कल्पना करने का आह्वान किया है।

"लेकर अनंत शक्तियाँ सदा समृद्धि की,

तुम कामना करो, किशोर कामना करो, तुम कामना करो

तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो, तुम कल्पना करो।"[142]

हिन्दी भारत की राजभाषा है। उन्होंने हिन्दी भाषा पर भी कविताएँ लिखी हैं- 'हिन्दी है भारत की बोली', 'एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा'। हिन्दी को लेकर वे कहते हैं-

"दो वर्तमान का सत्य सरल / सुंदर भविष्य के सपने दो

हिन्दी है भारत की बोली / तो अपने आप पनपने दो।"[143]

'हिमालय ने पुकारा' नेपाली जी की महत्त्वपूर्ण रचना है। भले ही इसकी रचना भारत-चीन युद्ध की पृष्ठभूमि में हुई, लेकिन इसमें अन्य विषयों पर भी कविताएँ हैं। भारत पर बहुत से कवियों ने कविता लिखी है। भारत पर इनकी दो कविताएँ 'भारत अखण्ड, भारत विशाल' और 'भारत माता की पुकार' इसमें संग्रहित हैं। इस संग्रह में उनकी एक जीवन गीत भी है- 'चल रहा है आदमी'। 'मेरा धन है स्वाधीन कलम', 'गंगा की धार जवानी', 'नजर है नई तो नजारे पुराने' आदि अन्य महत्त्वपूर्ण कविताएँ इसमें संकलित हैं। डॉ. सतीश कुमार ने लिखा है- " 'हिमालय ने पुकारा' वस्तुत: राष्ट्र प्रेम और राष्ट्र जागरण की कविताओं का संग्रह है। चीनी आक्रमण के भयाक्रांत परिवेश में इस संग्रह की कविताएँ एक नयी आस्था, एक नये प्रस्थान और एक नयी जागरूकता का परिवेश निर्मित करती है। पराजय की पीड़ा से देश को मुक्त करने और सुषुप्त जनमानस में नयी चेतना का संचार करने में इस संग्रह की कविताएँ विशेष रूप से तत्पर प्रतीत होती है।"[144]

---

[142] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 40

[143] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 63

[144] है ताज हिमालय के सिर पर : गोपाल सिंह नेपाली, संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 7

इन संग्रहों के अलावा नेपाली की सैकड़ों कविताएँ 'हंस', 'सुधा', 'आदर्श', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'ज्योत्सना', 'सन्मार्ग', 'आर्यावर्त', 'आकाशवाणी' और 'भारती' में छपी थी, जो अभी तक संकलित होकर प्रकाशित नहीं हुई है। डॉ. सतीश कुमार राय ने उनकी 40 असंकलित कविताओं को 'असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली' नाम से संपादित कर प्रकाशित किया है। उनके प्रकाशित काव्य संग्रह में से लेकर तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं को लेकर प्रो. नंदकिशोर नंदन ने 'गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ' नाम से संपादित कर प्रकाशित किया है। उनकी भतीजी सविता सिंह नेपाली ने गोपाल सिंह 'नेपाली समग्र' नाम से एक पुस्तक संपादित कर प्रकाशित की है। वहीं नंदकिशोर नंदन उनकी सभी रचनाओं को लेकर 'गोपाल सिंह नेपाली रचनावली' प्रकाशित करने को तत्पर हैं।

3.2 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता

गोपाल सिंह उत्तरछायावाद के कवि हैं। जब उन्होंने काव्य रचना प्रारंभ की, वह समय छायावाद के अवसान का समय था। किशोरावस्था से ही उन्होंने कविता लिखना प्रारंभ किया और जल्दी ही वे युवा कवि के रूप में अपनी पहचान बनाने में सफल रहे। काव्य सम्मेलनों ने उनकी लोकप्रियता को चरम पर पहुँचा दिया। उन्होंने अपने को किसी विचारधारा में बाँधा नहीं। आरंभ में ही उन्हें सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का सान्निध्य मिला। सुमित्रानंदन पंत उनकी कविताओं के प्रशंसक थे तो जयशंकर प्रसाद 'पीपल के पत्ते गोल-गोल' कविताओं को गुनगुनाया करते थे। उनकी कविताओं में प्रकृति है तो देश प्रेम भी, यौवन-श्रृंगार की कविता है तो प्रगतिशील चेतना की भी। उन्होंने सभी विषयों पर कविताएँ लिखी हैं, किसी को छोड़ा नहीं है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' को प्रकृति से लगाव था। उनकी प्रकृतिप्रियता को हम उनकी कविताओं में देख सकते हैं। पंत जी ने उनकी प्रकृतिपरक कविताओं को देखकर ही यह टिप्पणी की- "आपका (गोपाल सिंह 'नेपाली') कवि कंठ, 'निर्मल निर्झर के समान', अवश्य ही मंसूरी की तलहटी में फूटा होगा। इसलिए आपकी रचनाओं में जो उन्मुक्त वातावरण एवं स्निग्ध अनिलाताप मिलता है,

वह पाठक के हृदय की खिड़की खोलकर ‘नरम दूब’ बिछी राहों से, ‘विलास की मंसूरी’ से ‘जंगल की मंसूरी’ में ले जाकर, प्रकृति की मनोरम क्रीड़ा भूमि में छोड़ देता है, जहाँ जंगल की हरियाली अंचल पसार कर उसका स्वागत करती है। ‘जामुन तमाल इमली करील, ऊपर विस्तृत नभ नील-नील’, ‘ऊँचे टीले’, ‘गिलहरियों के घर’ मन को मोहते हैं। ‘पीले-पीले लाल-लाल, फल-फूल मुकुल से लदी डाल’ में ‘मधुप गुनगुन’, ‘फुलचुग्गी रूनझुन’ करती, ‘बुलबुल-सुग्गे चुन-चुन’ फल खाते हैं। जहाँ ‘द्रुम में दाड़िम गोल-गोल’, सेब, किशमिश, अनार से मीठे देहरादून के मधुर बेर खाने को मिलते हैं। घर बसाने की प्रतीक्षा में डालों पर बैठे पक्षियों के ‘जोड़े चोंचों से पर सुहला-सुहलाकर’ प्रेम-विह्वल हो कल-कूजन करते हैं।”[145] नेपाली ने तो लिखा ही है-

“फूटा है मेरा कंठ यहीं रे निर्मल निर्झर के समान
सीखा है मैंने यही तीर पर सरिता के मृदु सरल गान।”[146]

बाल्यकाल में ही उन्हें मातृवियोग सहना पड़ा। सैनिक पिता के साथ विभिन्न सैन्य शिविरों में उनका बचपन बीता। देहरादून की प्रकृति का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने लिखा है- “शहर एक कवि के लिए न तो कोई जगह है, न उसकी चकाचौंध कभी गाने की चीज़ ही रही है, दुनिया गेंदे की तरह फूलती और हमेशा रंगी ही रहती है। इसी के चारों ओर खेत हैं, वन हैं, नदी-नाले हैं और पहाड़-पहाड़ियाँ हैं। कोई सहृदय प्रकृति प्रेमी यदि वहाँ पहुँच जाए, तो आगे के लिए वह अपनी दिनचर्या ऐसी बनाएगा कि सबकी आँख बचाकर रोज वहाँ पहुँच जाया करे। यही हरी-हरी दूब की महिमा है कि आज मेरे हाथ में बंदूक के बदले लेखनी है।”[147]

‘उमंग’ नेपाली जी की पहली कृति है। इस संग्रह में प्रकृति की सहज एवं सजीव चित्रण करने वाली कई कविताएँ उल्लेखनीय हैं- ‘हरी घास’, ‘पीपल’, ‘मंसूरी की तलहटी’, ‘बेर’, ‘सरिता’, ‘हिलोर’, ‘पंछी’, ‘मौलसिरी’, ‘मधु ऋतु’, ‘किरण’, ‘नौका-विहार’ और ‘देहात’। छायावाद के बाद

---

145 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 7
146 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 61
147 रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 5-6

छायावादोत्तर काल के जिन कवियों ने प्रकृति का चित्रण किया है, उनकी तुलना में नेपाली जी का प्रकृति चित्रण उत्कृष्ट है। 'पंछी' काव्य में भी प्रकृति चित्रण द्रष्टव्य है-

"तरह-तरह के सुमन खिले थे, फूट रही थीं कलियाँ
गम-गम गमक रही थी सौरभ सुरभित वन की गलियाँ,
सुमन कपोलों पर मधुपों की होती थी रंगरलियाँ
मानो वहाँ किसी ने रख दी थीं मिश्री की डलियाँ।"[148]

नेपाली ने जो प्रकृति का चित्रण किया है, वह आलंबन रूप में है। इनके प्रकृति चित्रण में छायावादियों की तरह वायवीयता नहीं है। 'उमंग' की ये पंक्तियाँ -

"हैं आस-पास वन में बिखरे कितने कुटीर रे कई गाँव
खेलते यहाँ आंगन में हैं मानव स्वभाव के मधुर भाव
संगीत मधुर इनके जीवन का गाय-भैंस की घंटी में
लौकी के चौड़े पातों में लहराते इनके मनोभाव।"[149]

'नौका विहार' कविता पंत जी ने भी लिखी है और नेपाली जी ने भी। लेकिन पंत जी ने 'नौका विहार' में केवल प्रकृति चित्र नहीं है, उसमें जीवन की शाश्वता की आध्यात्मिक अनुभूति पिरोई गई है। नेपाली जी जैसे किशोर कवि के लिए उस ऊँचाई तक पहुँचना संभव न था। नेपाली जी की कविता अतिरिक्त कल्पनाशीलता से मुक्त है, यथार्थ के समीप है और आध्यात्मिक बोध से बोझिल नहीं है। जबकि छायावादी कविता अपने उत्कर्ष काल में अतिरिक्त कल्पनाशीलता और आध्यात्मिक बोध के बोझ से बोझिल है। साथ ही काव्य भाषा की ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकता भी अपने उत्कर्ष पर है। नेपाली जी की 'नौका विहार' की शुरूआत ही इस स्वाभाविक अनुभूति से होती है-

"जीवन में क्षण-क्षण कोलाहाल, ज्यों सुख त्यों दुख, सुख-दुख समान
आती संध्या जाता विहान, जाती संध्या आता विहान

[148] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21
[149] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 60

इसलिए जगत में दो ही तो कुछ शांति कभी देने वाले

है एक प्रकृति का मृदुल गोद, दूसरा प्रेम का मधुर गान।"[150]

इसके बाद नेपाली जी ने गंगा की लहरों पर मचलती मंद-मंद चल रही नौका में विहार करते समय की प्रकृति और अपनी मनोदशा का उस भाषा में अंकन किया है, जो छायावादोत्तर काव्य-भाषा की पारदर्शिता और सुस्पष्टता का सुंदर उदाहरण है-

"वह शांत-स्निग्ध मंजुल बेला, इस समय रात का प्रथम प्रहर

उस पार तिमिर, इस पार तिमिर, उस पार रेत, इस पार शहर

हम बीच धार में मचल-मचल कर रहे आज क्रीड़ा कलरव

झिलिझल प्रकाश में दीपों के हैं थिरक रहीं रे लहर-लहर।"[151]

प्रकृति के प्राय: एक-एक रूप के प्रति जैसा प्रगाढ़ अपनत्व नेपाली के काव्य में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। पर्वत, निर्झर, सरिता, मेघ, पंछी, फूल, किरण, पीपल, घास, विविध ऋतुएँ, मोर, मध्याह्न संध्या, रात्रि सब अपने सहज स्वाभाविक रूप में उनके कविताओं में मिलते हैं। नेपाली का तो कंठ ही देहरादून की पर्वतीय सुंदरता की आधार भूमि मंसूरी की तलहटी में फूटा है।

प्रकृति की सजीव एवं सहज कविताओं के अंतर्गत 'हरी घास', 'पीपल', 'मंसूरी की तलहटी', 'बेर', 'सरिता', 'हिलोर', 'पंछी', 'मौलसिटी', 'मधु ऋतु', 'वसंत', 'किरण', 'नौका विहार' और 'देहात' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। छायावाद के बाद छायावादोत्तर काल के जिन कवियों ने प्रकृति का चित्रण किया है, उनकी तुलना में नेपाली का प्रकृति चित्रण उत्कृष्ट है।

नेपाली प्रकृति के सौंदर्य से मुग्ध ही नहीं होते, उससे अभिन्न भी हो जाते हैं। प्रकृति का चित्रण करने के लिए नेपाली ने सटीक उपमानों का प्रयोग किया है, वहीं दूसरी ओर उस पर चेतना का आरोप

---

[150] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 66

[151] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 66

भी किया है। नेपाली की प्रकृति चेतन और मनुष्य के सुख-दु:ख का सहचरी भी। उनकी ऋतु दक्षता का एक प्रमाण देखिए-

"कुंज-कुंज रस रूप बाँटता आता है ऋतुराज
कविता गूंज उठी कोकिल की बन पहली आवाज
आती ग्रीष्म जगाती जग के कंठ-कंठ में प्यास
कविता छाँह बनी तरूवर की शीतल-सलिल सुवास
पावस में भर गया मेघ से श्याम-नील आकाश
बनकर मोर कुंज में नाचा कविता का उल्लास
पतझड़ में झड़ गया पात बन रंग-रूप वन-वन का
कविता रानी शरद चन्द्र बन चुनती तिनका तिनका
चुरा चली कविता ऋतु-ऋतु से एक मनोहर गाना।"[152]

नेपाली की काव्य कृति 'पंछी' तो शुद्ध अर्थों में प्रकृति काव्य ही है। यहाँ प्रकृति और प्रेम दोनों समग्रता में है। रागिनी में प्रकृति का रंग गहरा हुआ है। यहाँ रागिनी प्रकृति आलंबन भी है और उद्दीपन है। 'रागिनी' की निम्न पंक्तियाँ प्रकृति के सजीव उद्दीपन का एक नमूना है-

"होती चली घनी अँधियारी, झलके अंबर के तारे
रोएं सिहर उठे-दिन डूबा, बुझे न दिल के अंगारे
आँखें झुकीं, दर्द आ लिपटा, बिखर पड़े दो-दो मोती
इस रजनी का रंग साँवला, आती याद व्यथा होती।"[153]

नेपाली की प्रकृति प्रियता उनके परवर्ती काव्य संग्रहों में और सहज होती गई है। 'पंचमी' की निम्न पंक्तियाँ प्रकृति के साथ गहरी आत्मीयता दर्शाती है-

"मैं सरिता के कलकल स्वर में अपना ही गायन सुनता हूँ

---

[152] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 25-26
[153] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 25

चली जा रहीं चपल लहरियाँ / थिरक रही हैं जल की परियाँ
कलकल-छलछल से मुखरित हो / उठीं धरा की शैल शिखरियाँ
तट पर जल की बूंद-बूंद में पग-पायल की ध्वनि सुनता हूँ
नव वसंत वन में आता है / झुरमुट से पंछी गाता है
कोकिल का पंचम स्वर वन के / मन की कली खिल जाता है
मैं अपने झंकृत प्राणों में कोकिल का कूजन सुनता हूँ।"[154]

राष्ट्रीयता गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य की एक प्रमुख विशेषता है। अपनी राष्ट्रीय कविताओं के जरिए उन्हें भारत में पहचान मिली। आजादी के पहले उन्होंने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत कविताएँ लिखीं तो आजादी के बाद भी। चीन युद्ध की पृष्ठभूमि में उनका लिखा गया काव्य-संग्रह 'हिमालय ने पुकारा' काफी लोकप्रिय हुआ। उनकी एक कविता है- 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा'। यह कविता उन्होंने उस समय लिखी, जब भारत पर चीन का आक्रमण नहीं हुआ था। लेकिन चीन के आक्रमण की आशंका बनी हुई थी। चीन हिमालयी क्षेत्र में घुसपैठ कर रहा था। उसने तिब्बत को आक्रमण के द्वारा हथिया लिया था। नेपाली जी संपूर्ण राष्ट्र को संबोधित करते हुए कहते हैं-

"शंकर की पुरी, चीन ने सेना उतारा
चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा
हो जाए पराधीन नहीं गंगा की धारा
गंगा के किनारों को शिवालय ने पुकारा।"[155]

वे चीन के खतरे को उस समय ही समझ रहे थे। वे यह भी समझ रहे थे, जब तिब्बत पर चीन का आधिपत्य हो जाएगा, तो भारत की सीमाओं पर खतरा बढ़ जाएगा और भारत की सीमाएँ

[154] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 49
[155] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 15

सुरक्षित नहीं रह पायेंगी। वे तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू की नीतियों से असहमत थे। उनका यह भी माननना था कि अहिंसा से देश की रक्षा नहीं होती। तभी तो उन्होंने लिखा-

"इतिहास पढ़ो समझो तो यह मिलती है शिक्षा
होती न अहिंसा से कभी देश की रक्षा।"[156]

'हिमालय ने पुकारा' में संकलित उनकी कविताएँ भारत पर बढ़ते खतरे को लेकर लिखी गई है। पाकिस्तान पर भी उन्होंने कविताएँ लिखी हैं। 'नेहरू', 'गांधी' तथा टैगोर जैसे बड़े व्यक्ति एवं पर भी उनकी कविताएँ हैं। वे गाँधी के प्रशंसक हैं तो आलोचक भी। नेहरू की नीतियों का वे विरोध करते हैं। तभी तो वे भारत की रक्षा के लिए 40 करोड़ जनता को पुकारते हैं क्योंकि तत्कालीन समय में भारत की जनसंख्या 40 करोड़ थी।

उनकी कुछ प्रमुख राष्ट्रीय कविताएँ हैं- 'नवीन', 'तीन कल्पना करो', 'टुकड़ी', 'भाई-बहन', 'तुम उसको गोली दो', 'हिमालय और हम', 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा', 'मेरा देश गर्वीला' आदि।

नेपाली जी ने महात्मा गाँधी पर कई कविताएँ लिखी हैं, जो काफी लोकप्रिय है। जब गाँधी का भारतीय राजनीति में आगमन हुआ, तो उन्होंने अहिंसा के द्वारा अंदर ही अंदर धधकती चिंगारी से आजादी का दीपक जलाया और भारत को स्वराज दिला दिया। अहिंसा के द्वारा स्वराज प्राप्त कर गाँधी जी ने इतिहास बदल दिया। कवि गाँधी जी की तुलना श्रीकृष्ण से करते हैं तो बुद्ध से भी। नेपाली गाँधी की विशेषता बताते हुए कहते हैं-

"ऐसे थे अद्भुत सेनानी, मन में खुद से लड़ते थे
बतलाते जो मार्ग हमें खुद उस पर आगे बढ़ते थे
लड़ते थे, हथियार सत्य था,
वस्त्र सत्य, श्रृंगार सत्य था

[156] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 16

जीवन का आधार सत्य था

इनका तो संसार सत्य था

इसी सत्य के सैनिक बनकर, पाप कुचलते चले गये

लिया स्वराज अहिंसा से, इतिहास बदलते चले गए।”[157]

गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की कविताओं में जनवादी तेवर भी देखने को मिलता है। जनवादी तेवर की चर्चा न के बराबर लोगों ने की है। नेपाली प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित थे। वे समाज में समानता चाहते थे। वे अमीरी-गरीबी के बीच की खाई को पाटना चाहते थे। तभी तो वे कहते हैं-

“हम धरती क्या आकाश बदलने वाले हैं

हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं

हर क्रांति कलम से शुरू हुई, संपूर्ण हुई

चट्टान जुल्म की, कलम चली, तो चूर्ण हुई

हम कलम चलाकर त्रास बदलने वाले हैं।”[158]

एक जनवादी कवि के हृदय में शोषित-उत्पीड़ित जनता के प्रति गहरी सहानुभूति होती है। वह शोषणाधारित व्यवस्था से सांठ-गांठ नहीं करता। वह वैयक्तिक सुखों से सदा दूर रहता है। नेपाली ने आजीवन संघर्ष किया, कठिनाइयों का सामना किया। लेकिन समझौता कभी नहीं किया। इसलिए तो लिखते हैं-

“तुझ सा लहरों में बह लेता / तो मैं भी सत्ता गह लेता

ईमान बेचता चलता तो / मैं भी महलों में रह लेता

हर दिल पर झुकती चली मगर, / आँसू वाली नमकीन कलम

मेरा धन है स्वाधीन कलम।”

---

[157] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 48

[158] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 76

3.3 गोपाल सिंह 'नेपाली' के फिल्मी गीत

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने फिल्मी गीतकार के रूप में अपना जीवन 1944 ई. में शुरू किया। सन् 1944 से 1956 ई. तक वे फिल्मी गीतकार के रूप में सक्रिय रहे। 'तिलोत्तमा' (1944 ई.) फिल्म के लिए सर्वप्रथम उन्होंने गीत लिखा। लेकिन उन्हें प्रसिद्धि मिली फिल्म 'मजदूर' (1945 ई.) के गीतों से। 'जयभवानी' उनकी अंतिम फिल्म थी, जो सन् 1960 ई. में प्रदर्शित हुई। उन्होंने अपने बारह वर्ष के फिल्मी कैरियर में 52 फिल्मों के लिए करीब 400 गीत लिखे। दुर्भाग्य यह है कि उनके फिल्मी गीतों का कोई संकलन मौजूद नहीं है। उस दौर के सभी फिल्में साफ-साफ कहीं मिलते नहीं, और न ही सभी गीतों की कोई ऑडियो उपलब्ध है।

'तिलोत्तमा' (1944 ई.) और 'शिकार' (1944 ई.) फिल्म से शुरू हुआ उनका फिल्मी सफर 'जयभवानी' (1960 ई.) तक चला। 'मजदूर', 'सफर', 'लीला', 'गजरे', 'शिवरात्रि', 'शिवभक्त', 'तुलसीदास', 'नागपंचमी', 'गौरी पूजा', 'नाग-चंपा', 'नरसी भगत', 'नई राहें' आदि फिल्मों में लिखे उनके गीत सुपरहिट साबित हुए और वे आज भी लोकप्रिय हैं। इन फिल्मों के गीतों ने ही गोपाल सिंह 'नेपाली' को अमर बना दिया है। डॉ. दिवाकर ने लिखा है कि- "यह सच है कि उन्होंने 'मजदूर', 'सफर', 'लीला', 'गजरे', 'शिवरात्रि', 'शिवभक्त', 'तुलसीदास', 'नागपंचमी', 'गैरी-पूजा', 'नाग-चंपा', 'नरसी भगत', 'नई रहों', 'जय भवानी' फिल्मों में जो गीत लिखे हैं उन गीतों का जोड़ा नहीं है। ये गीत अद्भुत हैं और हैं अमर। 'कभी आर करके कभी पार करके' और 'ओ नाग कहीं जा बसियो रे' के रिकार्ड आज भी बजते हैं तो श्रोताओं के मन को मोह लेते हैं। यह नेपाली जी के फिल्मी गीतों का जादू है।"[159] उन्होंने फिल्मों में सभी प्रकार के गीत लिखे हैं। उनमें कुछ गीत श्रृंगारिक हैं, कुछ गीत प्रेमपरक हैं तो वहीं कुछ गीत भक्तिपरक भी हैं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' के श्रृंगारिक एवं प्रेमपरक गीतों में कोमलता है, भावुकता है। जब फिल्मों में इनका पदार्पण हुआ, उस समय उर्दू शायरों और कव्वालों का बोलबाला था। नौटंकी शैली

---

[159] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - संपादक डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 115

के गीत लिखे जा रहे थे। पारसी रंगमंचों का स्पष्ट प्रभाव फिल्मों पर दिखता था। लेकिन नेपाली जी ने खुद को बाजारू और सतही गीतकार नहीं बनाया। उन्होंने जो भी गीत लिखे, उनमें साहित्यिकता मौजूद है। श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लेकर उन्होंने श्रृंगारिक गीत लिखे हैं। उनके संयोग के गीतों में जहाँ प्रेम की सरलता देखने को मिलती है, वहीं वियोग के गीतों में प्रेमी/प्रेमिका की विह्वलता। उन्होंने नौटंकी शैली के श्रृंगारिक गीत नहीं लिखे, जिसमें प्रेम को सस्ते रोमांस के साथ परोसा गया।

'नागचंपा' फिल्म का यह गीत, जो काफी लोकप्रिय है-

"किसी छलिया के नैनों के जाल में
मोरे नैना उलझ गये मैं क्या करूँ
मैंने सबसे छिपाया जिस बात को
उसे सब कोई समझ गये तो मैं क्या करूँ?"[160]

इस गीत में प्रेमिका का प्रेम जो गुप्त था, वहाँ प्रकट हो गया। यहाँ गुप्त प्रेम का प्रकटीकरण बहुत स्वाभाविक तरीके से हुआ है। गुप्त प्रेम का ऐसा प्रकटीकरण बहुत दुर्लभ है। इस गीत में प्रेमिका की जो लोक लज्जा होती है, उसकी अभिव्यक्ति हुई है। प्रेमिका अपने प्रेमी को छलिया कहती है, जिसके छल में वह फँस गयी। प्रेमिका का प्रेमी को छलिया कहना प्रेमी को प्रेम से उलाहना देना है। जिस प्रेम को वह सबसे छुपाना चाहती थी, वही प्रेम प्रकट हो गया। नेपाली के गीतों में जो प्रेम का वर्णन है, उसमें कहीं से बनावटीपन नहीं दिखता। उसमें नायिका की संकोचवश लज्जा की स्वाभाविक अभिव्यक्ति ही देखने को मिलती है।

प्रेम पर नेपाली जी ने ढेर सारे गीत लिखे हैं। उनका यह गीत-

"दूर पपीहा बोला, रात आधी रह गई
तेरी-मेरी मुलाकात आधी रह गई।"[161]

---

[160] गोपाल सिंह नेपाली - डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 98
[161] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 107-108

('गजरे' फिल्म से)

इस गीत में प्रेमी-प्रेमिका का मिलन पूरा नहीं होता, उसकी अभिव्यक्ति है। अधूरे मिलन की अभिव्यक्ति उनके कई और गीतों में देखने को मिलते हैं। फिल्म 'कन्यादान' का यह गाना द्रष्टव्य है-

"पहचान हुई अनजाने में

जब साथ हुआ, हम बिछुड़ गये

तस्वीर नयन में भी जिनकी

वो आँसू बनकर बिखरे गये।"[162]

प्रेम में सदैव मिलन ही नहीं होता, कभी-कभी बिछड़ना भी पड़ता है। विरह की टीस रह-रह के हृदय को बेधती है। विरह की अग्नि में जल रही प्रेमिका को अपने प्रेमी की याद सताती है, उसकी अभिव्यक्ति इस गीत में है।

'तुलसीदास' फिल्म का यह गाना जो नायक पर फिल्माया गया है। इस गाने में एक प्रेमी की प्रेमिका के लिए जो तड़प है, उसे सुंदर शब्दों में पिरोया है नेपाली जी ने-

"रहूँ कैसे मैं तुमको निहारे बिना रे

मेरा मन ही न माने तुम्हारे बिना

आके वसंत नई कलियों से खेले

चंदा के घर लगे तारों के मेले

कैसे देखेंगे नयना नई चुनरी में

तुमको सिंगार बिना रे .... मेरा मन"[163]

('तुलसीदास' फिल्म से)

---

[162] नेपाली : चिंतन-अनुचिंतन - सं. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 319

[163] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 108

‘तुलसीदास’ फिल्म का यह गीत भी द्रष्टव्य है, जब तुलसीदास, अपनी पत्नी रत्ना से मिलने के लिए चल देते हैं। तुलसीदास का अपनी पत्नी रत्ना के प्रति गहरा अनुराग था। उस अनुराग को नेपाली ने बड़े ही सुंदर शब्दों में पिरोया है। तुलसीदास के गहरे अनुराग को दर्शाने के लिए उन्होंने ‘कंगना’ का रूपक लिया है। तुलसीदास रत्ना के लिए ‘कंगना’ ले के आए हैं। उन्हें जल्दी है, उस कंगना को रत्ना के हाथों में पहनाने की। मिलने में पल भर की देरी उन्हें सह्य नहीं होता। तभी तो वे नाविक से कहते हैं-

“नैया जल्दी ले चलो
    मुझे सैंया के अंगना
उसके लिए दौड़ के
    ले आया हूँ मैं कंगना
....
आस लेके जनम की
    पास मेरे आई है
मेंहदी के हाथों में
    नंगी कलाई है।
लाज से बेचारी
    बैठी सखियों के संगना
उसके लिए दौड़ के
    ले आया हूँ मैं कंगना।”[164]

तुलसीदास अपनी पत्नी रत्ना के प्रति काफी आसक्त थे। लेकिन उनका प्रेम गहरा था। नेपाली ने इस गहरे प्रेम को इस गीत में दर्शाया भी है-

---

[164] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 117

"तुलसी के प्यार में, रतना दीवारी
तुलसी की रतना को कंगना निशानी
सोना जैसा प्यार मेरा, कभी लगे ना जंगना
उसके लिए दौड़ के, ले आया हूँ मैं कंगना।"[165]

जितना गहरा अनुराग तुलसीदास का रत्ना के प्रति था, उससे कम अनुराग रत्ना का भी नहीं था। 'कंगना' को ले के जितनी जल्दी तुलसीदास को है, उससे कम रत्ना को भी नहीं है। तभी तो वह कहती है-

"सोने की हो कंगना, चाँदी की हो बाली
मखमल की चोली पे, चमके उजाली
सारा गाँव देखेगा, मेरी चुनरी का रंगना
मेरे लिए आज वो ले आये होंगे कंगना।" [166]

आगे वह प्रेम में विह्वन होकर कहती है-

"कंगना बजाऊँगी, अँगना सजाऊँगी
अंखियों से आरती करूँगी, लजाऊँगी
साथ रहते छोड़ूँगी, मैं सजना का संग ना
मेरे लिए आज वो ले आये होंगे कंगना।"[167]

प्रेम में मिलन होने पर मन आह्लादित हो उठता है। नेपाली जी ने संयोग के कई गीत लिखे हैं। उनके संयोग के गीतों में कहीं भी वियोग की छाया भर नहीं है। प्रेमी से प्रेमिका के मिलन की मनोदशाओं वाले कुछ गीत द्रष्टव्य हैं-

"मेरे अंगना में आये मेरे साजन

[165] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 117
[166] नेपाली चिंतन-अनुचिंतन - सं. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 318
[167] नेपाली चिंतन-अनुचिंतन - सं. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 318

मेरे नैनों में दीप जले प्यार के

चंदा क्या देखूं, तारे क्या देखूं

मोरे साजन को निहार के

....

सावन में बदरा को देखे पपीहरा

मुख से पिया-पिया बोले

अपने साजन के आगे जनम भर

नाचूँ मैं पिया पुकार के

मेरे नैनों में दीप जले प्यार के"[168]

'जयभवानी' का यह गीत

"झूम के पिया के गली

आज मैं खुशी से चली

जा रही जा रही जा रही हूँ

आज मैं हवा में उड़ी

जा रही जा रही जा रही हूँ"[169]

नेपाली जी के गीतों में जहाँ संयोग श्रृंगार है, वहाँ मिलन के सुखद अहसास हैं। लेकिन जब वे वियोग के गीत लिखते हैं, उसमें विरह की वेदना तीक्ष्ण है। वे वियोग के गीतों में संयोग की स्मृति को नहीं लाते। उनके कुछ विरह गीत द्रष्टव्य हैं-

"शमा से कोई कह दे

कि तेरे रहते रहते

अंधेरा हो रहा

---

[168] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 119

[169] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 119

कि तुम हो कहाँ

कि मिलने को यहाँ

पतंगा रो रहा।"[170]

'नागपंचमी' का यह गीत जिसमें नायक की मृत्यु पर नायिका सती विह्वला अथाह वेदना से भरकर कहती है-

"धरती से गगन तक ढूंढू रे

मोरे पिया गये तो कहाँ गये

मैं रो-रो उन्हें पुकारूँ रे

मुझे रूला गये तो कहाँ गये

ओ चाँद सितारो तुम बोलो

ओ मेह-मल्हारों तुम बोलो

आशा का दिया जलाकर वो

फिर बुझा गये तो कहाँ गये

मोरे पिया गये तो कहाँ गये"[171]

'नाग चंपा' फिल्म का यह गीत भी विरह वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति है-

"ओ झरनो, ओ कुंज लताओं, मेघ विभारों तुम्हीं बताओ

नील गगन के चाँद-सितारों, दुखियारी को यों न सताओ

जनम जनम के प्रीतम को मैं आठ पहरिया ढूंढू रे

देश फिरी, परदेश फिरी, अब कौन नगरिया ढूंढूं रे।"[172]

---

[170] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 120

[171] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 120

[172] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 120

नेपाली जी के गीतों की मार्मिकता ह्रदय को करूणा से भर देती है। 'नाग पंचमी' फिल्म का यह मार्मिक गीत लोगों की आँखों में आँसू भर देता है, जब सती विह्वला अपने पति को लेकर सती होने श्मशान घाट की ओर जाती है। नेपाली जी ने इस दु:ख भरे वातावरण को इन शब्दों में बयाँ किया है-

"न जाने कैसी बुरी घड़ी में दुल्हन बनी एक अभागनी
पिया की अरथी लेके चली, सती होने चली वो सुहागनी।"[173]

आगे उन्होंने इस दु:खद स्थिति को इस प्रकार चित्रित किया है-

"अरथी नहीं, नारी का संसार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है
बजता था जीवन गीत दो साँसों के तारों में
टूटा है जिसका तार वो सितार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है।
भवसागर की लहरों में ऐसे बिछुड़े दो साथी
सजनी मझधार साजन उस पार जा रहा है
भगवान तेरे घर का सिंगार जा रहा है।"[174]

डॉ. दिवाकर ने नेपाली जी के श्रृंगारिक एवं प्रेमपरक गीतों के संबंध में लिखा है कि- "नेपाली जी के श्रृंगारिक और प्रेम प्रधान गीत अन्य फिल्मी गीतों की तरह सस्ते और बाजारू नहीं हैं। इनके गीतों में साहित्यिकता अक्षुण्ण है। नेपाली जी उर्दू शायर की तरह सस्ते रोमांस को स्थान अपने गीतों में नहीं देते हैं। भाव और भाषा के विचार से नेपाली जी अतिशय संयम से काम लेते हैं। स्पष्ट है, इनके श्रृंगारिक गीत काव्य शास्त्र के संयोग और वियोग के दो कूल किनारों से होकर प्रवाहित होते हैं। इन्हीं दो कूल किनारों के बीच इनकी प्रेम भावनाएँ किलोलें करती हैं, उमंगित होती है और होती है उच्छलित। नेपाली जी संयोग पक्षीय गीत लिखते समय सोलहों आने संयोग की स्थिति में रहते हैं और

[173] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 121
[174] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 121

वियोग पक्षीय गीत लिखते समय सोलहों आने वियोग की स्थिति में। इसी का फल है कि श्रोता, पाठक और दर्शक की मानसिकता इनके संयोग और वियोग चित्रण के कूल किनारों से जुड़ी रहती हैं, संयोग और वियोग की भावनाओं से उल्लसित रहती है। सपष्ट है नेपाली जी ऐसे गीत लिखते समय मधुमती की भूमिका की स्थिति में रहते हैं, साधारणीकरण की मनोदशा में निवास करते हैं। यही उनके गीतों के साफल्य का रहस्य है।"[175]

नेपाली जी ने गरीबी को काफी करीब से देखा था। वे सदैव गरीबी से जूझते रहे। जब फिल्मों में सक्रिय थे, उस समय उनकी आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक थी। लेकिन जब फिल्मों से नाता तोड़ा तो वे फिर गरीबी में ही जीवन जीने लगे। लेकिन उन्होंने धन कमाने के लिए कभी अपना सम्मान नहीं बेचा। वे प्रगतिशील विचारों से प्रभावित थे। इसलिए वे अपने गीतों में प्रगतिशील भावना की अभिव्यक्ति करते हैं। फिल्म 'शिवभक्त' का नास्तिक नायक कहता है-

"जिसे बनाना उसे मिटाना काम तेरा
मिटने वाले फिर क्यों लेंगे नाम तेरा?
धरती का घर भरा फूल से
तारों से आसमान का
सागर भर गये, भर न सका तू
पेट एक इंसान का?
इंसानों के घर से दूर मुकाम तेरा
मिटने वाले फिर क्यों लेंगे नाम तेरा।"[176]

नेपाली जी भूख को अभिशाप मानते थे। उनका मानना था कि अगर इंसान भूखा है तो वह अपनी भूख मिटाने के लिए कोई भी गलत काम कर लेगा। इसलिए तो वे कहते हैं-

"युग-युग की यही पुकार

---

[175] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 116

[176] नेपाली चिंतन-अनुचिंतन - सं. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 322

चलो संसार धर्म के रास्ते

पंथ भूल इंसान बना

शैतान पेट के वास्ते।"[177]

('नरसी भगत' फिल्म से)

'नजराना' फिल्म के इस गीत में भी उन्होंने अपनी प्रगतिशील भावना दिखाया है और सीधे भगवान को संबोधित करते हुए कहते हैं-

"रोटी न किसी को, किसी को मोतियों का ढेर

भगवान तेरे राज में अंधेर है अंधेर

दुनिया में जन्म लेते कोई अमीर है

कोई जन्म से मौत तक बना फकीर है

हम इस जन्म में भोगते हैं उस जनम का फेर

भगवान तेरे राज में अंधेर है अंधेर"[178]

भारतीय समाज में दहेज प्रथा एक सामाजिक बुराई है। दहेज की भयावहता को दिखाने के लिए प्रेमचंद ने एक उपन्यास 'निर्मला' लिखा। दहेज कल भी था और आज भी है। नेपाली दहेज प्रथा के विरोधी थे। दहेज के कारण कितने बेमेल विवाह होते हैं, जिसका परिणम दाम्पत्य जीवन में देखने को मिलता है। कितनी युवतियाँ सारी जिंदगी यातनाएँ भोगती हैं। विवाहिता की पीड़ा को नेपाली जी ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया है-

"जोड़ी मिलने न मिले, शादी रचाये चले

चार कहार मिलके डोली उठाये चले

छिपा के बिटिया रानी मुख दूसरों से

रोती ससुराल चली राम के भरोसे

---

[177] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 103-104

[178] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 151

सिर पे सिंदूर लगा, आँसू बहाये चले

बेटी भगवान ने दी, हो गई पराई

बाबुल की लाज बची कर दी विदाई

उजड़ी औरों की दुनिया अपनी बसाने चले

खुशी से लड़की दे के रो रहा बापू

जुए में हारा जैसा हो रहा बापू

दिल रोता चुपके-चुपके बाजा बजाये चले

जोड़ी मिले न मिले शादी रचाये चले।"[179]

इस गीत को 'गौरी पूजा' फिल्म में फिल्माया गया है। इस गीत को अपने सुरों में पिरोया 'मन्ना डे' साहब ने। इस दर्द भरे गीत को सुन के आँख में आँसू आ जाते हैं।

बच्चों के लिए लोरियाँ लिखना मुश्किल नहीं तो आसान भी नही है। "फिल्मों में एक से एक लोरियाँ लिखी गई हैं लेकिन लोरी में देश के भविष्य के साथ ही माँ की कोमल ममता बहुत कम गीतकारों ने व्यंजित की है।"[180] 'नई राहें' फिल्म की इस लोरी को आज भी सर्वश्रेष्ठ लोरी माना जाता है, जो हृदय को छू लेती है-

"कल के चाँद, आज के सपने,

तुमको प्यार बहुत सा प्यार,

लाल, तुम्हारे ही दम से तो

जगमग होगा ये संसार।

नैन तुम्हारे चाँद और सूरज

तुमसे जीवन-ज्योति

सदा मेरी पलकों में रहना

---

[179] नेपाली : चिंतन-अनुचिंतन - सं. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 323

[180] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 111

मेरे मन के मोती

एक बार माँ कहने पर

न्योछावर होंगे हम सौ बार।"[181]

नेपाली जी ने फिल्मों के लिए एक से बढ़कर एक भक्तिपरक गीत लिखे। उनके भक्तिपरक गीतों ने लोकप्रियता के सारे आयाम तोड़ दिये। आज भी मठ-मंदिरों में उनके लिखे भक्तिपरक गीत बजते सुनाई देते हैं। यद्यपि उन्होंने फिल्मों में सभी तरह के गीत लिखे, लेकिन उनकी छवि भक्तिपरक-धार्मिक गीतकार की बना दी गई। उनकी छवि भक्तिपरक धार्मिक गीतकार की बनाने में योगदान जहाँ एक तरफ उनके धार्मिक-भक्तिपरक गीतों का है, तो दूसरी तरफ फिल्म दुनिया के उस षड्यंत्र का भी है, जिसके शिकार वे हो गए और उनकी छवि धार्मिक-भक्तिपरक गीतकार की बनाकर उसमें उनके गीतकार व्यक्तित्व को सीमित कर दिया गया। जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें फिल्मी दुनिया को छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा।

फिल्म 'नरसी भगत' का यह गाना आज भी अपनी लोकप्रियता में पीछे नहीं है-

"दर्शन दो घनश्याम आज मेरी अँखियाँ प्यासी रे

मन-मंदिर की ज्योति जगा दो, घट-घट वासी रे

दर्शन दो घनश्याम .....

मंदिर-मंदिर मूरत तेरी, फिर न दीखे सूरत तेरी

युग बीते न आई मिलन की पूरनमासी रे

दर्शन दो घनश्याम ...."[182]

इस गीत में नेपाली जी एक भक्त कवि की तरह अपनी भक्ति घनश्याम को निवेदित करते दिखाई देते हैं। जहाँ तक नेपाली के भक्तिपरक गीतों की बात है, उन्होंने सभी देवी-देवताओं को आराध्य मानकर उनकी स्तुति में आरती लिखे हैं। भगवान शिव को लेकर उस जमाने में कई फिल्में

---

[181] अलाव : नेपाली जन्मशती विशेषांक, अंक 31, मार्च-अप्रैल 2012, पृ.सं. 403

[182] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 125

बनी और उन फिल्मों के लिए नेपाली जी ने ही कई गीत लिखे। भगवान शिव को समर्पित उनके कुछ फिल्मी गीत द्रष्टव्य हैं-

1. "ऊँ नमो शिवाय, ऊँ नमो शिवाय
आती करो हरिहर को, करो नटवर की
भोले शंकर की, आरती शंकर की
सिर पर शशि का मुकुट संवारे
तारों की पायल झंकारे
धरती अंबर डोल रहे
तांडव लीला से नटवर की
आरती करो शंकर, भोले शंकर की"[183]
(यह 'नागपंचमी' फिल्म का गीत है, जिसमें भगवान शंकर की स्तुति है।)

2. "शिव शंकर भोले-भाले, तुम तो भक्तों के रख वाले
तुमको लाखों प्रणाम, तुमको मेरा प्रणाम
हर-हर हर महादेव का नारा, नर-नारी घर-घर का प्यारा
दीप तुम्हारा, तेल तुम्हारा दुनिया है सब खेल तुम्हारा
हे खेल खेलाने वाले, त्रिभुवन को बचाने वाला
तुमको लाखों प्रणाम, तुमको मेरा प्रणाम।"[184]

(यह 'हर हर महादेव' फिल्म का गीत है, जिसमें भगवान शंकर के प्रति भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति है।)

3. "भोले नाथ से निराला, गौरी नाथ से निराला
ऐसी बिगड़ी बनाने वाला कोई और नहीं

[183] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 122-123
[184] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 123

तुमने जग का कष्ट मिटाया, मुझको स्वामी क्यों बिसराया

अब तो मुझको बचाने वाला, कोई और नहीं

ऐसी बिगड़ी बनाने वाला, कोई और नहीं"[185]

यह गीत भी 'हर-हर महादेव' फिल्म का ही है, जिसमें वे भोलेनाथ के प्रति अनन्य भक्ति प्रकट करते हैं और उन्हें ही हर संकट से निकालने वाले और जग का कष्ट मिटाने वाले बताते हैं। वे कहते हैं कि हे प्रभु! मुझे मत बिसराओ। उनका यह गीत हमें भक्त कवियों की भक्ति भावना की याद दिलाता है।

4. "मुझे तो शिव-शंकर मिल गये

किया न जप-तप, तीर्थ न घूमा

अपने ही घर मिल गये

मुझे तो शिव शंकर मिल गये।

पाते हैं मुनि जिन्हें करके तपस्या

बातों में सुलझी मेरी समस्या

गगन में दीप दिखाने वाले

धरती पर मिल गये

मुझे शिव शंकर मिल गये।"[186]

नेपाली जी के लिखे कई गीत काफी लोकप्रिय हुए। एक गीत है फिल्म 'जयभवानी' का, इस गीत में उन्होंने दुर्गा माता की आरती लिखी है।

"मैया तेरी आरती से अंधेरा टले

भक्त के अंधेरे घर में रोशनी जले

जय-जय भवानी

जय-जय भवानी

---

[185] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 123-124

[186] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 123

राजा की हवेली या निर्धन की झोपड़ी

तेरी दया है तो, वो धरती पे है खड़ी

जो तुम्हें पुकारे, उसे पाप क्या छले

जय-जय भवानी

जय-जय भवानी।"[187]

भगवान राम हिन्दुओं के लोकप्रिय भगवान हैं। भगवान राम को लेकर उन्होंने कई लोकप्रिय गीत लिखे हैं। इन गीतों में वे भगवान राम के प्रति अपनी भक्ति-भावना के साथ श्रद्धा भी दिखाते हैं। फिल्म 'पवन पुत्र' का यह गाना द्रष्टव्य है-

"मेरे तन में हैं राम, मेरे मन में हैं राम

मेरे मन की नगरिया में राम ही राम

मेरे तन में हैं राम, मेरे मन में हैं राम"[188]

आगे वे लिखते हैं-

"हे राम मुझे अपनी शरण में ले लो राम

तुमने लाखों पापी तारे, मेरी वारी बाजी हारे

मेरे पास न पुण्य की पूंजी, पद-पूजन में लो राम

हे राम मुझे अपनी शरण में, ले लो राम।"[189]

फिल्म 'हर-हर महादेव' का यह गीत भी द्रष्टव्य है, जिसमें दास्य भक्ति है-

"ओ दुनिया के मालिक राम, तेरी मरजी के हम हैं गुलाम

तुम्हें लाखों प्रणाम, कोटि-कोटि प्रणाम!!

तेरी इच्छा से हम जग में आए

---

187 गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 124

188 गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 124

189 गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 124

सदियों से चलता है यह आना-जाना

ये जीने-मरने के काम

तेरी मरजी के हम हैं गुलाम।”[190]

काशी शहर हिन्दुओं का प्राचीन तीर्थ है। काशी की महिमा को बताते हुए नेपाली जी ने यह गीत लिखा है, जो फिल्म ‘शिवभक्त’ में फिल्माया गया है-

“जग में सबसे न्यारी काशी

है विश्वनाथ जिसके वासी

नित्य जहाँ शंभु की गाथायें

कवियों ने कही भक्तों ने सुनी

ये काल हस्ती निर्मल नगरी

हरिहर के कारण हरि-भरी

प्रभु तेरे चरण हैं जहाँ जहाँ

है तर्थ हमारा वहीं वहीं।”[191]

नेपाली जी ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण गीत लिखा है- भक्त कवि तुलसीदास पर। उन्होंने तुलसी की प्रासंगिकता को इस गीत में दिखाया है-

“हे धन्य सुहागन वो जिसने, भारत को तुलसीदास दिया।

मेंहदी म्हावर रचकर भी, सुख-सपनों से संयास लिया।

सच मानो तुलसी नहीं होते तो हिंदी कहीं पड़ी होती

उसके माथे पर रामायण की बिंदी नहीं जड़ी होती

हमको वसंत देकर जिसने हैं बदले में संयास लिया

हे धन्य सुहागन वो जिसने भारत को तुलसीदास दिया

---

[190] परिषद पत्रिका, वर्ष 39, अंक 1-4, अप्रैल 1999 से मार्च 2000, पृ.सं. 108

[191] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 126

जाओ कवि जब तक राम अमर, दुनिया में तेरा नाम अमर
दुनिया पूजेगी रघुवर को, गूंजेगा तेरा स्वर घर-घर
प्रभु ने तुमको दिया तुमने हरि लीला का विस्तार दिया
हे धन्य सुहागन वो जिसने भारत को तुलसीदास दिया।"[192]

नेपाली जी ने ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति दिखाते हुए जहाँ एक से बढ़कर एक भक्ति गीत लिखे हैं, वहीं दूसरी ओर अमीरी-गरीबी के अंतर को देखते हुए ईश्वर से शिकायत करने से भी नहीं चुके हैं। उन्होंने ईश्वर की निष्ठुरता की शिकायत करते हुए भी कई गीत लिखे हैं। कुछ गीत द्रष्टव्य हैं-

1. "रोटी न किसी को, किसी को मोतियों का ढेर
भगवान तेरे राज में अंधेर है अंधेर
दुनिया में जन्म लेते ही कोई अमीर है
कोई जनम से मौत तक बना फकीर है
हम इस जनम में भोगते हैं उस जनम का फेर
भगवान तेरे राज में अंधेर है अंधेर"[193]

('नजराना')

2. "चाँद दिखाकर तुने समझा, दुनिया सारी बन गयी
फिर क्यों तेरी झोपड़ियों में पूतो, अंधियारी बन गयी
इंसानों के घर से है दूर, मुकाम तेरा
मिटने वाले फिर क्यों लेंगे नाम तेरा
इसे बनाना उसे मिटाना काम तेरा
मिटने वाले फिर क्यों लेंगे नाम तेरा"[194] ('शिवभक्त')

---

[192] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 126
[193] गोपाल सिंह नेपाली युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 151
[194] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - सं. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 127

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि नेपाली जी ने हिन्दी फिल्मों के गीतों को एक नयी पहचान दी। उसे उर्दू के शायरों और कव्वालों की दुनिया से निकालकर उसका अपना वजूद कायम किया। बिना उर्दू के शब्दों के अच्छे गीत लिखे जा सकते हैं, यह सिद्ध किया अपने गीतों से। भक्तिपरक गीतों के लिए तो उन्हें आज भी याद किया जाता है।

3.4 फिल्मी गीतों के क्षेत्र में गोपाल सिंह 'नेपाली' का योगदान

फिल्मों को मनोरंजन के लोकप्रिय माध्यम के रूप में देखा जाता है। फिल्मों के आने से पहले रंगमंचों की लोकप्रियता थी और उसमें भी पारसी रंगमंचों की धूम मची हुई थी, लेकिन जब सिनेमेटोग्राफी का आविष्कार हुआ और फिल्में बननी शुरू हुई तो रंगमंचों का स्थान धीरे-धीरे फिल्मों ने ले लिया। रंगमंच आज भी है लेकिन फिल्मों से काफी पीछे। आज लोकप्रिय कला माध्यम के रूप में फिल्मों को ही देखा जाता है।

भारत में सर्वप्रथम 7 जुलाई, 1896 को ल्युमेरे ब्रदर्स ने मुंबई के वाटसन होटल में छः फिल्में 'एंट्री ऑफ सिनेमेटोग्राफी', 'एराइवल ऑफ ए ट्रेन', 'द सी बाथ', 'ए डेमोलिशन', 'लिविंग द फैक्ट्री' तथा 'लेडीज एंड सोल्जर्स ऑन व्हील्स' प्रदर्शित की। उसके बाद से देश में फिल्मों के प्रदर्शन का दौर शुरू हुआ। 1907 में कोलकाता में स्थायी छविगृह एल्फिंस्टन बनकर तैयार हो गया। यद्यपि 1901 ई. से ही भारत में फिल्म निर्माण के प्रयास किए जाने लगे थे। लेकिन सफलता 1913 ई. में मिली जब धुंढिराज गोविंद फाल्के ने 'राजा हरिश्चंद्र' नामक मूक फिल्म बनाकर इतिहास रच दिया।

आरंभिक फिल्में मूक फिल्में थी। इसलिए उसमें गीतों के लिए कोई जगह नहीं थी। लेकिन जब फिल्में सवाक् बनने लगी तो उसमें गीत और संगीत का समायोजन हुआ। आर्देशिर ईरानी निर्मित 'आलमआरा' पहली भारतीय फिल्म थी जिसमें गीत और संगीत को समायोजित किया गया। यह पहली भारतीय बोलती फिल्म भी थी। इसका प्रथम प्रदर्शन मुंबई के मैजेस्टिक थिएटर में 14 मार्च, 1931 ई. को हुआ। यहीं से फिल्मों में गीत की परंपरा शुरू हुई। फिल्मी गीत लिखने के लिए अनेक प्रतिभा संपन्न गीतकार सामने आए। शुरुआती दौर में नौटंकी शैली के ही गीत लिखे गए।

फिल्मों को लोकप्रिय बनाने में बड़ा योगदान उसके गीतों का रहा है। फिल्म की सफलता या असफलता का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष गीत ही रहा है। कितने ही कमजोर पटकथा की फिल्में अपने कर्णप्रिय गीतों के सहारे सफल हो गई। इसलिए फिल्मों में कर्णप्रिय और मधुर गीत का होना अनिवार्य माना जाने लगा। इसलिए अच्छे गीतकारों की फिल्मी दुनिया में माँग हमेशा से रही है। गोपाल सिंह 'नेपाली' का फिल्मी गीतकार के रूप में जीवन सन् 1944 ई. में शुरू हुआ। फिल्मों में आने से पहले वे मंचीय कवि के रूप में लोकप्रिय थे। आरंभिक दिनों में उन्होंने पत्रकारिता भी की थी। सन् 1934 ई. में ऋषभ चरण जैन के संपर्क में आने पर उनके साथ सिनेमा प्रधान साप्ताहिक 'चित्रपट' का संपादन किया था। इस पत्रिका के माध्यम से वे सिने माहौल से परिचित हो गए थे। जब उन्होंने फिल्मों में गीत लिखने की शुरुआत की, उस समय फिल्मी जगत में हिंदी गीतकारों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उस समय उर्दू शायरों का फिल्मी जगत में आधिपत्य था। वहीं दूसरी ओर संगीतकारों- "गीतकारों की खेमेबाजी के कारण किसी हिंदी गीतकार का टिक पाना आसान नहीं था।"[195] ऐसी विपरीत परिस्थिति में हिंदी के साहित्यिक कवि के लिए वहाँ अपना स्थान बनाना आसान काम नहीं था।

गोपाल सिंह 'नेपाली' का फिल्मों से जुड़ाव संयोगवश ही हुआ। फिल्मों से जुड़ने से पहले वे बेतिया में बेतिया राज प्रेस प्रबंधक के रूप में काम कर रहे थे। इस काम से वे संतुष्ट नहीं थे। "तभी उन्हें बंबई से महाकवि कालिदास शताब्दी महोत्सव में शामिल होने के लिए विशेष निमंत्रण रु. 500 सहित मिला। बस आपने प्रेस की कुंजी अपने सहायक के पास फेंक बंबई चल दिए और फिर बेतिया जीवन में रहने के लिए नहीं लौटे। यह सन् 1944 की बात है।"[196] सन् 1944 ई. में मुंबई में आयोजित महाकवि कालिदास समारोह में गोपाल सिंह 'नेपाली' सहित चालीस प्रतिनिधि कवियों को काव्य पाठ का अवसर मिला। इन चालीस कवियों में नेपाली का काव्य पाठ सर्वश्रेष्ठ रहा। अगले दिन मुंबई के समाचार पत्रों में उनके काव्य पाठ की ही चर्चा रही। नंदकिशोर नंदन ने लिखा है- "सन् 1944 में मुंबई में कालिदास समारोह का आयोजन किया गया था, जिस कवि सम्मेलन में गोपाल सिंह

---

[195] गोपाल सिंह 'नेपाली' : युगद्रष्टा कवि - नन्दकिशोर नंदन, पृ.सं. 146

[196] गोपाल सिंह 'नेपाली' - संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 15

'नेपाली' ने अनूठी काव्य शैली एवं मधुर कंठ से श्रोताओं को ऐसे मंत्रमुग्ध किया कि दूसरे दिन समाचार पत्रों में वही छाए रहे। उनके गीतों की चर्चा से प्रभावित हो फिल्मीस्तान के शशिधर मुखर्जी और निर्देशक पी.एल. संतोषी होटल जा पहुँचे, जहाँ नेपाली जी ठहरे थे। उन दोनों के आग्रह पर अभाव से जूझ रहे नेपाली 1500 रुपये प्रतिमाह के अनुबंध को स्वीकार कर चार वर्षों तक गीत लिखने के लिए तैयार हो गए।"[197] फिल्मीस्तान कंपनी के गीतकार के रूप में उनका फिल्मी कैरियर शुरू हुआ। 1944 से 1948 ई. तक फिल्मीस्तान कंपनी के गीतकार के रूप में गीत लिखते रहे। 1949 ई. में उन्होंने फिल्मीस्तान के अनुबंध का नवीनीकरण नहीं किया और ना ही किसी फिल्मी कंपनी से कोई नया अनुबंध स्वीकार किया। बल्कि 1949 ई. से उन्होंने एक स्वतंत्र गीतकार के रूप में अपनी पहचान बनाना शुरू किया। सन् 1949 ई. से 1956 ई. तक उन्होंने एक स्वतंत्र गीतकार के रूप में अनेक फिल्मों के लिए गीत लिखे। इस प्रकार सन् 1944 ई. से 1956 ई. तक उनका फिल्मी कैरियर चला। इन 12 वर्षों में उन्होंने 52 फिल्मों के लिए 300 से अधिक गीत लिखे। उन्होंने सर्वप्रथम 'तिलोत्तमा' (1944 ई.) फिल्म के लिए गीत लिखे। 'मजदूर' (1945 ई.) फिल्म से उन्हें पहचान मिली और जी.एस. नेपाली के नाम से लोकप्रिय हो गए। 'जय भवानी' (1960 ई.) अंतिम फिल्म थी जिसके लिए उन्होंने गीत लिखे।

'मजदूर' फिल्म ने गोपाल सिंह 'नेपाली' को लोकप्रिय गीतकार के रूप में फिल्मी दुनिया में प्रतिष्ठित किया। हिंदी साहित्य के मशहूर कथाकार उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने इसके संवाद लिखे थे। इस फिल्म के गीत बहुत लोकप्रिय हुए। इस फिल्म के गीत के लिए बंगाल फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन ने गोपाल सिंह 'नेपाली' को सर्वश्रेष्ठ गीतकार का पुरस्कार दिया।

हिंदी फिल्मों में गीतकार के रूप में गोपाल सिंह 'नेपाली' का आगमन उस समय हुआ, जब हिंदी गीतकारों की स्थिति ठीक नहीं थी। फिल्मों पर पारसी रंगमंच का अच्छा खासा प्रभाव था। फिल्मों में नौटंकी शैली के गीत लिखे जा रहे थे। नेपाली ने इन प्रतिकूल स्थितियों में भी अपना धैर्य

[197] गोपाल सिंह नेपाली : युमद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 146

नहीं खोया और एक सफल गीतकार के रूप में अपनी पहचान बनायी। नौटंकी शैली के गीतों से उन्होंने दूरी बनाई और स्तरीय गीत लिखे। वे अपनी गीतों में साहित्यिकता को अक्षुण्ण रखते कई गीत लिखे। दृष्टांत स्वरूप निम्न गीत को देख सकते हैं-

"दर्शन दो घनश्याम, आज मेरी अखियां प्यासी रे
मन मंदिर की ज्योति जगा दो, घट घट वासी रे
दर्शन दो घनश्याम
मन-मंदिर सूरत तेरी, फिर न दिखे सूरत तेरी
युग बीते न आई मिलन की पूरणमासी रे
दर्शन दो घनश्याम।"

जब गोपाल सिंह 'नेपाली' ने हिंदी फिल्मों के लिए गीत लिखना शुरू किया, उस समय फिल्मी दुनिया में उर्दू शायरों और कव्वालों का बोलबाला था। "उनका सिक्का कुछ इस तरह जमा हुआ था कि लोग यह सोच भी नहीं पाते थे कि हिंदी में उर्दू से अधिक दंद है और हर प्रकार के भावों की सुंदर अभिव्यक्ति दी जा सकती है।"[198] गोपाल सिंह 'नेपाली' ने सारी पूर्व धारणाओं को दरकिनार करते हुए हिंदी में ही गीत लिखे। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति हो या भक्तिपरक- सभी तरह के गीत उन्होंने लिखे और फिल्मी दुनिया में हिंदी को प्रतिष्ठित किया। उनके सभी गीत सफल रहे। जबकि आरंभ में उनसे उर्दू में ही गीत लिखने का आग्रह निर्माताओं और निर्देशकों ने किया था और उनकी उर्दू पर पकड़ भी थी। लेकिन उन्होंने उर्दू में गीत लिखने से इंकार कर दिया था। फिल्मी दुनिया में उर्दू और हिंदी से संबंधित एक प्रसंग है- "अपने समय की विख्यात और खूबसूरत अभिनेत्री नसीमा बानू ने एक फिल्म के सेट पर नेपाली जी से कविता सुनाने का आग्रह किया और नेपाली जी ने अपने मधुर स्वर में 'कल्पना करो, नवीन कल्पना करो' शीर्षक कविता के अलावा कई कविताएँ सुनाई तो वह बेसाख्ता बोल उठी- "मैं तो आज तक यही समझती थी कि उर्दू

[198] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 107

और फारसी ही सबसे मीठी जुबान है। लेकिन मुझे आज पता चला कि हिंदी दुनिया की सबसे मीठी जुबान है।" कहना ना होगा कि हिंदी को यह प्रतिष्ठा दिलाने में नेपाली जी के साथ नरेंद्र शर्मा, प्रदीप, शैलेंद्र, इंदीवर, भरत व्यास, नीरज और सरस्वती कुमार 'दीपक' की भूमिका अविस्मरणीय है तो हिंदी के कथाकारों में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा और उपेंद्रनाथ 'अश्क' का योगदान भी कम नहीं है।"[199]

फिल्मी दुनिया में अपना पैर जमाना न उस समय आसान था और ना आज ही। जब गोपाल सिंह 'नेपाली' ने गीत लिखना शुरू किया था, उस समय संगीतकारों-गीतकारों की जबरदस्त खेमेबाजी थी। इस स्थिति में किसी नये गीतकार का टिकना मुश्किल था। नेपाली किसी खेमेबाजी में न पड़कर एक से बढ़कर एक गीत लिखे। उनकी गीतों की लोकप्रियता ने निर्माता-निर्देशकों को मजबूर कर दिया कि बिना किसी खेमेबाजी की परवाह किए, वे उनसे गीत लिखवाते रहे। फिल्मी दुनिया की खेमेबाजी का यह प्रसंग द्रष्टव्य है- " 'गजरे' फिल्म के निर्माता जो मध्य प्रदेश के जबलपुर के रहने वाले संभ्रांत मुस्लिम थे, उन्होंने संगीत निर्देशक के रूप में अपनी फिल्म से प्रख्यात संगीतकार नौशाद को हटाकर उनकी जगह 'गजरे' के संगीत निर्देशक के रूप में अनिल विश्वास को ले लिया था, क्योंकि नौशाद उस फिल्म के गाने शकील बदायूंनी से लिखवाने पर अड़े थे और निर्माता नेपाली जी से गीत लिखवाने को संकल्पित थे।"[200] नेपाली जी ने इस फिल्म के गीत लिखे और सभी गीतों ने अपार लोकप्रियता पायी। इस फिल्म का एक गीत जो आज भी लोग सुनते हैं-

"दूर पपीहा बोला, रात आधी रह गई
मेरी तुम्हारी मुलाकात बाकी रह गई।"

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने प्रतिकूल एवं हिंदी विरोधी वातावरण में रहकर फिल्मों के लिए गीत लिखना शुरू किया। उन्होंने अपने गीतों से प्रतिकूल स्थिति को अपने अनुकूल बनाया। हिंदी विरोधी वातावरण न केवल फिल्मी दुनिया से दूर किया, बल्कि आने वाले हिंदी गीतकारों के लिए फिल्मी

---

[199] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 148
[200] परिषद पत्रिका, जन्मशती स्मरणांक, वर्ष 4-1, अंक 51, पृ.सं. 257

दुनिया का मार्ग प्रशस्त किया। उनके बाद एक से बढ़कर एक हिंदी गीतकारों ने फिल्मी दुनिया में अपनी धाक जमायी।

साहित्यिक गीत लिखना और फिल्मों के लिए गीत लिखना- दोनों में अंतर है। साहित्यिक गीतकार पर कोई बंधन नहीं होता। वह स्वतंत्र रूप से गीत लिखता है। जबकि फिल्मी गीतकार के लिए बंधन होता है, वह स्वतंत्र रूप से गीत नहीं लिख सकता। "फिल्मों के गीत लिखने की अनिवार्य शर्त यह है कि गीत प्रसंगानुसार भावाद्रेक की क्षमता रखते हों और प्रचलित शब्द सीधे हृदय में उतर जाने वाले हों और उनकी धुनें भी मधुर हों ताकि लोगों की जुबान चढ़ जाएं। नेपाली के साहित्यिक गीतों के समान उनके फिल्मी गीतों में ये सारी विशेषताएं रही हैं।"[201] नेपाली के गीत सफल रहे। उन्होंने फिल्म दुनिया में अपनी पहचान और धाक जमायी ही, हिंदी को भी वहाँ प्रतिष्ठित करने का काम किया।

फिल्मों में काम करने से साहित्यिक स्वायत्तता खत्म हो जाता है, ऐसी सोच के साहित्यिक पृष्ठभूमि के रचनाकारों ने फिल्मों से दूरी बनाए रखा। कुछ लोग फिल्मी दुनिया में गए तो जरूर लेकिन जल्द ही अपनी साहित्यिक दुनिया में लौट आए। प्रेमचंद ने 'मिल मजदूर' फिल्म की पटकथा लिखी। फिल्म सफल भी रही, लेकिन वे लौट आए। हरिवंश राय 'बच्चन' जैसे लोकप्रिय कवि ने भी स्वायत्तता खत्म हो जाने के डर से फिल्मों के लिए गीत लिखना स्वीकार नहीं किया। अगर किसी फिल्मकार ने उनके गीतों को फिल्मों में इस्तेमाल करने की अनुमति मांगी, अनुमति दी भी तो बमुश्किल ही। "उर्दू के साहिर साहेब जैसे शायरों ने अपनी गाढ़ी शायरी को फिल्मों के लिए बदल कर भी लिखा- 'कभी-कभी मेरे दिल में ख्याल आता है' तथा 'यह दुनिया अगर मिल भी जाए, तो क्या है' जैसे गीत इसके गवाह हैं।"[202] नेपाली जी इन सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर फिल्मों के लिए गीत लिखा। उन्होंने ना कभी यह सोचा कि अपनी साहित्यिक गीतों के फिल्मी संस्करण तैयार करें। उस जमाने में एक गलतफहमी लोगों में थी कि उर्दू लफ्जों का इस्तेमाल अगर फिल्मों के गीत लिखने में

---

[201] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 147

[202] जनपथ पत्रिका, अंक दिसंबर 2011, पृ.सं. 30

किया जाए तो वह गीत लोकप्रिय तो होगी ही और असरदार भी होगी। नेपाली जी ने इस गलतफहमी को दूर किया और उर्दू लफ्जों का इस्तेमाल ना करते हुए भी असरदार और लोकप्रिय गीत लिखे। उर्दू लफ्जों के इस्तेमाल के वे विरोधी भी नहीं थे। इसलिए जहाँ जरूरत महसूस की वहाँ उर्दू लफ्जों का इस्तेमाल किया भी। दृष्टांत के रूप में 'सफर' फिल्म के इस गीत को देख सकते हैं-

"अब तो हमारे हो गये, इकरार करें या ना करें
हमको मोहब्बत आपसे, हमको जरूरत आपकी
आप हमारी जिंदगी गुलजार करें या ना करें"

गोपाल सिंह 'नेपाली' के गीत पात्रों के मनोदशाओं के अनुकूल होते थे। उन्होंने कई ऐसे गीत लिखे, जिसने फिल्मी दुनिया में अमिट छाप छोड़ी। 'नागपंचमी' फिल्म का यह गीत "अर्थी नहीं, नारी का संवार जा रहा है"- ऐसा मार्मिक गीत है जो आज भी अपनी मार्मिकता, करुणा और संवेदना के लिए याद किया जाता है। नंदकिशोर नंदन ने लिखा है- "जब 'नागपंचमी' फिल्म का यह गीत मोहम्मद रफी और आशा के स्वर में देश भर में गूंजने लगा तो जोश साहब (प्रख्यात शायर जोश मलीहाबादी) ने उससे अभिभूत होकर कहा था- "ऐसा मार्मिक शोक गीत मैंने कभी नहीं सुना।" इन पंक्तियों को कवि नेपाली ने नायक की अर्थी को श्मशान भूमि में ले जाते समय की दारुण पृष्ठभूमि को जीवंत करने के लिए लिखा था। गीत की भाव-भूमि और शब्द योजना कवित्व का सुंदर प्रमाण है।"[203]इस गीत को देखिए -

"अर्थी नहीं, नारी का संसार जा रहा है,
भगवान, तेरे घर का शृंगार जा रहा है,
बजता था जीवन-गीत दो सांसों के तारों में
टूटा है जिसका तार, वो सितार जा रहा है
जलना था जब तक तन की जलती रही चिनगारी

---

[203] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 146

बुझने को अब जीवन का अंगार जा रहा है

भव सागर की लहरों में ऐसे बिछड़े दो साथी

सजनी इस पार, साजन उस पार जा रहा है।"

अक्सर माँ बच्चे को लोरी सुनाकर सुलाती है। लोरी एक प्रकार का गीत है जो मन को शांत करता है। इसको सुनकर बच्चे जल्दी सो जाते हैं। फिल्मों में भी लोरियों का प्रचलन हुआ। हिंदी फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ लोरी की रचना करने का श्रेय गोपाल सिंह 'नेपाली' को ही है। इस गीत की धुन रवि ने बनाई और इसे हेमंत कुमार और लता मंगेशकर ने इसे अलग-अलग गाया है। लोरी में भविष्य की पीढ़ी के लिए मार्मिक संदेश भी है-

"कल के चाँद आज के सपने

तुमको प्यार बहुत सा प्यार

लाल तुम्हारे ही दम से

जगमग होगा यह संसार"[204]

हिंदी फिल्मों का पसंदीदा विषय प्रेम रहा है। प्रेम की अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए कई गीत लिखे गए हैं। नेपाली ने फिल्मों के लिए कई प्रेम गीत लिखे हैं। नेपाली के प्रेमगीतों में एक गरिमा है, उसमें फूहड़ता नहीं है। उनके प्रेमगीत सीधे हृदय को छूते हैं। 'तुलसीदास' फिल्म का एक गीत द्रष्टव्य है-

"रहूँ कैसे मैं तुमको निहारे बिना

मेरा मन ही न माने तुम्हारे बिना"

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने भक्तिपरक-धार्मिकपरक गीत एक से बढ़कर एक लिखे हैं। उनके भजन बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी भक्तिपरक धार्मिक गीतों की लोकप्रियता का आलम यह है कि

[204] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 148

आज भी वे मंदिरों में बजते हुए सुनाई देंगे। कितने ही घरों में आज भी उनके भजन रोज सुने जाते हैं। 'नरसी भगत' फिल्म का यह भजन हमें भक्तिकालीन कवियों की याद दिलाता है-

"दर्शन दो घनश्याम
नाथ मोरी अखियां प्यासी रे
मन मंदिर की ज्योति जगा दो
घट घट वासी रे"

'दर्शन दो घनश्याम' गीत से जुड़ा हुआ एक दुखद प्रसंग है जो गोपाल सिंह 'नेपाली' की उपेक्षा को दर्शाता है। " 'स्लमडॉग मिलेनियर' ऑस्कर विजेता फिल्म है। इस फिल्म के एक प्रसंग में एंकर बने अनिल कपूर एक लड़के से सवाल पूछते हैं कि 'दर्शन दो घनश्याम' किसका लिखा हुआ गीत है। लड़के द्वारा सूरदास उत्तर दिया जाता है और एंकर बने अनिल कपूर द्वारा उसे सही घोषित किया जाता है। आखिर ऐसी गलती फिल्म में हुई कैसे? जब कवि के पुत्र नकुल जी ने इसके खिलाफ मुकदमा किया तो उस फिल्म के गीतकार गुलजार साहब नाराज हो उठे। एक समारोह में उन्होंने नकुल जी से कहा कि उन्होंने बेकार का मुकदमा किया है।"[205] गुलजार जी द्वारा दिया गया वक्तव्य अत्यंत निंदनीय है। गुलजार जी स्वयं गीतकार हैं। उनसे कम से कम यह आशा थी कि वे इस संबंध में सकारात्मक रूप अख्तियार करते। गोपाल सिंह 'नेपाली' जैसे लीजेंड गीतकार के साथ ऐसा हुआ और फिल्मी दुनिया में इसकी निंदा तक नहीं की गई। यह फिल्मी दुनिया की एक ऐसी सच्चाई से हमें अवगत कराता है जहाँ सिर्फ दौलत-शोहरत की पूछ है, किसी को न्याय मिले, इसकी उन्हें कोई चिंता तक नहीं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' समाज में समानता के हिमायती थे। वे आर्थिक वैषम्य के स्थान पर आर्थिक साम्य चाहते थे। उनकी कविताओं के साथ फिल्मी गीतों में भी प्रगतिशील विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। 'नजराना' फिल्म का गीत द्रष्टव्य है-

[205] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 109

"दुनिया में जन्म लेते ही कोई अमीर है
कोई जन्म से मौत तक बना फकीर है
हम इस जन्म में भोगते हैं इस जन्म का फेर
भगवान तेरे राज में अंधेर है, अंधेर।"

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने फिल्मी गीतों को एक काव्यात्मक भाषा दी। उसमें उन्होंने लोकप्रचलित शब्दों को ही रखा। उन्होंने पात्र-परिवेश और परिदृश्य के अनुरूप शब्दावली में गीत लिखने की कला फिल्मी दुनिया को दी। "शकील साहब तो बृज प्रदेश की नायिका के मुँह में खालीश उर्दू के शब्द ठूँस देते हैं - "बचपन की मोहब्बत को दिल से जुदा ना करना, जब याद मेरी आए मिलने की दुआ करना।" नेपाली, नरेंद्र शर्मा, प्रदीप और इंदीवर ने कभी ऐसा नहीं किया। यह कितना अस्वाभाविक है कि बृज प्रदेश की नायिका के मुँह से हिंदी की जगह उर्दू ही उर्दू फूटे।"[206]

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने फिल्म निर्माण के क्षेत्र में भी हाथ आजमाया। लेकिन वे यहाँ बुरी तरह असफल रहे। उन्होंने 'हिमालय फिल्म्स' एवं 'नेपाली पिक्चर्स' नामक दो संस्थाएं बनायीं, जिसके तहत उन्होंने तीन फिल्में बनायीं- 1949 ई. में 'नजराना', उसके बाद 'सनसनी' (1951 ई.) तथा 'खुशबू' (1956)। इन तीनों फिल्मों के गीत इन्होंने ही लिखे। इन फिल्मों की असफलता ने नेपाली की आर्थिक स्थिति को कमजोर कर दिया।

गोपाल सिंह 'नेपाली' जब फिल्मों में सक्रिय थे और अपने गीतों के माध्यम से वहाँ हिंदी भाषा का झंडा बुलंद किए हुए थे। जनता की भाषा में लिखे हुए गीत उन्हें लोकप्रियता के शिखर तक पहुँचा रहे थे। वहीं, साहित्य जगत के लोग उनकी आलोचना में लगे हुए थे। 'नजराना' फिल्म के इस गीत पर उन्हें अश्लील गीतकार कहा गया और उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई गई-

"एक रात को पकड़े गए दोनों
जंजीर में जकड़े गए दोनों

[206] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 153

एक थी जवानी एक जवान था

जहान में रहते थे कुछ दिनों से

एक ही मकान में

फिर साथ-साथ रहते प्यार हो गया

दो दिल मिले तो दुश्मन संसार हो गया

एक रात को पकड़े गए दोनों।"

इस संबंध में नंदकिशार नंदन की दो टिप्पणियां द्रष्टव्य हैं-

पहली टिप्पणी- "उन्हीं (गोपाल सिंह 'नेपाली') के द्वारा लिखित हिमालय पिक्चर्स की फिल्म 'नजराना' के इस गीत पर नरेंद्र तूली ने 'ब्लिट्ज़' पत्रिका में अपना गुस्सा प्रकट करते हुए लिखा था- "भाई गोपाल सिंह 'नेपाली' अच्छे कवि होकर भी अपने स्वार्थ के पनाले में डूब गए हैं।" बाद में यही लेख जबलपुर से प्रकाशित पत्रिका 'प्रहरी' के छ: अप्रैल 1950 के अंक में 'एक कवि का पतन' शीर्षक से छपा था। नरेंद्र तूली साहब के इस क्रोध का एक कारण अगर कहीं से सामाजिक सरोकार रहा भी होगा तो बड़ा कारण यह भी था कि वह फिल्म जगत में हाथ आजमा रहे थे, लेकिन सफलता उन्हें कभी नहीं मिली। पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि प्रेमी-प्रेमिका के बीच दीवार बने जमाने की बेरहमी के बीच उनकी विकलता की यह वेदना और तड़प 'चोली के पीछे क्या है', 'सरकाय लो खटिया', 'गुटर गू', 'शीला की जवानी' जैसी गीतों की कामुकता और अश्लीलता के सामने कहीं से भी अमर्यादित नहीं है।"[207]

दूसरी टिप्पणी- "लेखिका रंजना नायक इस गीत का उल्लेख करते हुए यह अक्षरश: सही लिखा है- "नेपाली के जिस गीत ने उस वक्त लोगों को इतनी कड़वाहट से भर दिया था, आज के सुपरहिट मुकाबले में कहीं नहीं टिकता।" वह आगे लिखती हैं- "नब्बे के दशक में फिल्मी गाने लिखने, गाने, उनपर नाचने थिरकने वाले और उन्हें देखने-सुनने वालों को पचास के दशक का यह

[207] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 149

गुस्सा बेमानी और बदमजगी पैदा करने वाला लगेगा। स्पष्ट है कि नेपाली को फिल्मी जगत में भी विरोध का सामना करना पड़ा और उस माहौल में भी उन्होंने एक से बढ़कर एक काव्यात्मक गीतों से हिंदी फिल्म जगत को समृद्ध किया।"[208]

साहित्यिक जगत में उनपर तीखे व्यंग्य और हमले किए गए। फिल्म निर्माण में असफल होने पर उनकी आर्थिक स्थिति भी डांवाडोल हो गई थी। साहित्यिक जगत में गिरती लोकप्रियता और डांवाडोल आर्थिक स्थिति के बीच उन्होंने 1959 ई. में मुंबई छोड़ दिया।

3.5 उत्तरछायावाद के कवि के रूप में गोपाल सिंह 'नेपाली'

गोपाल सिंह 'नेपाली' उत्तरछायावाद के एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उत्तरछायावाद छायावाद से लगा हुआ एक काव्यांदोलन है, जो सन् 1930 ई. के आस-पास से विकसित होता है। उत्तरछायावाद में छायावाद के प्रति मोह है तो उसके प्रति प्रतिक्रिया भी। यह छायावादी रोमांटिकता को आत्मसात तो करती है, लेकिन भिन्न रूप में। यह छायावादी रोमांटिकता को राष्ट्रीयता से जोड़ देती है। रेवतीरमण ने लिखा है कि- "उत्तरछायावादी डार से बिछुड़े हुए लोग थे। उनके सामने ही छायावाद गिरते-पड़ते, लड़खड़ाते हुए धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ और इतिहास के सिंहासन पर बैठ गया। वह कलागीत के उत्कर्ष का युग था। छायावादी कविता के प्रभाव में छायावादी गद्य भी प्रचुर लिखा गया। 'उत्तरछायावाद' प्रचलन और प्रयोग में बहुत बाद में आया। छठे दशक में उसे लोकेट करने की कोशिश हुई। तब पता लगा कि उत्तरछायावाद, छायावाद नहीं है, न उसका अनावश्यक विस्तार ही। वह छायावाद के पीछे-पीछे चला हो, ऐसा भी नहीं है। उत्तरछायावाद, छायावाद के समानांतर है और छायावादोत्तर भी। छायावादोत्तर प्रगतिवाद है, 'प्रयोगवाद' और नई कविता भी। उत्तरछायावाद में उसकी समकालीन सभी प्रवृत्तियों का समावेश है।"[209]

---

[208] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 150

[209] अलाव : नेपाली जन्मशती विशेषांक, अंक 31, मार्च-अप्रैल 2012, पृ.सं. 25

उत्तरछायावादी कवि छायावाद के प्रभाव से मुक्त होने का प्रयास करते रहे। लेकिन जाने-अनजाने उसका अनुसरण भी करते रहे। छायावादी कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' 'सरोजस्मृति' में अपनी दु:ख की कथा कहते हैं-

"धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका!
जाना तो अर्थोगमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर।"[210]

नेपाली जी कुछ इसी अंदाज में कहते हैं-

"अफसोस नहीं इसका हमको, हम जीवन में कुछ कर न सके
झोलियां किसी की भर न सके, संताप किसी का हर न सके
अपने प्रति सच्चा रहने का जीवन भर हमने यत्न किया
देखा-देखी हम जी न सके, देखा-देखी हम मर न सके।"[211]

छायावादी और उत्तरछायावादी इन दो कवियों के तुलनात्मक अध्ययन से जो बात निकलकर आती है, वही छायावाद और उत्तरछायावाद में अंतर है। निराला जहाँ अपने को कोसते हैं और कहते हैं कि वे कुछ कर न सके। वे अपना जीवन निरर्थक मानते हैं। वहीं नेपाली जी कहते हैं कि उन्हें इस बात का कोई अफसोस नहीं है कि वे कुछ कर न सके। उन्हें इस बात पर गर्व है कि उन्होंने जीवन भर ईमानदार रहने का यत्न किया।

उत्तरछायावादी कवि अपनी मर्जी से से लिखना चाहते हैं। वे किसी दबाव में नहीं लिखते। उन्हें किसी की परवाह नहीं है। वह अपने को चाटुकारिता से दूर रखकर खुद को जनता से जोड़ना

---

[210] निराला संचयिता - सं. डॉ. रमेशचन्द्र शाह, पृ.सं. 88
[211] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 124

चाहते हैं। नेपाली जी ने ‘स्वाधीन कलम’ में अपनी संपूर्ण रचना प्रक्रिया को समेट लिया है। वे संपादकों, आलोचकों को खबरदार करते हुए कहते हैं-

“ओ आलोचक, विष घोल नहीं
साहित्य समझ, सुन, बोल नहीं
रंगरूटों से कह दे कोई
मंदिर में पीटे ढोल नहीं”[212]

गोपाल सिंह ‘नेपाली’ हिन्दी के कवियों में अपना जगह ढूँढते हैं। वे हिन्दी के जातीय कवि परंपरा की चर्चा करते हैं और कहते हैं-

“तुलसी चंदा तो सूर सूर / केशव से तारे दूर-दूर
बाकी हैं जुगनू, मैं तो बस / जागरण पक्ष में चूर-चूर
रवि लाने वाला दीपक हूँ / मेरी लौ में लवलीन कलम।”[213]

उनकी एक और प्रसिद्ध कविता है ‘इतिहास बदलने वाले हैं’। वे खुद को उस परंपरा का कवि मानते हैं, जो इतिहास बदल दे। उनकी कविता से अपेक्षा बड़ी है। उनका यह आत्मविश्वास उनकी कविता में दिखता है-

“हम धरती क्या, आकाश बदलने वाले हैं
हम तो कवि हैं, इतिहास बदलने वाले हैं।”[214]

नेपाली सत्ता के पीछे नहीं भागते। वे कविता को दरबारीपन से मुक्त रखना चाहते हैं। वे अपना ईमान नहीं बेच सकते, इसलिए वे महल में नहीं रह सकते। इसलिए तो वे कहते हैं-

“तुझ-सा लहरों में बह लेता
तो मैं भी सत्ता गह लेता

---

[212] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75
[213] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 74

[214] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 76

ईमान बेचता चलता तो

मैं भी महलों में रह लेता।”[215]

उत्तरछायावाद में राष्ट्र के प्रति अटूट भक्ति देखने को मिलती है। देशप्रेम, स्वदेशी, गाँधी, नेहरू सभी विषयों पर कविता देखने को मिलती है। नेपाली का राष्ट्र प्रेम उनमें विशिष्ट है। वे तो कहते हैं-

“हुआ देश खातिर जनम है हमारा

कि कवि हैं, तड़पना करम है हमारा

कि कमजोर पाकर मिटा दे न कोई

इसी से जगाना धरम है, हमारा।”[216]

नेपाली का राष्ट्र प्रेम उन्हें विशिष्ट बनाता है। वे देश की चिंता करते हैं। उनका मानना है कि देश लोगों से ही बनता है। जब तक लोग एक नहीं होंगे, राष्ट्र मजबूत नहीं होगा। राष्ट्र मजबूत नहीं होगा, तो उसे कोई भी आसानी से तोड़ देगा। इसलिए वे कहते हैं-

“हम थे अभी-अभी गुलाम, यह न भूलना

करना पड़ा हमें सलाम, यह न भूलना

रोते-फिरे उमर तमाम, यह न भूलना

था फूट का मिला इनाम, यह न भूलना

बीती गुलामियाँ लौट आयँ न फिर कभी

तुम भावना भरो, स्वतंत्र भावना भरो, तुम भावना भरो।”[217]

[215] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75

[216] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 85

[217] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 40

नेपाली उन कवियों में से नहीं थे, जिन्हें सिर्फ स्वतंत्रता चाहिए थी। बल्कि उनको सभी रूढ़ियों से मुक्ति चाहिए थी, उन अनीतियों से मुक्ति चाहिए थी, उन चुनौतियों का समाधान चाहिए था, जिसके लिए स्वतंत्रता का संघर्ष किया गया था। इसलिए वे कहते हैं-

"अब घिस गईं, समाज की तमाम नीतियाँ
अब घिस गईं, मनुष्य की अतीत रीतियाँ
हैं दे रहीं चुनौतियां, तुम्हें कुरीतियां
निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार के लिए
तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो।"[218]

उनका 'हिमालय ने पुकारा' नामक काव्य संग्रह तो राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है ही। नेपाली राष्ट्र की मुक्ति और विकास के लिए सबकी भागीदारी के हिमायती हैं। जब तक हर भारतीय चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, साथ नहीं आएगा, भारत का विकास नहीं होगा। इसलिए तो वे 'भाई-बहन' कविता में लिखते हैं-

"मैं भाई फूलों में भूला मेरी बहन विनोद बनी
भाई की गति, मति भगिनी की, दोनों मंगल मोद बनी
यह अपराध कलंक सुशीले सारे फूल जला देना
जननी की जंजीर बन रही, चल तबियत बहला देना
पागल घड़ी, बहन-भाई है, वह आजाद तराना है
मुसीबतों से, बलिदानों से पत्थर को समझाना है।"[219]

नेपाली उत्तरछायावाद के कवि हैं और उत्तरछायावाद का प्रकृति चित्रण 'छायावाद' से कई अर्थों में भिन्न है। वहाँ कल्पना की प्रधानता है यहाँ अनुभूति की तीव्रता की, वहाँ कलात्मकता है यहाँ सहजता। नेपाली प्रकृति को संपूर्णता में देखते हैं। प्रकृति के एक-एक तत्व से, एक-एक भंगिमा से वे पूरी तरह परिचत हैं। वे उनका महत्त्व जानते हैं, उनकी भाषा भी। तभी तो वे कहते हैं-

[218] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11
[219] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51

"फूटा है मेरा कंठ यहीं रे निर्मल-निर्झर के समान
सीखा है मैंने यहीं तीर पर सरिता के मृदु सरल गान
सिखलाया है नित यहीं मुझे पंछी ने उड़ना पाँख खोल
है हुआ यहीं क्रीड़ा निकुंज में मेरे जीवन का विहान।"[220]

छायावादी कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। उत्तरछायावाद के कवियों में भी यह प्रवृत्ति स्पष्टत: पायी जाती है। प्रकृति सौंदर्य के चित्रण के लिए नेपाली ने जहाँ एक ओर सटीक उपमानों का प्रयोग किया है, वहीं दूसरी ओर चेतना का आरोप भी किया है। नेपाली की प्रकृति चेतन है और मनुष्य के सुख-दु:ख की सहचरी भी। वे लिखते हैं-

"दिवस-भर चलते-चलते थका
    हो उठा रवि का आनन लाल
क्षितिज वेदी पर कोई खड़ी
    अप्सरा लिए आरती थाल
गा रहे पंछी वंदन गान
    सघन वन-वृक्ष भक्त से झुके
थाल में सौ-सौ पूजन दीप
    सुलगकर एक साथ जल चुके।"[221]

नेपाली की दूसरी काव्यकृति 'पंछी' पूरा का पूरा प्रकृति काव्य ही है, जिसमें प्रेम का आरोपण किया गया है। यहाँ प्रकृति सजीव हो उठती है और एक ही साथ आलंबन और उद्दीपन दोनों ही रूपों में उसके दर्शन हो जाते हैं-

"देखो तो वह प्रिये गगन में फटता जाता घन है,
वन के भीतर से नव-शशि का हँसता आता मन है,

[220] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 61
[221] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27

कितना सुंदर लगता है वह, चाँदी का यौवन है

बोली रानी- “क्यों उससे कम यही तुम्हाना तन है।”[222]

नेपाली की प्रकृतिप्रियता उनके परवर्ती काव्य संग्रहों में और सघन होती जाती है।

उत्तरछायावाद के कवियों ने एक से बढ़कर एक प्रेम गीत लिखे हैं। हरिवंशराय बच्चन तो अपने प्रेम गीतों के लिए लोकप्रिय हैं। नेपाली जी ने भी एक से बढ़कर एक प्रेम गीत लिखे। नेपाली की प्रेम चेतना के विकास में प्रकृति का अहम योगदान है। उनका प्रेम छायावादी कवियों के प्रेम से भिन्न है। प्रकृति की गोद है। उस गोद में बैठकर वे प्रेम के मधुर गान कर रहे हैं। उन्मुक्त, विशाल प्रकृति के प्रांगण में कवि डूबा हुआ है। यहाँ प्रेम की चर्चा के लिए किसी दिन विशेष की जरूरत नहीं है-

“हर रोज प्रेम की चर्चा है, हर घड़ी प्यार की मची धूम,

निर्झर प्रेमी सा गाता है, बादल चिड़ियों से उड़ते हैं,

यह हवा जिधर बह जाती है, ये पेड़ उधर ही मुड़ते हैं

जग में दो दिन तो जीना है, पर यह जीना भी झूम-झूम।”[223]

उत्तरछायावाद के कवियों को यौवन, उत्साह और मस्ती का गायक कहा गया है। वे यौवन और उत्साह में डूबे रहते हैं। उनमें मस्ती छायी रहती है। तभी तो बच्चन कहते हें-

“इस पार प्रिये मधु है तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा!”[224]

नेपाली के काव्य में भी यौवनसुलभ भावनाओं की स्फूर्तिप्रद अभिव्यंजना के साथ-साथ विद्रोह की उद्दाम कविताएँ भी हैं। अपनी ‘मस्ती’ कविता में वे लिखते हैं-

“मुझको तो वे पहचानेंगे जिनकी अपनी आँखें

जो उड़ सकते सारे जग में फैला अपनी पाँखें

---

[222] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 28

[223] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 46

[224] हरिवंशराय ‘बच्चन’ की कविता ‘इस पार उस पार’ शीर्षक से

नस-नस में जिनकी है बिजली तन में खून भरा है
पतझड़ की ऋतु में भी जिनका उपवन गात हरा है
जीने के लिए जगत में, जो आकर मरते हों,
जो मरने के लिए न कुछ भी इधर उधर करते हों।
जिनका जीवन आदि अंत तक यौवन ही यौवन हो
बिना लिए कुछ दान करे सब ऐसा जिनका मन हो।"[225]

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य में उत्तरछायावाद की सभी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति हुई है।

[225] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 79

चतुर्थ अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का समाजशास्त्र

गोपाल सिंह 'नेपाली' एक लोकप्रिय कवि रहे हैं। उन्हें 'गीतों का राजकुमार' कहा जाता था। वे हिन्दी साहित्य के उन विशिष्ट कवियों में से हैं, जिनकी काव्य-मंचों पर धूम रही। उन्होंने अपना काव्यजीवन उस समय शुरू किया, जब छायावाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। उनकी काव्य-प्रतिभा ने बड़े-बड़े कवियों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लिया। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जैसे बड़े कवि उनके प्रशंसकों में शामिल थे। इनकी कविता की लोकप्रियता का आलम यह था कि इन्हें सुनने के लिए लोग घंटों बैठे रह जाते थे और जैसे ही इनका काव्य-पाठ समाप्त होता था, भीड़ छँट जाती थी। इनकी लोकप्रियता में इनकी कविताओं के साथ इनकी अनूठी काव्य-शैली एवं विशिष्ट काव्य-पाठ का विशेष योगदान था। उनकी कविताओं की गूँज अभी भी बनी हुई है। तत्कालीन समय में भारत-चीन युद्ध के दौरान उनकी लिखी गई कविताएँ आज भी प्रासंगिक बनी हुई है। पाकिस्तान के साथ तनावपूर्ण संबंध पर जो उनकी कविताएँ हैं, उन्हें जनता आज भी याद करती है। उनके लिखे प्रेमगीत आज भी पढ़े और सुने जा रहे हैं। उनकी प्रकृतिपरक कविताओं की जो ताजगी है, वह अभी भी बनी हुई है। जब सन् 2011 में उनका जन्म शताब्दी वर्ष मनाया गया तो उन पर नये सिरे से विचार-विमर्श किया गया। कई पत्रिकाओं ने उन पर अपना विशेषांक निकाला, जिसमें रामकुमार कृषक द्वारा संपादित 'अलाव' का विशेषांक बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यू-ट्यूब जैसे सोशल मीडिया पर उनकी कविताओं की मौजूदगी उनकी लोकप्रियता को बनाये रखे हुए हैं। कई बड़े एवं नामचीन गायकों एवं कवियों ने उनकी कविताओं को अपनी आवाज देकर जनता के बीच उनकी लोकप्रियता को बरकरार रखे हुए हैं। उनको दिवंगत हुए 50 वर्ष से ज्यादा हो चुके हैं, लेकिन उनकी लोकप्रियता बनी हुई है। जन्मशताब्दी वर्ष के बाद उनकी काव्य-पुस्तकें पुन: प्रकाशित हुई हैं। उन्हें पुन: स्मरण का प्रयास जारी है।

समाजशास्त्री दृष्टि से कवि की लोकप्रियता का मूल्यांकन करने के लिए समाज की पृष्ठभूमि एवं समाज की रुचि-अरुचि का अध्ययन आवश्यक है। समाज ही कवि की कविता के पाठक एवं श्रोता होते हैं। लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के मुख्यत: दो पक्ष हैं- एक पक्ष आर्थिक है तो दूसरा पक्ष सांस्कृतिक। आर्थिक पक्ष में लोकप्रिय साहित्य के प्रकाशन से लेकर बिक्री तक की आर्थिक प्रक्रिया शामिल है। इसमें मुख्य रूप से तीन बातें शामिल हैं-

i. रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंधों का अध्ययन
ii. रचना का प्रकाशन एवं नैरन्तर्य एवं
iii. रचना पर आलोचकों की प्रतिक्रिया अर्थात् रचना पर आलोचकीय दृष्टिकोण।

4.1 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता : रचना, रचनाकार एवं पाठक

कविता के रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंधों पर विचार करने से पूर्व कविता के निर्मिति के उन सामाजिक मानदंडों की पड़ताल ज्यादा समीचीन है, जिससे कविता अस्तित्व में आती है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध के इस कथन पर विचार करना जरूरी हो जाता है- "किसी भी साहित्य को तीन प्रकार से देखा जाना चाहिए। एक तो वह किन स्रोतों से उद्भूत होता है। अर्थात् किन वास्तविकताओं के फलस्वरूप वह साहित्य उत्पन्न हुआ है। दूसरे, उसका कलात्मक प्रभाव क्या है और तीसरा, उसकी अंत:प्रकृति रूप-रचना कैसी है। इन तीनों प्रश्न को बिना पहले प्रश्न से मिलाये हम दूसरे सवाल का जवाब ही नहीं दे सकते।"[226] रचना जब अस्तित्व में आती है, तो उसका यथार्थ भिन्न होता है। मुश्किल यह होता है कि जिन जीवन मूल्यों एवं वास्तविकताओं से वह रचना अस्तित्व में आई है, जरूरी नहीं है कि उसका यथार्थ चित्रण रचनाकार ने उपस्थित किया हो। यथार्थ के प्रति रचनाकार के दृष्टिकोण में अंतर होता है। वह कहीं यथार्थ को अयथार्थ दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है तो कहीं इसके लिए वह अपनी कल्पना का तो कहीं फैंटेसी का सहारा लेता है। कई बार तो रचना में यथार्थ की पहचान भी मुश्किल होता है, क्योंकि वह अपनी विकृतावस्था में उपस्थित होता है। अत:

[226] मुक्तिबोध रचनावली - संपादक नेमिचन्द्र जैन, पृ.सं. 205

रचना की परिस्थितियों के साथ रचना के कलात्मक प्रभाव एवं उसकी अंत:प्रकृति पर विचार करना ही रचना की सामाजिकता पर विचार करना है।

रचना की लोकप्रियता पर पाठक की अभिरुचि के संबंध पर विचार करते हुए लेविन एल. शूकिंग के साहित्य की लोकप्रियता पर किए गए विचार समीचीन है। लेविन. एल. शूकिंग ने अपने ग्रंथ 'साहित्यिक अभिरुचि का समाजशास्त्र" में साहित्य के विभिन्न वर्गों के पाठकों पर विचार किया है। मैनेजर पाण्डेय ने लेविन एल. शूकिंग को अपने ग्रंथ 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' में उद्धृत किया है- "साहित्य के इतिहास के सामने मुख्य सवाल यह होना चाहिए कि किसी समय में एक राष्ट्र या जाति के विभिन्न वर्गों के लोगों के बीच कौन-सा साहित्य लोकप्रिय था और उसकी लोकप्रियता के क्या कारण थे। इस मुद्दे पर गंभीरतापूर्वक विचारते हुए उन्होंने जिन तीन बिंदुओं को दृष्टिपथ में रखना जरूरी समझा है, वे हैं (1) युग की बौद्धिक चेतना (2) पाठक समुदाय में परिवर्तन (3) पाठक वर्ग के विस्तार से साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन।"[227]

जब हम रचना की लोकप्रियता पर बात करते हैं तो इस संबंध में हमें रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन को भी ध्यान में रखना चाहिए। "प्रसिद्धि भी किसी काल की लोक प्रवृत्ति की प्रतिध्वनि है।"[228] उनके आल्हा खंड (परमाल रासो) की प्रसिद्धि पर दिए गए वक्तव्य को जोड़कर इसे देख सकते हैं। रचना की लोकप्रियता का समाज में लगातार बने रहना उसकी सामाजिक परिस्थितियों एवं उसकी प्रासंगिकता पर भी निर्भर करता है।

जब हम पाठक के समाजशास्त्रीय पहलुओं की चर्चा करते हैं तो रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन स्मरण आता है- "हिन्दी साहित्य का विवेचन करने में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि किसी विशेष समय में लोगों की रुचि विशेष का संचार और पोषण किधर से और किस रूप में हुआ।"[229] भले ही जिस समय की चर्चा उन्होंने की, उस समय पूंजीवाद और व्यावसायिकता का समय नहीं था। लेकिन

---

[227] साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका - मैनेजर पाण्डेय, पृ.सं. 27-28

[228] हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामशुक्ल शुक्ल, प्रथम संस्करण का वक्तव्य, पृ.सं. xvi

[229] हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. xxix

इस वक्तव्य को हम हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धाराओं के कवियों से जोड़कर देख सकते हैं।

पाठक की रुचि-अभिरुचि पर विचार के क्रम में रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन को यहाँ देखना समीचीन होगा, जो उन्होंने रीतिकालीन कविता के संदर्भ में कही थी- "शृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि थी, जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"[230] यहाँ शुक्ल जी रीतिकाल की श्रृंगारिकता को जनता की रुचि से जोड़ देते हैं, लेकिन उनका यह वक्तव्य रीतिकाल के संदर्भ को ठीक से निरूपित नहीं करता। कारण यह है कि रीतिकाल की श्रृंगारिकता जनता की रुचि न होकर राजाओं-महाराजाओं एवं सामंतों की कुरुचि थी। पाठक की रुचि से साहित्य प्रभावित होता है, जो साहित्य समाज में पढ़ा जा रहा है, वैसी साहित्य की विपुल मात्रा में रचना होना इसका प्रमाण है।

रचना, रचनाकार और पाठक के अंतर्संबंधों को जानने के लिए रचना के वर्गाधार को जानना जरूरी है। कविता आसमान से उल्का की भांति नहीं टपकती। वह अपने समय व समाज के किसी न किसी हिस्से की मानसिकता की उपज होती है। समय व समाज के मानस की अभिव्यक्ति उस कविता या साहित्य में दिखती है जिसका वह प्रतिनिधित्व करती है। कविता के वर्गाधार को समझने के लिए हम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उस वक्तव्य को देखना होगा, जो उन्होंने रीतिकालीन कविता के वर्गाधार को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि रीतिकालीन समाज दो श्रेणियों में बँटा था- एक, जिसमें राजा, रईस, नवाब आदि आते थे और दूसरी श्रेणी में किसान और खेती से जुड़ी हुई जातियाँ जैसे लोहार, कुम्हार, बढ़ई, चर्मकार आदि थे। पहले श्रेणी के लोग भोक्ता वर्ग के सदस्य थे और दूसरे श्रेणी के लोग उत्पादन वर्ग के। चित्रकार, कवि, नर्तक, संगीतकार एवं अन्य कलावंत तीसरे वर्ग के सदस्य थे। यह बिचौलियों का वर्ग था। इस वर्ग के लोग आते तो थे उत्पादक वर्ग से, लेकिन ये राजाओं, रईसों, नवाबों का मनोविनोद करके जीविकोपार्जन करते थे। इन्हें अपने जिन आश्रयदाताओं का

---

[230] हिन्दी साहित्य का इतिहास - रामचंद्र शुक्ल, पृ.सं. 164

मनोविनोद करना था, उनके जीवन एवं रुचि से इनका परिचय नहीं था। इसके लिए तो इन्हें पुस्तकीय ज्ञान की जरूरत थी। राजाओं की रुचि कामसुख में, तरह-तरह की नायिकाओं में, शब्द कौशल और उक्ति वैचित्र्य में था। हजारी प्रसाद द्विवेदी का मूल वक्तव्य देखिए- "इस समय आर्थिक दृष्टि से समाज में दो श्रेणियाँ हो गयीं- एक तो उत्पादक वर्ग, जिसमें प्रधान रूप से किसान और किसानी से संबंध रखने वाली जातियां बढ़ई, लोहार, कहार, जुलाहा इत्यादि थीं और दूसरा दल भोक्ता (राजा, रईस, नवाब आदि) या भोक्तृत्व का मददगार था। मुगल शासन के अंतिम दिनों में भारतीय समाज के ये ही दो आर्थिक वर्ग थे- राजा, सामंत, मनसबदार आदि भोक्ता वर्ग और कृषकों और श्रमिकों का उत्पादक वर्ग। ..... इन दो वर्गों के मध्य में कवियों, चित्रकारों, संगीतज्ञों आदि कलावन्तों का वर्ग था जो प्राय: उत्पादक वर्ग से उत्पन्न होता था, किंतु भोक्ता वर्ग की स्तुति और मनोविनोदन करके जीविका-निर्वाह करता था। जिस प्रकार के मालिकों का मनोरंजन इन कवियों और कलावन्तों को करना पड़ता था, उस वर्ग को संतुष्ट करने के लिए जिस प्रकार के जीवन से परिचित होना आवश्यक है, वह इन कवियों को प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात नहीं था। उसके लिए उन्हें पुस्तक की विद्या की आवश्यकता थी। दो मूलों से यह ज्ञान प्राप्त हो सकता था। 'रति रहस्य' आदि कामशास्त्रीय ग्रंथों से और 'दशरूपक', 'रसमंजरी' आदि नायिका-भेद के वर्णन करने वाले ग्रंथों से। फिर उक्ति वैचित्र्य के लिए अलंकारशास्त्र के अन्य अंगों की आवश्यकता थी।"[231] यही कारण है कि इस समय के रचनाकार अपनी दरबारी जरूरतों के कारण एक ओर अपने को उत्तरकालीन संस्कृत साहित्य से जोड़ते हैं, तो दूसरी ओर अपने आश्रयदाताओं की रुचि के अनुरूप साहित्य रचते हैं।

कविता की रचना की बात करें तो हमें देखना होगा कि उस कविता की संवेदना के निर्माण में किन परिस्थितियों, जीवन-मूल्यों व कारकों का योगदान रहा है। कार्य-कारण संबंध से कविता का जो स्वरूप बना है, उसकी पड़ताल के लिए हमें इसके कई आयामों को समझना होगा। रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व को स्वीकार किया जाता है। कविता की प्रकृति को आम तौर पर अपेक्षाकृत व्यक्तिनिष्ठ

[231] हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 174

ही माना जाता है। रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व की अनदेखी नहीं कर सकते। अज्ञेय ने रचना को रचनाकार के व्यक्तित्व से अलग कर देखने की सिफारिश की है। 'शेखर एक जीवनी' में अज्ञेय ने लिखा है- "मैंने 'शेखर' के आरंभ के खण्डों में घटनास्थल अपने ही जीवन से चुने हैं, फिर क्रमशः बढ़ते हुए शेखर का जीवन और अनुभूति क्षेत्र मेरे जीवन और अनुभूति-क्षेत्र से अलग चला गया है, यहाँ तक कि मैंने स्वयं अनुभव किया है कि मैं एक स्वतंत्र व्यक्ति की प्रगति का दर्शक और इतिहासकार हूँ, उसके जीवन पर मेरा किसी तरह का वश नहीं रहा।"[232] कहने का अर्थ यह है कि रचना जीवनानुभूति से प्रभावित होती है, लेकिन रचना का एक स्वतंत्र अस्तित्व भी होता है। साहित्य का समाजशास्त्र रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व को सामाजिकता में देखता है। इसलिए रचना में रचनाकार का सामाजिक परिदृश्य भी जुड़ जाता है। सामाजिक परिदृश्य से जोड़कर ही रचना की सामाजिकता को देखा जा सकता है।

रचना का एक छोर पाठक से जुड़ा होता है। इसलिए साहित्य के समाजशास्त्र में पाठक की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इसलिए साहित्य के समाजशास्त्र में पाठक की सामाजिकता के साथ पाठक की मानसिकता को जोड़कर देखा जाता है। पाठक की सामाजिकता एवं उसकी मानसिकता को साथ रखकर देखने से ही पाठक का सामाजिक परिदृश्य उभरकर सामने आता है।

रचनाकार एवं पाठक की सामाजिक मनोभूमि से जुड़कर ही रचना अस्तित्व में आती है। इसलिए रचना की सामाजिक मनोभूमि से हम उस समाज की सामाजिक संरचनाओं को समझ सकते हैं। कविता में समाज उस रूप में उपस्थित नहीं होता है जैसा कि अन्य गद्य विधाओं में होता है। यद्यपि महाकाव्य जैसी रचनाओं में पूरा अवकाश होता है, जहाँ समाज की अभिव्यक्ति की जा सके, लेकिन मुक्तक जैसी रचनाओं में वह अवकाश कम ही होता है।

रचनाकार का व्यक्तित्व समाज की परिस्थितियों एवं संरचनाओं से प्रभावित होता है। साथ ही रचनाकार अपने तत्कालीन समय के रचनाकारों से भी प्रभावित होता है। तत्कालीन समय में घटित हो

---

[232] शेखर : एक जीवनी (भाग एक) - अज्ञेय, पृ.सं. viii

रही घटनाएँ भी उसे प्रभावित करती हैं। अपने समय के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के व्यक्तित्व एवं विचारों की छाप से भी वह अछूता नहीं रहता। यदि किसी रचनाकार का आदर्श कोई क्लासिक रचनाकार रहा है या कोई क्लासिक कृति तो उसका प्रभाव भी उसकी रचनाओं में दिखेगा।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने के लिए हमें उनकी रचनाओं के साथ उनके व्यक्तित्व को देखना होगा। साथ ही तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों पर भी विचार करना होगा। गाँधी, नेहरू जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के विचारों एवं उनके व्यक्तित्व की छाप उनकी कविताओं में किस रूप में है, इसकी पड़ताल भी आवश्यक है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' जब कविता की रचना की ओर अग्रसर हुए, वह समय छायावाद के चरमोत्कर्ष का था। इसलिए उनकी आरंभिक कविताओं पर छायावाद का असर है। लेकिन वे जल्द ही उसे अस्वीकार कर देते हैं और कहते हैं-

"ओ युगान्तर, आ जल्दी अब खोल, खोल मेरा बंधन
बँधा हुआ इन जंजीरों से तड़प रहा कब से जीवन।"[233]

'उमंग' उनका पहला 'काव्य-संग्रह' है। इस काव्य संग्रह की कविताओं पर यदि छायावाद का असर है तो उससे मुक्त होने की छटपटाहट भी। उन्होंने आगे चलकर अपनी पहचान एक अलग स्वतंत्र काव्यधारा में बनायी जिसे हम राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के नाम से जानते हैं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' का जीवन अभाव एवं जीविकोपार्जन के लिए अंतहीन संघर्ष की गाथा है। अपने अभावग्रस्त जीवन के संबंध में 'रागिनी' के 'स्वर संधान' में लिखा है- "गरीबी बड़ी प्यारी चीज है। वह भी लड़कपन या बुढ़ापे में नहीं, भरी जवानी में। लड़कपन में यह संगिनी मिली, तो बाल हठ कुंठित हो जाता है। बुढ़ापे में आई तो सर्द आहें जारी होती हैं, पर कहीं यौवन काल में मिल गई तो भरे हुए सीने की कठोर परीक्षा रहती है। इसलिए मामला शीघ्र समाप्त नहीं होता। इसी राह के हम

---

[233] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 18

मुसाफिर हैं।"[234] इसी गरीबी और अभाव से जूझते हुए वे निरंतर काव्य-सृजन में रत रहे। इन अभावों और दु:खों की अभिव्यक्ति उनके काव्य में जगह-जगह हुई है।

"खा-खा के मरती है दुनिया
कितने बे खाए जीते हैं।"[235]

एक रचनाकार के लिए काव्य-रचना से अपना जीवन एवं परिवार चलाना सहज नहीं है। गोपाल सिंह 'नेपाली' के लिए भी यह आसान नहीं था। साथ ही जब कलम की स्वाधीनता एवं अपने स्वाभिमान की बात हो। वे कहीं समझौता नहीं करते। वे अपने परिश्रम और ईमानदारी पर भरोसा करते रहे। वे अवसरवादिता और समझौतापरस्ती से ऊबकर लिखते हैं-

"अफसोस नहीं इसका हमको, हम जीवन में कुछ कर न सके
झोलियां किसी की भर न सके, संताप किसी का हर न सके
अपने प्रति सच्चा रहने का जीवन भर हमने यत्न किया
देखा-देखी हम जी न सके, देखा-देखी हम मर न सके।"[236]

गोपाल सिंह 'नेपाली' की आस्था समानता व लोकतंत्र में थी। वे जीवन भर स्वाधीनता, समानता व लोकतंत्र के आदेशों की रक्षा करते रहे। वे राजनीति व कलम की सांठ-गांठ के खिलाफ थे। वे चाहते थे कि कवि जनता की आवाज बने। वे जीवन के अंत समय तक जनता से संवाद करते रहे। उनकी रचनाओं की संवेदना इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती रहती है। कवि-कर्म की ईमानदारी की अभिव्यक्ति को यहाँ देखा जा सकता है-

"तुझ सा लहरों में बह लेता / तो मैं भी सत्ता गह लेता
ईमान बेचता चलता तो / मैं भी महलों में रह लेता।"[237]

---

[234] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 6
[235] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 34
[236] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 124
[237] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75

कहने का तात्पर्य यह है कि एक कवि को, एक रचनाकार को व्यक्तिगत स्तर पर या सामाजिक स्तर पर जिन राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों ने प्रभावित किया होता है या जिनका उस पर प्रभाव होता है, उन सबका प्रभाव उसकी काव्य-संवेदना के निर्माण में होता है। उन्हीं की अभिव्यक्ति वह अपनी रचनाओं के जरिए करता है। गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य पर छायावादी परिस्थितियों का एक तरफ प्रभाव है तो दूसरी राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों का भी। प्रकृति की सरल, सरस व मधुर कविताएँ जहाँ एक तरफ उनकी व्यक्तिगत रुचि से अभिव्यक्ति पाती है तो दूसरी तरफ छायावाद में प्रकृति की उपस्थिति का प्रभाव भी है।

उनकी प्रेम कविताएँ उनकी प्रेम की गहरी समझ एवं समर्पण से अनुप्राणित रचनाएँ हैं। उनके काव्य में उपस्थित प्रेम की सरलता सहज ही पाठकों को आकर्षित कर लेती है। उनके प्रेम में वायवीयता व जटिलता नहीं है। वह हृदय की गहरी संवेदना से उपजी हैं।

> "मेरे प्राण मिलन के भूखे / ये आँखें दर्शन की प्यासी
>
> चलती रहीं घटाएँ काली / अंबर में प्रिय की छाया सी।"[238]

गोपाल सिंह की कविताओं के पाठकों को हम समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो उनकी कविताएँ अपनी विषयवस्तु व सहजता के कारण लोगों के हृदय से जुड़ने की क्षमता रखती हैं। उनके पाठक, पाठक बाद में बने। पहले वे उनकी कविताओं के श्रोता थे। यही कारण है कि नेपाली के श्रोता अधिक हैं, पाठक कम हैं। उनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण यही था कि वे सर्वथा मौलिक एवं विशिष्ट काव्य शैली के साथ माधुर्यता से परिपूर्ण काव्य पाठ किया करते थे, जो श्रोताओं के हृदय से जुड़ता था। इसी कारण काव्य मंचों पर उनकी लोकप्रियता हमेशा रही। काव्य-सम्मेलनों में बार-बार उन्हें बुलाया जाता और श्रोताओं द्वारा बार-बार उनके काव्य-पाठ के लिए आग्रह किया जाता। आज भी उनको सुना ज्यादा जा रहा है, पढ़ा कम जा रहा है। सोशल नेटवर्किंग साइट जैसे यू-ट्यूब पर उनकी कई कविताएँ मौजूद हैं। उनकी लोकप्रिय कविताओं को कई बड़े गायकों ने अपनी आवाज दी है, जैसे

---

[238] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14

शारदा सिन्हा। कई काव्यमंचीय कवियों द्वारा उनकी कविताओं का पाठ आज भी किया जा रहा है। उनको याद करने के लिए नेपाली फाउंडेशन का निर्माण किया गया है, जो हर वर्ष उनकी कविताओं को जनता के बीच लाकर उनसे संवाद स्थापित करते हैं।

कविताओं की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझने के लिए पाठकों के वर्गाधार को भी समझना होगा। गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता जनता के हर तबके से संवाद करती है। समाज के निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक सभी उनकी कविताओं के प्रशंसक रहे। उनकी कविताएँ भाषा की परिधि को लांघकर गैर-हिन्दी लोगों तक भी पहुँची। शोषित-पीड़ित जनता को उनकी कविताओं में अपना जीवन दिखाई देता था। दिनकर ने कहा था- "शांति नहीं तब तक, जब तक सुख भाग न नर का सम हो।"[239] नेपाली भी कहते हैं-

"मकान हो, मनुष्य पाँव तो पसार रह सके
कि वस्त्र हो कि जिंदगी सजा-सँवार रह सके
स्वतंत्रता रहे दि दर्द लिख सके कि कह सके
विधान हो कि राज भी कभी नहीं सके सता
मनुष्य मांगता यही, यही मनुष्य मानता
कि हो समाज राज में मनुष्य की समानता।"[240]

नेपाली की कविताओं का मजबूत पक्ष है, उनका वर्गाधार। उनकी कविताओं को सुनने गाँव के मजदूर से लेकर समाज के पढ़े-लिखे लोग तक लालायित रहते थे। कई घंटे वे सिर्फ उनकी कविताओं को सुनने के लिए बैठे रहते। मीलों का सफर तय करके वे लोग नेपाली को सुनने आते। लोक-जीवन से नेपाली का जुड़ाव ही उनके वर्गाधार का आधार रहा है। उन्होंने कहा भी है-

"यह गीतों का है देश, यहाँ चरवाहा बिरहा गाता है।
सुख हो, दु:ख हो, सौंदर्य यहां गीतों में गाया जाता है।"[241]

---

[239] कुरूक्षेत्र - रामधारी सिंह 'दिनकर' के तृतीय सर्ग से
[240] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 78
[241] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 96

4.2 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता : आलोचकीय दृष्टिकोण

गोपाल सिंह 'नेपाली' उत्तरछायावाद के एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उत्तरछायावाद के जिन कवियों ने कविता विधा को जनता का कंठहार बनाया, उनमें गोपाल सिंह 'नेपाली' भी एक थे। उस दौर के लोकप्रिय कवियों में से एक गोपाल सिंह 'नेपाली' अपनी अनूठी काव्य-शैली एवं विशिष्ट काव्यपाठ के कारण लोगों की जुबान पर थे। गोपाल सिंह 'नेपाली' की चर्चा किए बिना उस दौर के लोकप्रिय कवि और लोकप्रिय कविता की चर्चा बेमानी है। अपनी तमाम लोकप्रियता के बावजूद वे हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों एवं आलोचकों की उपेक्षा का शिकार रहे।

किसी कृति को पाठक तक पहुँचाने में अहम योगदान आलोचक का होता है, क्योंकि साहित्य को पहचान दिलाने का दायित्व आलोचना और आलोचक वर्ग पर होता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में लिखा है- "कवि का काम यदि दुनिया में ईश्वर के कामों को न्यायोचित ठहराना है तो साहित्य के इतिहासकार का काम है कवि के कामों को साहित्येतिहास की विकास प्रक्रिया में न्यायोचित दिखा सकना। आचार्य शुक्ल ने इसे कहा था, इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना। यानी कवि, यदि अपने इर्द-गिर्द के संसार और जीवन को देख-परख कर उसे अर्थ देता है तो आलोचक और इतिहासकार कवि की इस रचना में अर्थ का संधान करता है और उसे संवर्द्धित करता है।"[242] पर दुर्भाग्य से हिन्दी साहित्य के आलोचकों एवं साहित्येतिहासकारों ने अपने दायित्व का निर्वहन नहीं किया। जरूरी नहीं कि आलोचक वर्ग का साथ किसी कृति या कवि को मिले, तब ही वह लोकप्रिय और श्रेष्ठ बने। कुछ कृतियाँ एवं कुछ कवि ऐसे होते हैं जिन्हें अपनी पहचान एवं स्थान के लिए आलोचकों का बाट नहीं जोहना पड़ता। गोपाल सिंह 'नेपाली' का कृतित्त्वएवं व्यक्तित्व कुछ ऐसा ही रहा है।

आलोचक समाज की संरचना की गंभीर समझ रखता है। वह किसी कृति या कवि का मूल्यांकन समाज की इन्हीं संरचनाओं को ध्यान में रखकर करता है। समाज की संरचना की गंभीर

[242] हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.सं. 25

समझ आलोचक को महत्त्वपूर्ण बनाती है तो उसके साथ उनके आलोच्य कर्म को भी। गंभीर आलोचक में आलोचकीय ईमानदारी और नैतिकता होती है। आलोचकीय ईमानदारी और नैतिकता को ध्यान में रखकर किसी कृति या कवि का विशद विवेचन-विश्लेषण किया जा सकता है। इसके अभाव में की गई आलोचना, आलोचना को एकांगी ही बनाएगी।

किसी कवि की कृति की लोकप्रियता और श्रेष्ठता उसमें निहित मूल्य बोध के कारण होती है। कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता उनके जीवनानुभव से संपृक्त है। उनमें प्रकृति का सहज आकर्षण है तो जीवन का आनंद और उल्लास भी। उनमें देश के प्रति जो असीम प्रेम है, वह उनकी कविताओं में भी अभिव्यक्ति पाता है। उनकी कविताओं में यदि स्वाधीनता स्वतंत्रता आंदोलन का चित्रण है तो कृषक, मजदूरों, देहातों और मजदूरों की समस्या का भी।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का मूल्यांकन करने के लिए आलोचकीय दृष्टि से उनकी मंचीय लोकप्रियता की पड़ताल भी आवश्यक है। फिल्मी दुनिया में उनके पदार्पण को भी दृष्टि में रखकर ही उनका सम्यक मूल्यांकन किया जा सकेगा। सन् 1934 में उनकी प्रथम कृति 'उमंग' का प्रकाशन होता है। उस कृति के लिए 'स्नेह शब्द' प्रकृति के अनुपम चितेरे कवि सुमित्रानंदन पंत लिखते हैं। अपनी प्रथम कृति के प्रकाशन के समय तक वे साहित्य जगत में अपनी पहचान बना चुके थे। उनके प्रशंसकों में सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर 'प्रसाद', प्रेमचंद जैसे सरीखे रचनाकार थे। सन् 1934 में ही उनकी दूसरी कृति 'पंछी' का भी प्रकाशन होता है। इस कृति के लिए दो शब्द लिखते हैं - हिन्दी के महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।

गोपाल सिंह 'नेपाली' के जीवन का एक पक्ष काव्य-मंच को समर्पित रहा है तो दूसरा पक्ष साहित्य जगत से। और उनके जीवन का तीसरा पक्ष फिल्मी दुनिया से जुड़ा हुआ है। उनकी लोकप्रियता को इन्हीं आयामों में देखने की जरूरत है। काव्य मंच पर उनकी लोकप्रियता अपने चरम पर रही है। काव्य मंच पर वे ऐसे कवि रहे हैं, जो महफिल की शान हुआ करते थे। अपनी अनूठी काव्य शैली एवं विशिष्ट काव्य पाठ के कारण उन्होंने मंचीय लोकप्रियता के नए आयाम विकसित किए।

नेपाली जी की मंचीय लोकप्रियता को समझने के लिए नंदकिशोर नंदन जी के वक्तव्य को देखना महत्त्वपूर्ण होगा। उन्होंने लिखा है- “तब मैं 1956 में महज आठवीं जमात का विद्यार्थी था। होली से चार दिन पूर्व मुजफ्फरपुर में एक कवि सम्मेलन था। मंच के पीछे संपूर्ण भारत का मानचित्र और उसके बीच में भगवान बुद्ध की ध्यानमग्न मुद्रा वाली तस्वीर बनी थी। उसी की पृष्ठभूमि में बीचों-बीच नेपाली जी बैठे थे और उनके एक बगल में आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री भी थे। कवि सम्मेलन रात्रि के नौ बजे प्रारंभ हुआ तो एक-दो नवोदित कवियों के बाद शास्त्री जी ने ‘किसने बांसुरी बजायी’ गीत सस्वर पढ़ा। उसके बाद नेपाली का काव्य पाठ ‘तीस करोड़ बसे धरती की हरी चदरिया रंग दे रे’ से प्रारंभ हुआ और भोर के चार बजे ‘बाबुल तुम बगिया के तरूवर हम तरूवर की चिड़ियां रे’ से समाप्त हुआ। तो दूर श्रोता की आँखों से आँसू छलक रहे थे। उन्होंने दस से बारह कविताएँ सुनाई और कवि आचार्य शास्त्री से लेकर सभी श्रोता भाव-विभोर होकर सुनते रहे थे।”[243] उनके मंचीय लोकप्रियता से जुड़ा हुआ एक और प्रसंग द्रष्टव्य है। सन् 1960 में मुजफ्फरपुर में एक हाई स्कूल का हीरक जयंती मनाया जा रहा था। उस हीरक जयंती समारोह के अवसर पर एक विशाल कवि सम्मेलन क आयोजन किया गया, जिसमें नेपाली, त्रिलोचन, बेधड़क बनारसी जैसे कवि आमंत्रित किए गए थे। स्कूल के विशाल प्रांगण में करीब दस हजार का जन समूह था, जो सिर्फ नेपाली को सुनने और देखने को अधीर था। “उन्होंने जब ‘हिमालय ने पुकारा’ शीर्षक कविता से काव्य-पाठ आरंभ किया तो अंतत: वह भोर के लगभग तीन बजे समाप्त हुआ। उनकी कविताओं ने श्रोताओं पर ऐसा जादुई प्रभाव छोड़ा कि दूसरे दिन सुबह इसकी चर्चा परिक्रम सदन में ठहरे बिहार के तत्कालीन राज्यपाल बाद में राष्ट्रपति पद सुशोभित करने वाले प्रख्यात शिक्षाविद् डॉ. जाकिर हुसैन साहब तक पहुँच गई।”[244] लेकिन स्वाभिमानी इतने थे कि इन्होंने डॉ. जाकिर हुसैन साहब के पास काव्यपाठ ले जाना अस्वीकार कर दिया और उनसे आग्रह किया कि वे तिलक मैदान में पधारें। डॉ. जाकिर हुसैन ने न सिर्फ उनके आमंत्रण को स्वीकार किया, बल्कि उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। फिल्मी दुनिया में नेपाली

[243] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 166-167

[244] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 167

जी का प्रवेश भी उनकी मंचीय लोकप्रियता का ही परिणाम था। कालिदास समारोह में उन्होंने श्रोताओं को ऐसे मंत्रमुग्ध कर दिया कि अगले दिन अखबारों की सुर्खियों में वे ही छाये रहे। फलस्वरूप फिल्मिस्तान कंपनी के शशिधर मुखर्जी और निदेशक पी.एल. संतोषी ने उनसे फिल्मों में गीत लिखने का आग्रह किया और उन्होंने उस आग्रह को स्वीकार कर फिल्मों के लिए गीत लिखना शुरू किया। गोपाल सिंह 'नेपाली' को मंचीय लोकप्रियता काफी मिली। उनकी मंचीय लोकप्रियता से कोई भी ईर्ष्या कर सकता था। जैसी मंचीय लोकप्रियता उनको मिली, वैसी लोकप्रियता शायद ही किसी अन्य कवि को मिली। बच्चन, दिनकर, नीरज जैसे कवि-गीतकार ही मंचीय लोकप्रियता में उनके समकक्ष ठहरते हैं। काव्य-मंचों पर उनकी अपार लोकप्रियता उनकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही।

मंचीय लोकप्रियता और फिल्मी दुनिया से जुड़े रहने के कारण आलोचकों ने उन्हें गंभीरता से नहीं लिया। फिल्मी दुनिया से जुड़े रहने के कारण उन पर तीखे हमले किए गए। व्यंग्य-बाणों की वर्षा उनपर की गई। नरेन्द्र तुली साहब ने तो एक 'कवि का पतन' शीर्षक लेख लिख डाला उन पर। पर महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि मंचीय लोकप्रियता और फिल्मों से जुड़े रहने के कारण क्या उनका सम्यक मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए। क्यों हिन्दी साहित्य के आलोचकों एवं साहित्यकारों ने उनकी सम्यक आलोचना नहीं की। मंचीय लोकप्रियता के कारण क्या उनके द्वारा लिखित साहित्य का मूल्य या महत्त्व नहीं है। क्या मंचीय लोकप्रियता के कारण कोई साहित्यकार, साहित्य कोटि से खारिज किया जा सकता है? क्या फिल्मों से जुड़ा साहित्यकार सतही रचनाकार हो जाता है?

जन मानस में गोपाल सिंह 'नेपाली' की छवि एक अनूठी काव्य शैली एवं मधुर कंठ से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध करने वाले कवि-गीतकार की रही है। जनता का अपार प्यार उन्हें मिला। उनकी गायन शैली की विलक्षणता ने श्रोताओं को पाठक भी बनाया। सामान्य जनता को साहित्य से जोड़ने का काम भी किया। काव्य-मंचों का स्तर ऊँचा किया। पाठ्यक्रमों में उनकी कई कविताएँ शामिल की

गई, जो इस बात का प्रमाण है कि उन्हें लोकप्रिय कवि कहकर साहित्य से खारिज नहीं किया जा सकता।

गोपाल सिंह 'नेपाली' के समकालीन हरिवंश राय 'बच्चन' और रामधारी सिंह 'दिनकर' मंचों पर लोकप्रिय थे तो साहित्य में भी। हर इतिहासकार और आलोचक के लिए ये दोनों कवि अपरिहार्य और श्रेष्ठ बने रहे। तो फिर क्या कारण है कि गोपाल सिंह 'नेपाली' जीवन भर और आज भी साहित्य के इतिहासकारों और आलोचकों के लिए उपेक्षित और अछूत बने हुए हैं? साहित्य में उनकी अस्वीकार्यता के कारण क्या हैं? बच्चन ने स्वाधीनता आंदोलन के दौर में 'मधुशाला' लिखी और उसे काव्य मंचों पर ले गये। जन सरोकारों से उन्होंने अपना कोई संबंध नहीं रखा। जबकि नेपाली अपने आरंभिक जीवन से ही जन-सरोकार रखते हैं, मजदूरों और किसानों को अपनी कविता में स्थान देते हैं। स्वाधीनता आंदोलन से अनुप्राणित रचनाएँ रचते हैं। प्रकृति प्रेम उनकी कविताओं की एक विशिष्टता है ही। फिर भी साहित्य के इतिहासकार और आलोचक उनको उपेक्षित रख कर हालावाद के गायक हरिवंश राय बच्चन को सर-आँखों बिठाते हैं। आपत्ति हरिवंश राय बच्चन को लेकर नहीं है, बल्कि आलोचकों एवं साहित्येतिहासकारों के दोहरे मानदंड को लेकर है। दोहरे मानदंडों के कारण ही रामधारी सिंह 'दिनकर' को आलोचकों एवं साहित्येतिहारों ने हाथों-हाथ लिया और नेपाली की तरफ देखा तक नहीं।

'कविता के नए प्रतिमान' में नामवर सिंह ने ईमानदारी और प्रामाणिक अनुभूति की चर्चा की है। इस क्रम में वे डब्ल्यू.डब्ल्यू. रॉब्सन को उद्धृत करते हैं तथा काव्य के मूल्यांकन के लिए कहते हैं कि- "कोई अपरिहार्यता ही थी जिसके कारण बार-बार रचनाकारों ने ईमानदारी का सहारा लिया, जान में चाहे अनजान में। इसके अतिरिक्त ईमानदारी केवल नैतिक मूल्य होने मात्र से काव्य के मूल्यांकन के लिए अप्रासंगिक नहीं हो जाती। काव्य कृति आखिर मानव-कृति है, शुद्ध प्रकृति नहीं। मानव-कृति होने के नातेकाव्य-कृति किसी-न-किसी मानव मूल्य को व्यक्त करती है, इसलिए उसके मूल्यांकन के लिए अपनाई गई कोई भी मूल्य-प्रणाली मानव-मूल्यों के दायरे से बाहर नहीं सकती। मूल्य-बोधक

कोई भी शब्द मानव-कृतित्त्वअथवा मानवीयता से रिक्त नहीं हो सकता, चाहे वह ऊपर से देखने पर नितांत काव्य-क्षेत्रीय मूल्य ही क्यों न प्रतीत हो।"[245] इस काव्य-मूल्यांकन के निकष से किसी को आपत्ति नहीं है। फिर ऐसा वे व्यावहारिक आलोचना में क्यों नहीं करते। वे गोपाल सिंह नेपाली की उपेक्षा क्यों करते हैं? जबकि केदारनाथ सिंह अपने संस्मरण में नेपाली की चर्चा करते हुए कहते हैं कि- "उन दिनों बनारस के माहौल में उनका नाम गूँज रहा था- क्योंकि कुछ ही समय पूर्व वे बनारस के एक कवि-सम्मेलन में आए थे और वहाँ के पूरे साहित्यिक माहौल पर छा गये थे।"[246] आगे 'तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो' की चर्चा करते हुए कहते हैं- "यह गीत इतना लोकप्रिय हुआ था कि उस समय बनारस के अनेक जाने-माने गीतकारों का प्रिय गीत बन गया था। जिनका प्रिय गीत यह बना था, उनमें नामवर जी भी थे।"[247] जब नामवर सिंह को नेपाली के गीत प्रिय थे तो फिर उस पर लिखा क्यों नहीं?

आलोचक रामचन्द्र शुक्ल हों या रामविलास शर्मा या नामवर सिंह- किसी ने गोपाल सिंह 'नेपाली' का सम्यक मूल्यांकन नहीं किया। हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचकों ने नेपाली के प्रति ऐसी उपेक्षा क्यों बरती? क्या हिन्दी आलोचना की अभिजात्यता ने उन्हें ऐसा नहीं करने दिया? जिस आलोचकीय ईमानदारी और नैतिकता की बात ये आलोचक करते रहे हैं, क्या उन्होंने स्वयं उसका पालन किया? क्या गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता साहित्य से खारिज करने लायक है, जो इन्होंने उसे उपेक्षित रखा? आखिर गोपाल सिंह 'नेपाली' को लेकर दोहरा मानदंड क्यों?

गोपाल सिंह 'नेपाली' के समय ही प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का दौर आया। प्रगतिवादी साहित्यकारों एवं आलोचकों ने भी नेपाली के साथ न्याय नहीं किया। कहने को तो वे प्रगतिशील और आधुनिक थे। क्या प्रगतिशील खेमेबाजी से नहीं जुड़ने के कारण उनके साथ न्याय नहीं किया गया? भले ही वह अपने को घोषित रूप से प्रगतिशील कवि नहीं कहे। लेकिन वे किसी भी प्रगतिशील कवि

---

[245] कविता के नए प्रतिमान - नामवर सिंह, पृ.सं. 193
[246] अलाव - नेपाली जन्मशती विशेषांक, पृ.सं. 170
[247] अलाव - नेपाली जन्मशती विशेषांक, पृ.सं. 170

से कमतर नहीं रहे हैं। अपने प्रारंभिक जीवन से ही वे प्रगतिशील मूल्यों को लेकर रचनारत रहे। शोषण से मुक्ति की लड़ाई में वे भी नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, त्रिलोचन और धूमिल जैसे कवियों की पंक्ति में स्थान पाने योग्य हैं। फिर भी प्रगतिशील आलोचकों ने उन्हें उपेक्षित ही रखा। जिस जनता के साहित्य की बात प्रगतिशील आलोचक करते रहे, उस पर ईमानदारी से अमल भी किया होता तो वे नेपाली के साथ खड़े होते।

प्रयोगवाद और नई कविता के पुरोधा अज्ञेय साहित्य में वैयक्तिकता को स्थापित करते रहे। उनके प्रयोगवाद ने व्यक्तिवाद और रूपवाद के औजार से प्रगतिवाद के जनसरोकार को छिन्न-भिन्न कर दिया। उन्होंने कविता को वैयक्तिकता से जोड़ दिया। जो कविता व्यापक जन समूह को लेकर चल रही थी, वह अब नितांत वैयक्तिक हो गई।

जो कविता शोषण से मुक्ति को लक्ष्य लेकर चल रही थी, वह प्रयोग के अंधड़ में फंस गई। अज्ञेय ने तो गीत विधा को मृत विधा ही घोषित कर दिया था। फिर गोपाल सिंह 'नेपाली' को लेकर उनसे उम्मीद भी नहीं की जा सकती थी।

नामवर सिंह के प्रस्ताव पर सन् 1947 और उसके पश्चात लिखे गये गीतों के संकलन की एक योजना बनी। तत्पश्चात सन् 1969 ई. में चन्द्रदेव सिंह ने 'पाँच जोड़ बाँसुरी' नाम से पाँच पीढ़ियों के गीतकारों का एक संकलन तैयार किया, जिसे उन्होंने हरिवंश राय बच्चन को समर्पित किया। इस संकलन में उस समय के सबसे लोकप्रिय कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' को स्थान नहीं दिया गया, जबकि सम्पादक चन्द्रदेव सिंह का दावा पाँच पीढ़ियों के गीतकारों का प्रतिनिधित्व देने का था। यही नहीं उसकी भूमिका में उन्होंने नेपाली पर तीखे हमले किए। उन्होंने लिखा है- ''हिन्दी गीत 'मंचगान' बनकर रह गया था। गीत, चमत्कारिक शब्दावली में कण्ठ-माधुर्य के अतिरिक्त और भी कुछ है, हो सकता है- की चिन्ता 'बच्चन' की परंपरा के गीत-कवियों को एकदम नहीं थी। अब गीत 'निशा-निमंत्रण' तथा 'मिलन-यामिनी' के गीतों की तरह कुछेक पदों में एक मन:स्थिति को प्रकट कर देने का साधन नहीं था, बल्कि नगरिया डुबोयी, गगरिया डुबोयी, बजरिया डुबोयी, बदरिया डुबोयी, अंचरिया

डुबोयी, किनरिया डुबोयी के तुकों में तब तक डुबाते जाने का विश्वासी था जब तक स्वयं न डूब जाए।"[248] चन्द्रदेव सिंह ने इन तुकों का उल्लेख कर नेपाली जैसे कवियों पर गीत को डुबोने का आरोप लगाया है। जबकि कई नवगीतकारों ने ऐसे प्रयोग किए हैं, वहाँ उनकी मौलिकता मानकर उनकी प्रशंसा की गई है। "उदाहरण के लिए कुछ गीतों से पंक्तियाँ देखें- कौन उड़ाले जाय सपनवां कौन महलिया ढाये (रामदरश मिश्र), आँचल चुनरिया के जादू सा फेर गए (नईम), 'देखा न सागर, दूर है नदिया दुअरिया', कि मुर के नरमी कलइया (महेन्द्र शंकर आदि)।"[249] नेपाली के साथ ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि उनकी लोकप्रियता के कारण उन्हें मंचीय कवि मानकर उन्हें साहित्य के दहलीज से दूर रखना था। जिस छंद और तुक पर 'पाँच जोड़ बाँसुरी' के संपादक चन्द्रदेव सिंह ने तीखे व्यंग्य किए हैं, उस कविता को देखिए -

> "कहाँ प्रेम-जल में गगरिया डुबोई / भरी न गगरिया उमरिया डुबोई
> अभी प्रीति भोली कुमारी कली थी / लगन की चुनरिया रंगाने चली थी
> कि बरसी डगर में विरह की बदरिया / अँगनवा डुबोया, अटरिया डुबोई
> इधर मेघ छाये, उधर मोर निकले / हमारे पिया तो जनम चोर निकले
> सितारे ही निकले न निकले सँवरिया / नजर व्यर्थ आठों पहरिया डुबोई।"[250]

गीत का एक आंदोलन 'नवगीत' के रूप में शुरू हुआ। लेकिन 'नवगीतकारों' में उसका प्रवर्तक बनने की होड़ लग गई। एक तरफ थे कवि राजेंद्र प्रसाद सिंह तो दूसरी ओर शंभूनाथ सिंह। कुछ आलोचकों ने 'नवगीत' के प्रवर्तक के रूप में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को देखा है। 'नवगीत' विधा उद्देश्य तौर पर "प्रयोगवादी और नई कवितावादी कवियों और आलोचकों के इस संगठित प्रचार का जवाब देना था कि गीत विधा में आधुनिक जीवन संदर्भों की जटिलता को व्यक्त करने की सृजनात्मकता नहीं रह गई है, वह एक मृत विधा है।"[251] नवगीतकारों ने 'नवगीत' को साहित्य में

---

[248] पाँच जोड़ बाँसुरी - संपा. चन्द्रदेव सिंह, पृ.सं. 11
[249] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 161
[250] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 40
[251] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 159

स्थापित किया और एक से बढ़कर एक नवगीतकार सामने आए, जिनमें कुछ प्रमुख हैं- वीरेंद्र मिश्र, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, शंभूनाथ सिंह, केदारनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, रमेश रजक, माहेश्वर तिवारी, शलभ राम सिंह आदि। लेकिन सभी नेपाली जी को भूल गए। नेपाली ही थे जिन्होंने कविता को गीत के रूप में अंतर्संगीत से जोड़ा और काव्य मंचों पर उसको प्रतिष्ठित किया और उसे पहचान दिलायी। नंदकिशोर नंदन जी ने बच्चन जी के उस कथन की याद दिलायी है, जिसमें बच्चन जी ने कहा था- "तीस वर्ष तक वे जिस स्वर में बोले थे, उनका अपना था, न कोई उनका अनुकरण कर सका। प्रवाह, समता, भाषा की सरलता, भावों की रागात्मकता उनकी हर रचना में देखी जा सकती है। हिन्दी कविता को जनमानस तक पहुँचाने में उनका योगदान अद्वितीय है।"[252]

सन् 2010 में गोपेश्वर सिंह की पुस्तक प्रकाशित हुई - 'कल्पना का उर्वशी विवाद'। इस पुस्तक में उन्होंने लिखा है- "बच्चन और दिनकर आधुनिक हिन्दी कविता के श्रेष्ठ और सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं।"[253] फिर उन्होंने लिखा है- "बच्चन और दिनकर आधुनिक हिन्दी के सबसे लोकप्रिय कवि हैं। यह लोकप्रियता उनकी श्रेष्ठता में बाधक नहीं है। वे लोकप्रिय के साथ श्रेष्ठ कवि भी हैं।"[254] फिर वे हिन्दी साहित्य की शिविरबद्धता को दोषी ठहराते हैं- इन कवियों के सम्यक मूल्यांकन नहीं करने के लिए। उन्होंने लिखा है- "आलोचना की यह दृष्टि 1966 के दशक वाली प्रगतिशील और आधुनिक शिविरबद्ध परियोजना की उपज थी और जो मूल रूप से शीत युद्ध की देन थी।"[255] गोपेश्वर सिंह एक तरफ बच्चन और दिनकर को श्रेष्ठ और लोकप्रिय मानते हैं तो दूसरी तरफ उस समय के सबसे लोकप्रिय कवि गोपाल सिंह नेपाली की चर्चा तक नहीं करते। आश्चर्य इसलिए होता है कि खुद गोपेश्वर सिंह एक तरफ बच्चन और दिनकर के सम्यक मूल्यांकन नहीं करने के लिए प्रगतिशील और आधुनिक शिविरबद्धता को दोषी ठहराते हैं तो फिर वे क्यों नेपाली का मूल्यांकन नहीं

[252] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 160
[253] कल्पना का उर्वशी विवाद - संपादन गोपेश्वर सिंह, पृ.सं. 9
[254] कल्पना का उर्वशी विवाद - संपादन गोपेश्वर सिंह, पृ.सं. 11
[255] कल्पना का उर्वशी विवाद - संपादन गोपेश्वर सिंह, पृ.सं. 9

करते। जिन प्रतिमानों एवं काव्य निकषों पर उनको दिनकर और बच्चन लोकप्रिय लगते हैं, उन प्रतिमानों एवं काव्य निकषों पर क्या नेपाली का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में रामचन्द्र शुक्ल अग्रणी हैं। बाद के सभी साहित्येतिहासकारों ने उनका अनुकरण किया है। उनके 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का संशोधित संस्करण 1940 ई. में आया। उस समय तक नेपाली जी के तीन काव्य संग्रह आ चुके थे और वे प्रसिद्धि पा चुके थे। फिर भी रामचन्द्र शुक्ल ने 'स्वच्छंद काव्य धारा' के अंतर्गत उनका उल्लेख करना तक उचित नहीं समझा, जबकि उन्होंने बच्चन, गुरूभक्त सिंह और दिनकर का उल्लेख किया। साहित्य में लोकमंगल की वकालत करने वाले शुक्ल जी नेपाली जी को कैसे भूल गए। यह उनकी दृष्टि की सीमा थी या अभिजात्यता, जिसकी कसौटी पर नेपाली खरे नहीं उतरे?

डॉ. नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' का एक बहुपठित इतिहास है। इस इतिहास में डॉ. रामदरश मिश्र ने नेपाली को इस रूप में याद किया है- "नेपाली के प्रथम काव्य संग्रह 'उमंग' में प्रेम और यौवन की मधुर अनुभूतियों के अनेक मोहक और सरस चित्र मिलते हैं। कवि सम्मेलनों में इनकी कविताएँ रंग जमा देती थी। बाद में ये चलचित्र के लिए गीत लिखने लगे। इनके गीत भाषा और भावभूमि की सरलता के कारण सामान्य जनता को तल्लीन और विभोर करने में समर्थ हैं। इसमें संदेह नहीं कि यदि ये अपने कवित्व को सामान्य जनता के स्तर से मुक्त रखते तो उनकी कला अधिक निखार और उत्कर्ष प्राप्त करने में सफल होती।"[256] डॉ. रामदरश मिश्र स्वयं गीतकार रहे हैं। फिर भी उन्होंने नेपाली को याद करने में पूर्वाग्रह से ग्रसित रहे। जब नेपाली जी के सातों काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके थे तो फिर उनके सभी कृतियों को ध्यान में रखकर उनका सम्यक मूल्यांकन क्यों नहीं किया? फिर उन्हें क्यों कहना पड़ा कि वे अपनी कविता को सामान्य जनता के स्तर से मुक्त रखते? वे तो जनसरोकार से जुड़े थे। फिर उनको स्वाधीनता आंदोलन को अनुप्राणित

[256] हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं. 544

करने वाली उनकी रचनाएँ क्यों याद नहीं आई? उनकी प्रकृतिपरक कविताओं को भी एक नजर से देख लेते।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके वैशिष्ट्य को इस रूप में याद करते हैं- "कई कवियों ने स्वतंत्र शैली की कविता लिखी। रामकुमार वर्मा, हरिकृष्ण प्रेमी, सोहनलाल द्विवेदी, मोहनलाल महतो वियोगी, अज्ञेय, श्यामानारायण पाण्डेय, उदयशंकर भट्ट, जानकी बल्लभ शास्त्री, आरसी, नेपाली, अंचल आदि कवियों ने भाषा में नवीन व्यंजना शक्ति और भाव ग्राहिता की क्षमता दी।"[257] द्विवेदी जी ने भी अपने साहित्य के इतिहास में नेपाली जी के साथ न्याय नहीं किया। उन्होंने बस औपचारिकतावश उनका उल्लेख भर कर दिया है। जबकि दिनकर और बच्चन के काव्य पर उन्होंने गहराई से विचार किया है।

बाबू गुलाब राय ने 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' में उन्हें इस रूप में स्मरण किया है- "आपने प्रकृति संबंधी बहुत सुंदर कविताएँ की हैं। आपकी कविताओं में लोकगीतों जैसी मिठास और सरलता होती है। लोकप्रियता की दृष्टि से नेपाली बहुत आगे रहे। आपकी 'पीपल', 'हरी घास' आदि कविताएँ बहुत सुंदर हैं।"[258] बाबू गुाब राय ने उनकी कविता के सिर्फ एक पक्ष प्रकृति पर कुछ लिखा है। वे चाहते तो नेपाली की कविता के सभी पक्षों का सम्यक मूल्यांकन कर साहित्य के इतिहास में उनकी हुई उपेक्षा की भरपाई कर देते। लेकिन उन्होंने ऐसा किया नहीं।

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने तो अपने इतिहास ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में दिनकर और बच्चन पर व्यापक रूप से चर्चा की, लेकिन नेपाली के लिए इतना ही लिखा- "दूसरा पक्ष है गोपाल सिंह 'नेपाली' के गीतों का जहाँ जीवन और यौवन का सहज उल्लास है।"[259] पता नहीं क्यों उन्होंने उनके काव्य के सभी पक्षों का मूल्यांकन नहीं किया और न ही विस्तृत रूप से उन पर लिखा ही।

---

[257] हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 277
[258] हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास - बाबू गुलाब राय, पृ.सं. 258
[259] हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.सं. 189

कुछ वर्ष पूर्व लीलाधर मंडलोई के संपादन में एक किताब आई- 'कविता के सौ बरस'। लेकिन उस किताब में भी नेपाली सिरे से गायब हैं। जन-जन के हृदय में बसने वाला और लोकप्रिय कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' क्या उस किताब में जगह पाने के हकदार नहीं थे? जब हम हिन्दी कविता के सौ बरस की बात कर रहे हैं तो उस कविता को जन-जन तक पहुँचाने वाले कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' को कैसे भूल सकते हैं?

सन् 2011 गोपाल सिंह 'नेपाली' के साथ हिन्दी साहित्य के कई कवियों का जन्म शताब्दी वर्ष था, जिसमें शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल, अज्ञेय जैसे बड़े कवि भी थे। पर इन सबको लेकर हिन्दी आलोचना की कोई नयी उद्भावना सामने नहीं आयी। गोपाल सिंह 'नेपाली' को जन्मशताब्दी वर्ष में जिस धीरता और गंभीरता से उन्हें याद करने की जरूरत थी, उस धीरता और गंभीरता से उन्हें याद नहीं किया गया। गंभीर आलोचना पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी प्रकट होती है लेकिन दो-तीन पत्रिकाओं को छोड़कर कोई भी पत्रिका ने उनपर अपना विशेषांक नहीं निकाला। आखिर क्यों अकादमिक जगत में और साहित्य जगत में गोपाल सिंह 'नेपाली' उपेक्षित हैं? और आखिर कब तक उपेक्षित रहेंगे?

जब भी कोई हिन्दी साहित्य का तटस्थ आलोचक और इतिहासकार ईमानदारी और नैतिकता से इतिहास का पुनर्लेखन करेगा तो वो गोपाल सिंह 'नेपाली' को हरिवंश राय 'बच्चन' और रामधारी सिंह 'दिनकर' के साथ रखकर उनका सम्यक मूल्यांकन करेगा।

4.3 गोपाल सिंह 'नेपाली' की लोकप्रियता : प्रकाशन एवं नैरन्तर्य

हर रचनाकार, चाहे वह कवि हो या लेखक, वह चाहता है कि उसकी कृति पाठकों तक पहुँचे। किसी कृति को पाठकों तक पहुँचाने का काम प्रकाशक करता है। किसी कृति के प्रकाशित हो जाने पर वह पाठकों को सुलभ हो जाती है। यों कहें तो किसी कृति का प्रकाशन ही वह महत्त्वपूर्ण पड़ाव है, जहाँ वह समाज के लिए उपलब्ध हो जाती है। प्रकाशक ही वह माध्यम है, जो रचनाकार को पाठक से जोड़ता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो रचनाकार अपनी रचना समाज के लिए लिखता है। जब रचना समाज तक नहीं पहुँचेगी, तो रचनाकार का लिखना सार्थक नहीं होगा। रचना को समाज तक पहुँचाने का काम प्रकाशक करता है। प्रकाशन के बाद ही रचनाएँ समाज से जुड़ती हैं और समाज में उसकी पठनीयता एवं बिक्री से कृति का महत्त्व स्थापित होता है। मुद्रण के आविष्कार से पहले पुस्तकों का प्रकाशन नहीं होता था और न ही रचनाकार और पाठक के बीच कोई प्रकाशक था। वैदिक काल में तो श्रुति की परंपरा थी। उसके बाद ताड़ एवं भोजपत्रों का समय आया। ताड़ एवं भोजपत्रों पर साहित्य लिखा जाने लगा। उसके बाद ही पांडुलिपि की अनेक प्रतिलिपियाँ लिखी जाने लगी। प्रतिलिपियां लिखे जाने के बाद साहित्य का समाज में प्रवेश तो हुआ, लेकिन समाज के सभी लोगों तक उसकी पहुँच सुलभ नहीं हो सकी। समाज के सीमित वर्ग तक ही उनकी पहुँच रही। लेकिन मुद्रण के आविष्कार ने दुनिया बदल दी। अब हर रचनाकार के लिए पाठक तक पहुँचना आसान हो गया। बदलते समय में रेडियो, दूरदर्शन, इंटरनेट और सोशल मीडिया ने रचनाकार को पाठकों के और करीब ला दिया है। प्रकाशक, जो रचनाकार और पाठक के बीच मध्यस्थ बना हुआ था, उसकी भूमिका को सीमित भी किया है।

लोकप्रिय साहित्य को पूँजीवादी युग और समाज की उपज माना जाता है। लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण का एक पक्ष आर्थिक ही है। आर्थिक पक्ष में लोकप्रिय साहित्य के प्रकाशन से लेकर बिक्री तक की प्रक्रिया है। प्रकाशन संस्थान का प्रकाशक बड़े हो या छोटे, व्यवसायी ही होते हैं, जिनका उद्देश्य मुनाफा कमाना होता है। रचना भी अन्य उपभोग की वस्तुओं की तरह जनता तक पहुँचाया जाता है। दूसरे शब्दों में कहें तो लोकप्रिय साहित्य एक उत्पाद है, जिसे प्रकाशक द्वारा मुनाफा कमाने के उद्देश्य से प्रकाशित किया जाता है। लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग की एक पूरी प्रक्रिया है। इस पूरी प्रक्रिया को अर्डोनी ने संस्कृति का उद्योग कहा तो वोर्डिए ने इसे प्रतीकात्मक वस्तुओं का बाजार।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कृतियों के प्रकाशकों की बात हम करें तो इसकी सूची लंबी नहीं है। इसका कारण यह है कि उनके 7 काव्य संग्रह ही प्रकाशित हुए हैं। "उनकी पहली रचना 'भारत-गगन के जग-मग सितारे' बाल मासिक पत्रिका 'बालक' के नवम्बर 1930 ई. के अंक में प्रकाशित हुई। इसके बाद प्रकाशन का जो दौर प्रारंभ हुआ वह प्राय: अंत तक बना रहा। 1931 ई. में मोतिहारी से प्रकाशित 'विकास' पत्रिका के कई अंकों में इनकी बाल कविताएँ प्रकाशित हुई थी।"[260] तत्कालीन कई स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं 'युवक' (पटना), 'विशाल भारत' (कलकत्ता), 'हंस' (काशी), 'सरस्वती' (प्रयाग), 'कर्मवीर' (खण्डवा), 'प्रताप' (कानपुर), 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में भी इनकी कई रचनाएँ प्रकाशित हुई।

उनकी पहली कृति 'उमंग' सन् 1934 में प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशक थे ऋषभचरण जैन। ऋषभचरण जैन स्वयं पत्रकारिता से जुड़े हुए थे एवं एक फिल्मी साप्ताहिक पत्रिका 'चित्रपट' निकालते थे। स्वयं नेपाली जी इसके सहायक संपादक थे। जब 'उमंग' प्रकाशित हुई तो उसकी भूमिका सुप्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत ने लिखी। 'उमंग' में उनके आरंभिक दौर की कविताएँ संकलित की गई थी। इस काव्य संग्रह का लोगों ने स्वागत किया। ऋषभचरण जैन ने इसके कई संस्करण प्रकाशित किए। बाद के दिनों में यह काव्य संग्रह अनुपलब्ध हो गया। पुन: 2011 ई. में कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' की 'जन्मशती' अवसर पर राजदीप प्रकाशन, नई दिल्ली ने इसे प्रकाशित किया।

उनकी दूसरी काव्य कृति 'पंछी' का प्रकाशन गंगा पुस्तकालय, लखनऊ के सौजन्य से सन् 1934 ई. में हुआ। गंगा पुस्तकालय ने इस कृति को 144वें पुष्प के रूप में प्रकाशित किया था। 'पंछी' कथाश्रित प्रेमकाव्य है, जिसमें दो पंछियों की प्रणय कथा है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने इस काव्य कृति की भूमिका लिखी थी। इस काव्य कृति को पाठकों के बीच काफी पसंद किया गया।

[260] गोपाल सिंह नेपाली - डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 12

सन् 1935 ई. में इनकी तीसरी काव्य कृति 'रागिनी' का प्रकाशन युगांतर प्रकाशन समिति, पटना द्वारा हुआ। 'रागिनी' के द्वितीय संस्करण पर गोपाल सिंह 'नेपाली' ने लिखा- "प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी संसार ने 'रागिनी' को अपनाया। इतनी जल्दी प्रथम संसकरण की प्रतियां निकल गई। आशा है, इस संशोधित संस्करण को साहित्यानुरागी और भी पसंद करेंगे।" तत्कालीन समय में गोपाल सिंह 'नेपाली' की कृतियों के कई संस्करण निकल रहे थे। जाहिर तौर पर पाठकों के बीच उनकी मांग थी। इसलिए प्रकाशक उन्हें बार-बार प्रकाशित कर रहे थे। काव्य मंचों पर उनकी लोकप्रियता का यह असर ही था कि उनकी काव्य कृतियाँ हाथों-हाथ बिक जाती थी। कृतियों की बिक्री एवं पुन: संस्करण प्रकाशित होना लोकप्रियता का ही एक रूप है।

'नीलिमा' रचनाक्रम की दृष्टि से चौथी किन्तु प्रकाशन की दृष्टि से पाँचवी कृति है। सन् 1944 ई. में प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता रामदेव शर्मा ने 'वैशाली निकुंज' मुजफ्फरपुर से प्रकाशित किया था। 'पंचमी' रचनाक्रम की दृष्टि से उनकी पाँचवीं कृति है, किन्तु इसका प्रकाशन 'नीलिमा' के बाद हुआ। जब नेपाली जी बेतिया रहने लगे थे। तब उन्होंने कविवासर की स्थापना वहाँ पर की थी। कविवासर, बेतिया के सौजन्य से ही अगस्त 1942 ई. में 'पंचमी' का प्रकाशन हुआ। 'नवीन' उनकी छठी काव्य कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1944 ई. में पुस्तक भण्डार, पटना से प्रकाशित हुआ। 'नीलिमा', 'पंचमी' एवं 'नवीन' को पाठकों के बीच खूब सराहा गया। काव्यमंचों पर उनकी लोकप्रियता दिनों-दिन बढ़ रही थी। इसलिए भी इनकी माँग बढ़ी, क्योंकि उनके श्रोता अब पाठक भी बन गए थे।

सन् 1944 ई. में वे मुम्बई (तत्कालीन बंबई) गये और वहाँ वे फिल्मों में गीतकार के रूप में कार्य करने लगे। फिल्मों से जुड़ने के बाद उनके काव्य संग्रह तो प्रकाशित नहीं हुए किन्तु उनकी कविताएँ निरंतर प्रकाशित होती रही। सन् 1956 ई. में टाइम्स ऑफ इण्डिया ने 'धर्मयुग' का प्रकाशन शुरू किया। धर्मवीर भारती इसके संपादक नियुक्त हुए। धर्मवीर भारती ने 'धर्मयुग' को एक आयाम प्रदान करते हुए उस समय की सबसे चर्चित एवं लोकप्रिय पत्रिका बना दिया। गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताएँ इस पत्रिका में प्राय: प्रकाशित होती थी। इसके अतिरिक्त साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान',

‘युवक’ (आगरा) आदि में उनकी कई कविताएँ प्रकाशित हुई। पटना से प्रकाशित ‘ज्योत्सना’ में भी इनकी कई कविताएँ प्रकाशित हुई।

उनकी सातवीं एवं अंतिम काव्य कृति ‘हिमालय ने पुकारा’ हिमालय प्रकाशन, मलाड, बंबई से फरवरी 1963 ई. में प्रकाशित हुई। इस संस्करण को दिल्ली संस्करण के नाम से जाना गया। दुर्भाग्य से इसी बीच 17 अप्रैल 1963 ई. को गोपाल सिंह ‘नेपाली’ का निधन हो गया। इसका दूसरा संस्करण भागलपुर संस्करण के नाम से मार्च 1964 ई. में प्रकाशित हुआ। तत्कालीन भारत-चीन युद्ध की छाप इस काव्य संग्रह पर थी और नेपाली जी ने ‘वन मैन आर्मी’ बन भारत में घूम-घूमकर राष्ट्रकवि का अपना धर्म निभाते हुए अपना शरीर त्यागा था। इसलिए इस काव्य संग्रह को काफी लोकप्रियता मिली और जनता ने इसे हाथों-हाथ लेकर उनका सम्मान किया था।

गोपाल सिंह ‘नेपाली’ के निधन के पश्चात उनकी कई काव्य-कृतियों के पुन: संस्करण प्रकाशित हुए। फिर कुछ समय बाद उनकी रचनाएँ अनुपलब्ध होने लगी। उनकी कृतियों का नैरंतर्य कायम नहीं रह सका। लेकिन नेपाली की काव्य-कृतियों की मांग पाठकों में बनी रही। नेपाली की काव्य-कृतियों को फिर से पाठकों के बीच लाने में डॉ. सतीश कुमार राय (बी.आर. अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर) एवं प्रो. नंदकिशोर नंदन का महत्त्वपूर्ण योगदान है। ऐसा ही महत्त्वपूर्ण काम गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की भतीजी सविता सिंह ‘नेपाली’ के द्वारा भी की जा रही है।

डॉ. सतीश कुमार राय के द्वारा नेपाली जी की रचनाओं की पुनर्प्रस्तुति की गई है जो निम्न है-

1. असंकलित रचनाएँ - गोपाल सिंह नेपाली, संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर
2. है ताज हिमालय के सिर पर : गोपाल सिंह नेपाली, संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, प्रभास प्रकाशन, मुजफ्फरपुर
3. पंछी एवं अन्य कविताएँ, संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, किताब पब्लिकेशन, मुजफ्फरपुर

4. 'नेपाली' की सत्तर कविताएँ, संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर
5. गोपाल सिंह 'नेपाली' : प्रतिनिधि कविताएँ, संपादक सतीश कुमार राय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

नेपाली जी के जन्मशती वर्ष में नंदकिशोर नंदन के सहयोग से गोपाल सिंह 'नेपाली' की रचनाओं को पुन: प्रकाशित किया गया है, जो निम्न है-

1. उमंग, गोपाल सिंह नेपाली, प्रकाशक - राजदीप प्रकाशन, नई दिल्ली-110087
2. पंछी, गोपाल सिंह नेपाली, प्रकाशक - पुस्तक भवन, नई दिल्ली-110045
3. रागिनी, गोपाल सिंह नेपाली , प्रकाशक - राजदीप प्रकाशन, नई दिल्ली-110087
4. नीलिमा, गोपाल सिंह नेपाली, प्रकाशक - पुस्तक भवन, नई दिल्ली- 110045
5. पंचमी, गोपाल सिंह नेपाली, प्रकाशक -साहित्य संसद, नई दिल्ली-110045
6. नवीन, गोपाल सिंह नेपाली, प्रकाशक - साहित्य संसद, नई दिल्ली-110045
7. हिमालय ने पुकारा, गोपाल सिंह नेपाली, प्रकाशक - साहित्य संसद, नई दिल्ली-110045

नंदकिशोर नंदन जी ने उनके काव्य संग्रह में से कुछ श्रेष्ठ कविताओं को लेकर तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित वे कविताएँ जो उनके काव्य संग्रह में नहीं प्रकाशित हैं, को लेकर दो काव्य संकलन प्रस्तुत किए हैं, जो निम्न हैं-

1. गोपाल सिंह नेपाली की श्रेष्ठ कविताएँ, संपादक नंदकिशोर नंदन, प्रकाशक - साहित्य संसद, नई दिल्ली-110045
2. गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ, संपादन - नंदकिशोर नंदन, प्रकाशन - नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली-110070

सुरेश सलिल ने उनकी कुछ कविताओं को लेकर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जो निम्न है-

1. गोपाल सिंह नेपाली : चुनी हुई कविताएँ, परिचय एवं चयन - सुरेश सलिल, प्रकाशक - मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, नई दिल्ली-110032

गोपाल सिंह 'नेपाली' की भतीजी सविता सिंह नेपाली के द्वारा उनके काव्य संग्रह एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं को लेकर गोपाल सिंह नेपाली समग्र का प्रकाशन किया है।

1. गोपाल सिंह नेपाली, समग्र भाग 1, संपादिका सविता सिंह नेपाली, प्रकाशक - गोपाल सिंह नेपाली फाउंडेशन, बेतिया (प. चंपारण)

4.4 गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के कारण

गोपाल सिंह 'नेपाली' अपने समय के सबसे लोकप्रिय कवि थे। आम जन उनकी कविताओं के श्रोता थे और पाठक भी। उनकी कई कविताएँ आज भी लोककंठ में सुरक्षित हैं, जिन्हें लोग अक्सर गुनगुनाया करते हैं। उनके अनूठे काव्य-पाठ एवं विशिष्ट काव्य-शैली के लोग प्रशंसक रहे। वे गीतों के राजकुमार के नाम से मशहूर रहे। नेपाली आज भी कवि सम्मेलनों के माध्यम से या सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, यू-ट्यूब आदि के माध्यम से जनता के बीच उपस्थित हैं और लोकप्रिय भी हैं। उनका जुड़ाव काव्य-मंचों से रहा, जहाँ उन्हें अपार लोकप्रियता मिली। आखिर उनकी लोकप्रियता के कारण क्या हैं? उनकी कविताओं में ऐसा क्या है कि आज भी लोग उन्हें याद करते हैं, जबकि उनको दिवंगत हुए 50 वर्षों से ज्यादा समय हो चुका है। उनका समग्र मूल्यांकन करने के लिए उनकी कविता की लोकप्रियता के कारणों को जानना आवश्यक है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की लोकप्रियता का पहला कारण है- उनकी कविता की बोधगम्यता या संप्रेषणीयता। उनकी कविता आसानी से लोगों के हृदय से जुड़ जाती है। बोधगम्य या संप्रेषणीय कविता लोगों की पहली पसंद होती है। यदि कविता बोधगम्य या संप्रेषणीय नहीं हो तो भले ही उस कविता के अंदर बहुत सी गंभीर बातें क्यों न हो, वह पाठकों के बीच लोकप्रिय नहीं होती। मुक्तिबोध की कविताएँ हों या शमशेर की- इनके पाठक विशिष्ट वर्ग के लोग ही हैं। इनकी कविताएँ आम लोगों के बीच लोकप्रिय नहीं हुई। हम कबीर की बात करें या तुलसीदास की या नागार्जुन की- इनकी

कविताएँ सहज एवं संप्रेषणीय रही हैं। यही कारण है कि इनकी कविताएँ आज भी लोकप्रिय हैं। नेपाली की कविता में सहजता एवं संप्रेषणीयता हर जगह देखने को मिलती है। वह सहज एवं सरल शब्दों में ही अपनी अभिव्यक्ति पाठकों तक पहुँचा देते हैं। उन्होंने सहजता की कठिन साधना की है। बड़ी से बड़ी बात को वे सरल, सहज एवं सरस शब्दों में रखकर सीधे श्रोताओं से संवाद करते हैं। निम्न पंक्तियाँ देखिए -

"अफसोस नहीं इसका हमको, हम जीवन में कुछ कर न सके
झोलियां किसी की भर न सके, संताप किसी का हर न सके
अपने प्रति सच्चा रहने का जीवन भर हमने यत्न किया
देखा-देखी हम जी न सके, देखा-देखी हम मर न सके।"[261]

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का एक कारण उसका शिल्प भी है। कविता की लोकप्रियता कविता की भाषा, शब्द, छंद, तुक, लय, गेयता, संगीत तत्व की उपस्थिति से प्रभावित होती रही है। नेपाली की कविता की भाषा सरल, सहज एवं सरस तो है ही। उनकी कविता छंद, तुक, लय से बँधी हुई है। उनकी कविता गेय है और उनमें संगीत तत्व भी उपस्थित हैं। यही कारण है कि उनकी कविता आसानी से लोक कंठ में रच बस गई। उन्होंने अपनी कविता में लय पर विशेष ध्यान दिया है। 'बाबुल तुम बगिया के तरूवर', 'रोटियाँ गरीब की', 'मैं प्यार चुराता चला गया अंधियारे में', 'मैं प्यास भृंग जनम भर का', 'दो तुम्हारे नयन', 'चुनरिया झूठी है', 'इतना सस्ता मैं हो न सका', 'नौ लाख सितारों ने लुटा' आदि कविताएँ आज भी लोक कंठ में बसी हुई है। राकेश रंजन ने लिखा है- "सांगीतिका से परिपूर्ण नेपाली जी की कविताओं में लय, ताल, सुर राग-रागिनियों का अद्भुत संगम है। लोककंठ में रचने-बसने योग्य बन गए हैं। कवि नेपाली स्वयं संगीत कला के मर्मज्ञ थे। वे अपनी कविताओं की धुन खुद बनाते थे।"[262] उनकी एक कविता देखिए -

"घूँघट-घूँघट नैना नाचे, पनघट-पनघट छैयाँ रे

---

[261] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 124
[262] गोपाल सिंह नेपाली के गीतिकाव्य में संगीत तत्व - राकेश रंजन, पृ.सं. 69

लहर-लहर हर नैया नाचे, नैया में खेवैया रे
दिन क्या फूटे, कुमकुम फूटे, छिटके रंग दिशाओं में
संध्या भी सिंदूर उड़ाती आई मस्त हवाओं में
उतरे रात सितारों वाला घुँघरू बाँध पैयाँ रे
घूँघट-घूँघट नैना नाचे, पनघट पनघट छैयाँ रे।"[263]

नेपाली की कविता मूलत: गीत ही हैं। उनका गीतों के प्रति विशेष आग्रह रहा है। रघुनाथ उपाध्याय शलभ ने लिखा है- "उन्होंने छायावादी कवियों की कोमलकांत पदावली का अनुसरण करते हुए भी काव्य-भाषा में लोक-जीवन के शब्दों को पिरोकर माधुर्य और मासूमियत की निजी टेकनीक से कविता में एक नया प्रयोग किया और गीतात्मक लय में बाँधकर उसे लोकग्राही बनाने में सफलता हासिल की।"[264] गीतों के प्रति अपना प्यार दर्शाते हुए उन्होंने लिखा है-

"यह गीतों का देश है, यहाँ चरवाहा बिरहा गाता है
सुख हो, दुख हो, सौंदर्य यहाँ, गीतों में गाया जाता है।"[265]

नेपाली कविता को छंदमय मानते थे। वे अतुकांत गद्यात्मकता को कविता के लिए अच्छा नहीं मानते थे। उनका कहना था-

"लाख चला अतुकांत गद्य लो युग-कविता के वेश में
चल न सकेगा नीरस पद तुलसी मीरा के देश में।"

नेपाली की कविता सीधे श्रोताओं से संवाद करती है। उन्होंने अपनी कविता में अभिधा शब्द शक्ति का विशेष ध्यान रखा है। वे अपने भावों को सीधे व्यक्त करते हैं। इसके कारण ही उनकी कविता जनता के दिलों से सीधे जुड़ जाती है। उनकी लोकप्रियता का कारण यह भी है। एक कविता देखिए -

---

[263] गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 137
[264] आजकल, अंक नवम्बर 2011, पृ.सं. 20
[265] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 96

"मैं प्यासा भृंग जनम भर का
फिर मेरी प्यास बुझाए क्या, दुनिया का प्यार रसम भर का
मैं प्यासा भृंग जनम भर का।"[266]

नेपाली की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उनका लोक से जुड़ाव रहा है। कविता जब-जब अपनी मार्मिकता एवं संवेदना खोने लगती हैं, तब-तब वह संवेदना के स्तर पर लोक जीवन से जुड़ती है। कबीर, सूर और तुलसी की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह है कि उन्होंने लोक जीवन के अनुभवों और लोक भाषा की व्यंजकता को ग्रहण कर अपने निजी जीवन के अनुभव के संस्पर्श से सर्वकालिक बना दिया। नेपाली निस्संदेह लोक जीवन से गहरे स्तर पर जुड़े हुए कवि थे, जिन्होंने लोक जीवन के अनुभवों को ही नहीं, लोकभाषा और उसके मुहावरों को भी आत्मसात कर अपनी कविता को नया आयाम प्रदान किया है। उनकी एक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कविता 'झीनी-झीनी चदरिया' देखी जा सकती है, जो सूफी भाव-भूमि पर आधारित है-

"जनम जनम मैंने भी ओढ़ी / तेरी श्याम चदरिया रे
सुध न समय की, बुध लड़कैया / उस पर दुनिया भूल-भुलैया
रक्खा जाय हाथ न पैंया / जलती धूप, कँटीली छैंया
मुड़-मुड़ चली अँधेरे गलियाँ / उड़-उड़ चली उमरिया रे।"[267]

गोपाल सिंह 'नेपाली' की अपार लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति है। उनकी राष्ट्रीयता के कई आयाम हैं। नेपाली ने अपने जीवन के आरंभिक दिनों से ही राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत कविताएँ लिखना शुरू कर दिया था। उनकी पहली कविता 'भारत गगन के जगमग सितारे' थी। उनकी इस कविता को रामवृक्ष बेनीपुरी ने 'बालक' पत्रिका में प्रकाशित किया, जिसके वे स्वयं संपादक थे। नेपाली ने 1927 ई. के आस-पास कविता लिखना शुरू किया और 1932 ई. तक उनकी काव्य-प्रतिभा से हिन्दी जगत परिचित हो चुका था।

---

[266] गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 169
[267] गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 143

1934 ई. में उनका पहला काव्य-संग्रह ‘उमंग’ प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में उनकी कई कविताएँ राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत थी। “स्वाधीनता-संग्राम से संबद्ध कविताओं में ‘हम’, ‘सत्याग्रह’, ‘मोहन से’, ‘स्वागत’ आदि कविताएँ महत्त्वपूर्ण हैं तो भारत की आत्मा ग्राम्य-जीवन की विपन्नता, उदासी और दु:खों को व्यंजित करने वाली ‘देहात’ और ‘चित्र’ शीर्षक कविताएँ भी कवि की जन-दृष्टि और संवेदना के ऐक्य की मिशाल हैं।”[268] अपने पहले काव्य संग्रह में उन्होंने गाँधी जी पर दो कविताएँ लिखी थी- ‘मोहन से’ और ‘स्वागत’। “कवि के रूप में नेपाली की ख्याति मिली उनकी ‘सत्याग्रह’ शीर्षक कविता से जो पं. माखनलाल चतुर्वेदी द्वार संपादित ‘कर्मवीर’ (खंडवा) में 1931 में छपी थी। स्वतंत्रता संग्राम के उन वर्षों में जगह-जगह सभा-मंच से यह कविता गाई जाती थी।”[269] इस कविता से उन्हें काफी लोकप्रियता मिली थी। इस कविता की चार पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

> “है अपूर्व यह युद्ध हमारा, हिंसा की न लड़ाई है
> नंगी छाती की तोपों के ऊपर विकट चढ़ाई है
> तलवारों की धारा मोड़ने गर्दन आगे आई है
> सिर के मारों से डण्डों की होती यहाँ सफाई है।”[270]

उनकी इस कविता की लोकप्रियता का कारण रहा है- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का जीवंत चित्र, जिसमें एक तरफ हथियारों से सुसज्जित अंग्रेजी फौज थी तो दूसरी तरफ निहत्थे भारतीय थे, जो देश के ऊपर कुर्बान हो रहे थे। यही कारण था कि इस कविता के काव्य-पाठ से श्रोता मंत्रमुग्ध हो उठते थे और देश के लिए मर-मिटने को संकल्पित भी। आज भी यह कविता पाठकों के मानस पर स्वाधीनता आंदोलन का चित्र जीवंत कर देती है।

गाँधी जी पर उनकी कविता ‘मोहन से’ काफी लोकप्रिय हुई थी। इस कविता को उन्होंने तब लिखा था, जब गाँधी जी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लंदन गए थे। लंदन में गाँधी जी का

---

[268] गोपाल सिंह नेपाली की श्रेष्ठ कविताएँ - संपादक नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 12
[269] परिषद पत्रिका, जन्मशती स्मरणांक, पृ.सं. 249
[270] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 83

ऐतिहासिक स्वागत किया गया। नंदन किशोर नंदन ने लिखा है कि- "नेपाली कदाचित पहले हिन्दी कवि हैं जिन्होंने गाँधी जी को राष्ट्रीय स्वाभिमान की याद दिलाते हुए करोड़ों भारतीयों की आत्मा का प्रतिनिधित्व किया था।"[271] इस ऐतिहासिक कविता का गहरा जनसरोकार भारत की जनता से था। इस कविता में उन्होंने भारत की निर्धन जनता की गहरी वेदना को भी स्वर दिया है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ जो काफी लोकप्रिय हुई-

"कितनी टूटे रोज लाठियाँ, निरपराध नंगे सिर पर
होती है दिन-रात चढ़ाई, भूखों के रीते घर पर
छोड़ों यह रोटी का टुकड़ा, अदना चावल का दाना
आओ मोहन, शंख बजाओ, पहने केशरिया बाना।"[272]

उनकी राष्ट्रीय कविताओं में 'टुकड़ी' आजादी के आंदोलन के समय काफी लोकप्रिय थी। इस कविता ने ब्रिटिश सत्ता और उसके चाकरों को उद्वेलित कर दिया था। यह कविता महज आठ पंक्तियों की एक छोटी सी कविता है। इस कविता को देखिए-

"चल बढ़ बची हुई टुकड़ी अब / कर न विचार तनिक क्या बीता
कदम कदम पर ताल दे रहा / गरज, दमक, हुंकार, पलीता।
मरते हैं डरपोक घरों में / बाँध गले रेशम का फीता
यह तो समर, यहाँ मुट्ठी भर / मिट्टी जिसने चूमी, जीता।"[273]

सन् 1934-35 में देश जहाँ असंतोष के दौर से गुजर रहा था। सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस लेने से देश में निराशा का वातावरण था। अंग्रेजों द्वारा तीन गोलमेज सम्मेलन आयोजित किए गए, लेकिन भारतीयों की माँग पूरी नहीं की गई। देश में क्रांतिकारियों की गतिविधियों को कुचल दिया गया

[271] गोपाल सिंह नेपाली की श्रेष्ठ कविताएँ - संपादक नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 12
[272] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 84
[273] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 45

था। ऐसे ही समय में उन्होंने 'विद्रोही' कविता लिखी थी। यह कविता काफी लोकप्रिय हुई। इस कविता में नेपाली की विद्रोही आत्मा दिखती है-

> "मरण-घड़ी, घड़ियाल बजा, उठ विद्रोही रच सुघड़ चिता
> इधर खींच माचिस की सीकें, उधर सुना अपनी कविता
> खग के क्षणिक बुलबुले फुटें, चिर विप्लव का राग जगे
> अट्टहास का विग्रह, सोने की लंका में आग लगे।"[274]

इस दौर की कई अन्य महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं- 'देश-दहन', 'जवानी के तीर पर', 'जंजीर' और 'भाई-बहन'। 'भाई-बहन' शीर्षक कविता बहुत ही लोकप्रिय कविता है। आजादी के संघर्ष में कवि युवा पीढ़ी को भाई-बहन के रूप में शामिल होने का आह्वान करता है। "इस कविता में कवि ने दिशाहीन युवा वर्ग को दिशा बोध कराया है। उन्हें विलासिता की मृगतृष्णा से बाहर निकालने का प्रयत्न किया है। यहाँ उपवन की जगह रंगभूमि में तबीयत बहलाने की बात करके वीरों के स्वाभाविक वसंत की व्यंजना भी की गई है।"[275] यह कविता युवा पीढ़ी को आजादी के आंदोलन में शामिल होने की सार्थक पहल करता है। इस कविता की कुछ लोकप्रिय पंक्तियाँ हैं-

> "तू चिनगारी बन कर उड़ री जाग-जाग में ज्वाल बनूँ
> तू बन जा हहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल बनूँ
> आज वसंती चोला तेरा, मैं भी सज लूँ, लाल बनूँ
> तू भगिनी बन क्रांति करा ली, मैं भाई विकराल बनूँ।"[276]

राष्ट्रीय चेतना से संपन्न 'पंचमी' काव्य संग्रह की 'विशाल भारत' एवं 'हिमांचल' भी उनकी लोकप्रिय कविता है। विशाल भारत में कवि नेपाली ने भारत के भूगोल को सांस्कृतिक वैशिष्ट्य एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों के साथ वर्णित किया है। यह कविता एक तरह से राष्ट्रगान है, जिसमें भारत

---

[274] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 22
[275] गोपाल सिंह नेपाली - डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 39
[276] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51

का आत्मबोध अभिव्यक्त है। यह कविता भारत की महिमा को वर्णित करता है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए -

"भीतर आंगन :

भरा फूल से स्वर्ण धूल से / नदी कूल से वन दुकूल से

जहाँ राम थे मधुर श्याम थे / पूर्ण काम थे शक्तिधाम थे

डरता था जिनसे महाकाल भारत अखंड भारत विशाल।

भारतवासी

जहाँ कोटिजन जिनका जीवन / जिनका यौवन जिनका तन-मन

सब न्योछावर स्वतंत्रता पर / बैठे घर पर दिए जला कर।"[277]

'नवीन' शीर्षक ('नवीन' काव्य संग्रह से) कविता उनकी लोकप्रिय कविताओं में से एक है। कवि इस कविता में स्वतंत्र हो रहे राष्ट्र की आकांक्षा और कल्पना को साकार करने के लिए युवा-शक्ति का आह्वान करता है। सन् 1944 ई. के समय ही कवि नेपाली को यह अहसास हो गया था कि देश के स्वतंत्र होने में ज्यादा दिन शेष नहीं है। यही कारण है कि कवि देश की नई पीढ़ी को नए राष्ट्र के निर्माण के लिए नई कल्पना करने का, देश की व्यथा दूर करने का आह्वान करता है। इस कविता का छंद विधान भी नेपाली की मौलिक देन है। यही कारण है कि यह कविता काफी लोकप्रिय हुई। कवि कहता है-

"अब घिस गई समाज की तमाम नीतियाँ

अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियाँ

हैं दे रही चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ

निज राष्ट्र के सिंगार के लिए

तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो

तुम कल्पना करो।"[278]

---

[277] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 32-33

[278] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11

द्वितीय विश्व युद्ध के समय अंग्रेजों को साथ देने के मुद्दे पर कांग्रेस दो धड़े में बंट गई थी। इस समय उन्होंने ‘आज जवानी के क्षण में’ शीर्षक कविता लिखी, जिसमें वे गाँधी जी के द्वारा ब्रिटेन के समर्थन को ‘भोलापन की हद’, ‘अपनापन की हद’ के द्वारा रोष व्यक्त करते हैं तो वहीं ‘उनके समूल उन्मूलन में कुछ ऐसा खेल रचो साथी’ के द्वारा सुभाष का समर्थन करते हैं। उनकी यह कविता उस समय काफी लोकप्रिय हुई है। कुछ पंक्तियाँ देखिए -

“भोलापन की हद, जुल्मों को पिछले जन्मों का फल समझो
अपनापन की हद, जालिम के मन को भी तुम निर्मल समझो
चाहे उनको मानव समझो / चाहे उनको दानव समझो
उनके समूल उन्मूलन में कुछ ऐसा खेल रचो साथी
दुनिया के सूने आंगन में कुछ ऐसा खेल रचो साथी।”[279]

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान उन्होंने कई राष्ट्रीय कविताओं की रचना की, जो उस समय काफी लोकप्रिय हुई। ‘स्वतंत्रता का दीपक’, ‘मैं गायक हूँ स्वच्छंद हिमांचल का’, ‘भारत माता’ राष्ट्रीय आंदोलन के समय स्वाधीनता सेनानियों की प्रिय रचनाएँ थीं। ‘नया संसार’ और ‘तुम आग पर चलो’ शीर्षक कविताएँ नेपाली जी की क्रांतिकारी चेतना के साथ उनकी विश्व दृष्टि को भी प्रतिबिंबित करती है। ‘तुम आग पर चलो’ कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए -

“तुम आग पर चलो जवान आग पर चलो / तुम आग पर चलो
अब तो समाज की नवीन धारणा बनी / है लुट रहे गरीब और लुटते धनी
संपत्ति हो समाज के न खून से सनी / यह आँच लग रही मनुष्य के शरीर को
तुम आँच में ढलो नवीन आँच में ढलो / तुम आँच में ढलो।”[280]

भारत की आजादी के बाद सन् 1959 के आस-पास से चीन के साथ भारत के संबंध बिगड़ने लगे। भारत-चीन युद्ध से आहत होकर उन्होंने अपना अंतिम काव्य-संग्रह प्रकाशित किया, जिसमें

---

[279] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 73
[280] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 77

राष्ट्रीय चेतना की प्रखर और गंभीर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। 'हिमालय ने पुकारा' उनका अंतिम काव्य संग्रह है, जिसमें चीनी आक्रमण से संबंधित दर्जन भर कविताएँ हैं। इन कविताओं का पाठ वे भारत भर में घूम-घूम कर करते रहे। इस समय इनकी लोकप्रियता अपने चरम पर थी। सतीश कुमार राय ने लिखा है- " 'हिमालय ने पुकारा' वस्तुत: राष्ट्रप्रेम और राष्ट्र जागरण की कविताओं का संग्रह है। चीनी आक्रमण के भयाक्रांत परिवेश में इस संग्रह की कविताएँ एक नयी आस्था, एक नये प्रस्थान और एक नयी जागरूकता का परिवेश निर्मित करती हैं। पराजय की पीड़ा से देश को मुक्त करने और सुषुप्त जनमानस में नयी चेतना का संचार करने में इस संग्रह की कविताएँ विशेष रूप से तत्पर प्रतीत होती है।"[281]

'हिमालय ने पुकारा' काव्य संग्रह में उनके तीन प्रयाण गीत हैं- 'हिमालय ने पुकारा', 'इन चीनी लुटेरों को भारत से निकालो', 'हिन्दुस्तान की ललकार' तीनों ही गीतों में चीनी आक्रमण से बचने, अपने को सजग होने का आह्वान है और तीनों ही गीत उस समय जन जन में लोकप्रिय थे। कुछ पंक्तियाँ देखिए -

"आज बाँह फड़की है, छाती भी धड़की है
गोद में हिमालय की, रण-बिजली कड़की है
भारत की सीमा पर, युद्ध अग्नि भड़की है।"[282]

उनकी एक कविता है- 'यह मेरा हिन्दुस्तान है', जो काफी लोकप्रिय हुई थी। इस कविता में उन्होंने भारत की सभी विशेषताओं को समाहित किया है। 'यह मेरा हिन्दुस्तान है' को सुनकर उत्तर प्रदेश के वरिष्ठ अधिकारी कैप्टन शूरवीर सिंह ने इस कविता को इकबाल के 'सारे जहाँ से अच्छा' से अच्छा, सामयिक और जनभावना से भरा बताया था। उन्होंने इस कविता में सांप्रदायिकता को नकारते हुए लिखा है-

"हिन्दू-मुस्लिम क्रिस्तान हैं, लेकिन पहले इंसान हैं

[281] है ताज हिमालय के सिर पर : गोपाल सिंह नेपाली - संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.स 7
[282] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 33

है सिक्ख यहीं पारसी यही, जो हैं मिल्लत की शान हैं

हैं रंग-रंगीले लोग, तिरंगा सबका एक निशान है।

यह मेरा हिन्दुस्तान है।"[283]

आजादी के बाद लिखी गई उनकी कविता 'नवीन कल्पना करो' अत्यंत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कविता है। इस कविता में कवि देशवासियों से आग्रह कर रहा है, देश के विकास के लिए, देश को शक्तिशाली बनाने के लिए, देश को संपन्न बनाने के लिए मौलिक कल्पना करने को।

"लेकर अनन्त शक्तियाँ सदा समृद्धि की

तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो, तुम कल्पना करो।"[284]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी लोकप्रियता को बनाये रखने में उनकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक संवेदना से संपन्न कविता का बड़ा योगदान रहा है। 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा', 'बोमडिला चलो' जैसी कई लोकप्रिय कविताएँ इसके प्रमाण हैं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की लोकप्रियता का एक कारण उनका काव्य मंच से जुड़ाव रहा है। काव्य सम्मेलनों में विशाल जनता की भागीदारी होती है। काव्य मंच के माध्यम से कवि और जनता का सीधा संवाद होता है। काव्य मंचों पर उनकी लोकप्रियता चरम पर रही है। काव्य मंच पर उनकी लोकप्रियता को जानने के लिए प्रभाकर माचवे का वक्तव्य उल्लेखनीय जान पड़ता है- "मैं रेडियो पर पहुँचा तो देखा कि साहित्यिक कार्यक्रमों में उर्दू वाले सिनेमाई लेखकों से कोई परहेज नहीं करते थे। बल्कि मुशायरों में वे सब शायर बुलाए जाते थे जो कोरे फिल्मी गीतकार भी थे। मैंने मन में सोचा, हिन्दी में ऐसा प्रपंच क्यों? दिल्ली में 1951 में आयोजित एक बड़े कवि सम्मेलन में मैंने बम्बई से पहली बार नेपाली जी को बुलवाया- रांगेय राघव भी उसी सम्मेलन में पहली बार आए। बाद में तो

---

[283] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 35

[284] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 40

कोई कवि सम्मेलन (रेडियो का या बाहर का) दिल्ली में सफल नहीं हो पाता था, जिसमें नेपाली जी नहीं बुलाए जाते थे।"[285]

काव्य मंच पर उनकी लोकप्रियता के संबंध में सुरेश सलिल ने जनकवि नागार्जुन को उद्धृत किया है- "उनके श्रोता को, पता चल जाये तो ऐसे सुकंठ गीतकार को सुनने के लिए दस-दस कोस का फासला लांघकर, कवि सम्मेलनों में डट जाते थे। ... सधे हुए शब्द शिल्प को हवा के पंखों पर तैराने वाले, स्वरों में रसों के अनुकूल आवेग भरने वाले, युग धर्म की थिरकन को कड़ियों में बाँधने वाले, अपनी मस्ती से अबाल वृद्ध जन साधारण को विभोर करने वाले हमारे नेपाली जी संपूर्ण भारतीय राष्ट्र का अभिमान थे। वे व्यापक अर्थों में महामहिम जन कलाकार थे।"[286]

काव्य मंचों पर उनकी लोकप्रियता ऐसी थी कि बड़े-बड़े कवियों का रंग भी उनके सामने फीका पड़ जाता था। इस क्रम में सुरेश सलिल ने वरिष्ठ गीतकार स्व. रामनाथ अवस्थी की उस अनौपचारिक बातचीत का हवाला दिया है, जिसमें उन्होंने कहा था- "कवि सम्मेलनों में नेपाली जी की लोकप्रियता का आलम यह था कि कभी-कभी 'बच्चन जी' को अपना सिंहासन डोलता महसूस होने लगता।"[287]

गोपाल सिंह 'नेपाली' की मंचीय लोकप्रियता के संबंध में रामनिहाल गुंजन की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है- "एक जमाना था जबकि मंचों पर हरिवंश राय 'बच्चन', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', जानकी बल्लभ शास्त्री और नेपाली के गीतों की धूम मची हुई थी। इन कवियों में ज्यादातर नेपाली के गीतों की माँग श्रोताओं की ओर से की जाती थी। इससे साफ पता चलता है कि नेपाली उस समय भी अपने सामयिक महत्त्व के गीतों के कारण ज्यादा पसंद किए जाते थे। गौरतलब है कि उन दिनों बच्चन की 'मधुशाला' और जानकी बल्लभ शास्त्री के गीत 'किसने बाँसुरी बजाई' को तो लोग सुनते ही थे,

[285] अलाव, नेपाली जन्मशती विशेषांक, पृ.सं. 164
[286] गोपाल सिंह नेपाली : चुनी हुई कविताएँ, परिचय एवं चयन - सुरेश सलिल, पृ.सं. 9
[287] गोपाल सिंह नेपाली : चुनी हुई कविताएँ, परिचय एवं चयन - सुरेश सलिल, पृ.सं. 9

लेकिन जहाँ नेपाली अपने गीत 'तुम कल्पन करो नवीन कल्पना करो' की तान छेड़ते, श्रोता वृंद अपनी करतल ध्वनि से उनका स्वागत करते देखे जाते थे।"[288]

गोपाल सिंह 'नेपाली' की लोकप्रियता में उनकी प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन विषयों से संबंधित कविताओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। डॉ. सतीश कुमार राय ने लिखा है- "नेपाली का प्रेम और सौंदर्य वर्णन छायावाद से भिन्न है। नेपाली उन्मुक्त प्रेम और प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य के सहज गायक हैं।"[289] उन्होंने एक से बढ़कर एक अद्भुत प्रेम गीत लिखे हैं। उनके लिखे प्रेम गीत अक्सर 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित होते रहते थे। 'मैं प्यासा भृंग जनम भर का', 'दीपक जलता रहा रात भर', 'सौंदर्य तुम्हारा सूर्योदय', 'मैं प्यार चुराता चला गया अंधियारे में', 'चुनरिया झूठी है', 'दो प्राण मिले', 'तुमने मेरा दर्द न जाना', 'है दर्द दिया में बाती का जलना', 'दर्द में या प्यार में', 'दुनिया एक तुम्हारी आँखें', 'दबे पाँव तुम आई रानी' आदि उनकी लोकप्रिय कविताएँ हैं।

उनकी एक लोकप्रिय कविता है 'चुनरिया झूठी है'। यह कविता काफी चर्चित रही। इस कविता में कवि ने बहिरंग छवियों के साथ सौंदर्य की आंतरिक कोमलता पर दृष्टि डाली है। अभिव्यक्ति के स्तर पर सीधे सरल, सहज एवं सरस शब्दों के माध्यम से सादगी भरे नारी सौंदर्य के सहज रूप को निखारने से कविता में अतिरिक्त आकर्षण आ गया है।" कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"मृगनयनी-पिकबयनी! तेरे सामने बाँसुरिया झूठी है।
रग-रग में इतने रंग भरे रंगीन चुनरिया झूठी है।
मुख भी तेरा इतना गोरा / बिना चाँद का पूनम है
है दरस परस इतना शीतल / शरीर नहीं शबनम है।
अलकें-पलकें इतनी काली घनश्याम बदरिया झूठी है।

---

[288] जनपथ, अंक दिसम्बर 2011, पृ.सं. 21
[289] नेपाली की सत्तर कविताएँ - संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 5

रग-रग में ऐसा रंग भरा रंगीन चुनरिया झूठी है।"[290]

नेपाली ने रूप और सौंदर्य के कई गीत लिखे हैं। उनकी लोकप्रिय कविता 'सौंदर्य तुम्हारा सूर्योदय' की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"सौंदर्य तुम्हारा सूर्योदय, संध्या हो, आधी रात हो
दर्शन से खिलता मुग्ध नयन जैसे कोई जलजात हो।"[291]

नेपाली कवि रूप में ऐसे सौंदर्य के उपासक हैं, जो आत्मीयता से जुड़ा हो। उनकी एक लोकप्रिय कविता 'यह दिल खोल तुम्हारा हँसना' की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"प्रिय, तुम्हारी इन आँखों में मेरा जीवन बोल रहा है
देखा मैंने एक बूँद से ढका जरा, आँखों का कोना
थी मन में कुछ पीर तुम्हारे, पर कहीं कुछ रोना-धोना
मेरे लिए बहुत काफी है आँखों का यह डब-डब होना।"[292]

उनकी एक लोकप्रिय कविता है- 'दीपक जलता रहा रात भर'। यहाँ प्रेम का दिया प्रिया के मिलन के स्नेह से रात भर जलता रहता है। यहाँ मिलन की भूख है तो प्रेम की विकलता भी। कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"मेरे प्राण मिलन के भूखे / ये आँखें दर्शन को प्यासी
चलती रही घटाएं काली / अंबर में प्रिय की छाया सी।"[293]

नेपाली जी की प्रकृतिपरक कविताएँ भी लोकप्रिय रही। उनकी प्रकृतिपरक कविताएँ प्रकृति के साथ उनकी गहरी आत्मीयता और तन्मयता को दर्शाती है। इन कविताओं में सरलता, सहजता और सरसता भी है। 'मेघ उठे सखि, काले-काले', 'काले मेघों के गर्जन में', 'बादल गरजे बिजली चमके', 'पावस ने अंजलि उड़ेल दी' उनकी महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं। 'पंछी' नामक प्रबंध रचना में उन्होंने दो

[290] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 175
[291] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 141
[292] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 98
[293] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14

पंछियों के माध्यम से जहाँ प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। वहीं, उसमें प्रकृति के सौंदर्य का मनोरम विस्तार भी है। हिमालय को केन्द्रित उनकी कई कविताएँ हैं।

उनकी एक बहुत ही प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कविता है- 'बाबुल तुम बगिया के तरूवर'। इस कविता में "एक भारतीय कन्या अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक की अपनी अंतर्कथा-अंतर्व्यथा व्यंजित करती है।"[294] कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"माँग रची आँसू के ऊपर, घूँघट गीली आँखों पर
ब्याह नाम से यह लीला जाहिर करवायी लाखों पर
जो घूँघट से डर डर झाँके / वरा उसे बाजे बजवा के
गुड़िया खेल बढ़े हम, फिर भी दुनिया समझे गुड़िया
उड़ जाएँ तो लौट न आएँ ज्यों मोती की लड़ियाँ रे।"[295]

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का कारण उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण भी रहा है। उनकी वे कविताएँ उस समय काफी लोकप्रिय हुई जिसमें समाज की असमानता, गरीबों का दु:ख-दर्द, किसानों की पीड़ा आदि की अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही उनकी वे कविताएँ भी लोकप्रिय हुई, जिनमें उनका जीवन संघर्ष, मानव-मूल्य एवं आत्मबोध की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। 'देख रहे हैं महल तमाशा', 'नया संसार', 'तुम आग पर चलो', 'कल्पना करो', 'अभी कहां घर लौट चला', 'चाँदनी में झोपड़ी', 'पंछी बोले पिंजड़ा खोलो', 'रोटियों का चन्द्रमा', 'भू-दान के याचक से' आदि उनकी लोकप्रिय कविता है, जिनमें नेपाली का प्रगतिशील दृष्टिकोण देखने को मिलता है।

उनकी एक कविता है 'चित्र', जिसके कोष्ठक में नेपाली जी ने लिखा है- 'दरिद्र, दास और दुखी भारत का'। "इस कविता में कवि की जनपक्षधरता गहरी संवेदना के साथ व्यंजित हुई है और

---

[294] गोपाल सिंह नेपाली की श्रेष्ठ कविताएँ - संपादक नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 24
[295] गोपाल सिंह नेपाली की श्रेष्ठ कविताएँ - संपादक नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 235

कवि की दृष्टि उस भेदभाव पर भी है, जो आज स्वतंत्र भारत के समाजवादी विकास की एक बड़ी बाधा है।"[296] यही कारण रहा कि यह कविता लोकप्रिय हुई। इस कविता की निम्न पंक्तियाँ देखिए -

"लटक रहा है सुख कितनों का आज खेत के गन्नों में
भूखों के भगवान खड़े हैं दो-दो मुट्ठी अन्नों में
कर जोड़े अपने घर वाले हमसे भिक्षा मांग रहे
किंतु देखते उनकी किस्मत हम पोथी के पन्नों में।"[297]

छायावाद के उत्तरार्द्ध से समाज में प्रगतिशील चेतना विकसित हो रही थी, जिसके कारण उस समय ऐसी कविताएँ लोकप्रिय हो रही थी, जिनमें प्रगतिशीलता की अभिव्यक्ति हुई है। रामनिहाल गुंजन ने लिखा है- "ऐसी ही स्थितियों में नेपाली की कविता 'तुम कल्पना करो, नवीन कल्पना करो' परवान चढ़ी थी और हिन्दी कविता के क्षेत्र में एक नया संदेश उभरकर सामने आया था। इस कविता के जरिये नेपाली ने भारतीय समाज की तमाम नीतियों और रीतियों को चुनौती देते हुए उनमें परिवर्तन की मांग की थी।"[298] कुछ पंक्तियाँ देखिए -

"अब घिस गई समाज की तमाम नीतियाँ
अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियाँ
है दे रही चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ
निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार के लिए
तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो तुम कल्पना करो।"[299]

नेपाली एक शोषणमुक्त समतामूलक समाज के पक्षधर रहे हैं। "वे आश्वस्त हैं कि समतामूलक समाज का निर्माण होगा। मनुष्य रूढ़ियों से मुक्त होकर विकास पथ पर अग्रसर होगा। प्रेम

[296] प्रभात खबर, दीपावली विशेषांक, 2010, पृ.सं. 142
[297] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 87
[298] जनपथ, अंक दिसम्बर 2011, पृ.सं. 22
[299] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11

और बंधुत्व विकसित होंगे और मनुष्य सामूहिक विकास की दिशा में अग्रसर होगा।"[300] तभी तो वे कहते हैं-

"सामाजिक पापों के सिर पर चढ़कर बोलेगा अब खतरा
बोलेगा पतितों-दलितों के गरम लहू का कतरा-कतरा
होंगे भस्म अग्नि में जलकर धरम-करम और पोथी-पतरा
और पुतेगा व्यक्तिवाद के चिकने चेहरे पर अलकतरा
सड़ी-गली प्राचीन रूढ़ि के भवन गिरेंगे, दुर्ग ढहेंगे
युग-प्रवाह पर कटे वृक्ष से दुनिया भर में ढोंगे बहेंगे
पतित-दलित मस्तक ऊँचा कर संघर्षों की कथा कहेंगे
और मनुज के लिए मनुज के द्वार खेले रहेंगे।"[301]

उनकी एक लोकप्रिय कविता है- 'रोटियाँ गरीब की'। इस कविता में नेपाली ने गहरा आक्रोश व्यक्त किया है। उन्हें इस बात का दु:ख है कि जीवन की सारी हँसी-खुशी महलों में कैद है और झोपड़ी में भूख और अभाव का गहरा अँधेरा छाया हुआ है। वे कहते हैं-

"दिन गये बरस गये, यातना गई नहीं
रोटियाँ गरीब की, प्रार्थना बनी रही
विश्व के अधिक दु:खी हो रहे अधिक दु:खी
जो रहे अधिक सुखी, हो रहे अधिक सुखी
कागजों में रह गयी, क्रांतियाँ चतुर्मुखी
राज भी बदल गया, यातना गई नहीं
रोटियाँ गरीब की, प्रार्थना बनी रहीं।"[302]

---

[300] गोपाल सिंह नेपाली : प्रतिनिधि कविताएँ - संपादक सतीश कुमार राय, पृ.सं. 8
[301] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 31-32
[302] गोपाल सिंह नेपाली की श्रेष्ठ कविताएँ - संपादक नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 232

नेपाली आजीवन संघर्ष करते रहे। लेकिन उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। उनमें स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था। उनकी एक लोकप्रिय कविता ‘स्वाधीन कलम’ है, जो काफी प्रसिद्ध हुई। इस कविता में उनका जीवन, संघर्ष, स्वाभिमान सभी देखने को मिलता है। कुछ पंक्तियाँ देखिए-

> “लिखता हूँ अपनी मर्जी से बचता हूँ कैंची दर्जी से
> आदत न रही कुछ लिखने की, निंदा वंदन खुदगर्जी से
> कोई छेड़े तो तन जाती, बन जाती है संगीन कलम।”[303]

उन्होंने अपना ईमान और स्वाभिमान बेचकर कुछ पाने की चेष्टा कभी नहीं की। इसलिए वे कहते हैं-

> “तुझ सा लहरों में बह लेता / तो मैं भी सत्ता गह लेता
> ईमान बेचता चलता / तो मैं भी महलों में रह लेता।”[304]

उनकी कई कविताओं में उनका संघर्ष दिखता है। वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। संघर्ष से उन्होंने पैसे का महत्त्व जान लिया था। वे देख रहे थे कि समाज में लोग रिश्तों-नातों को पैसे से तौल रहे हैं। भले ही पैसे से लोगों की नींद-चैन उड़ गयी हो, लेकिन वे पैसे के पीछे भागना नहीं छोड़ रहे हैं। उनकी एक बहुत ही लोकप्रिय कविता है- ‘नौ लाख सितारों ने लूटा’। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

> “बदनाम रहे बटमार मगर, घर तो रखवालों ने लूटा
> मेरी दुल्हन-सी रातों को, नौ लाख सितारों ने लूटा
> जग में जो भी दो जन मिले, उनमें रुपयों का नाता है
> जाती है किस्मत बैठ यहाँ, पतला कागज चल जाता है
> संगीत छिड़ा है सिक्कों का / फिर मीठी नींद नसीब कहाँ
> नींद तो लूटी रुपयों ने, सपना झनकारों ने लूटा

---

[303] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं.127
[304] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं.128

बदनाम रहे बटमार मगर, घर तो रखवालों ने लूटा।"[305]

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के विविध कारणों को उनकी कुछ लोकप्रिय कविताओं के माध्यम से समझने का प्रयास किया गया है। उनकी कविताओं की लोकप्रियता में जितना योगदान उनकी कविता की शिल्प-छंद, तुक, लय आदि का है, उतना ही योगदान उनकी कविता की विषय वस्तु का भी है। अपने अनूठे काव्य पाठ एवं सुकंठ के कारण भी वे मंच पर लोकप्रिय रहे। नेपाली की जनप्रियता एवं लोकप्रियता को समझने के लिए साप्ताहिक हिन्दुस्तान की टिप्पणी यहाँ समीचीन जान पड़ती है जिसे मंजु प्रसाद ने अपने निबंध 'नेपाली की बुनावट' में उद्धृत की हैं- "श्री नेपाली जनता के कवि थे। जनता की भावनाओं को जनभाषा के माध्यम से जिस मधुरता से इस कवि ने प्रस्तुत किया, वह उसकी अपनी देन थी। उनके गीतों के साथ जनता की आकांक्षाएँ और कल्पनाएँ गुंथी हुई थी। मेरे आंगन की हरी घास सरीखे नये माध्यमों के द्वारा उन्होंने हिन्दी में एक नये युग का पदार्पण कराया था। उनकी कविता में प्रवाह और ताजगी थी, वह जीवन के आदमी थे, साहित्य के आदमी थे। साहित्य के माध्यम से उन्होंने जनमानस को प्रस्तुत किया था।"[306]

---

[305] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं.135

[306] स्वाधीन कलम नेपाली - संपादक डॉ. अवधेश्वर अरूण, पृ.सं. 21-22

पंचम अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता : संवेदना और शिल्प

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को जानने एवं समझने के लिए उनके काव्य को जानना एवं समझना आवश्यक है। उनके काव्य को जानने एवं समझने के लिए उनकी कविता की संवेदना एवं शिल्प की पड़ताल आवश्यक है। गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र का समग्र मूल्यांकन उनकी कविता की अंतर्वस्तु और शिल्प के अध्ययन के बिना अधूरा है। कविता की अंतर्वस्तु और शिल्प की पड़ताल लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के सांस्कृतिक पक्ष से जुड़ा हुआ है। सांस्कृतिक पक्ष में लोकप्रिय साहित्य की अंतर्वस्तु, उसमें निहित दृष्टिकोण, समाज की वास्तविकता से उसके संबंध, लेखन की सामाजिक चेतना के स्वरूप और रचना की संरचना, आदि की पड़ताल की जाती है। इसे मुख्य रूप से दो रूपों में विभक्त कर देखा जा सकता है - (i) रचना की अंतर्वस्तु एवं (ii) रचना का शिल्प। देखना होगा कि नेपाली की कविता किस प्रकार से बनती है अर्थात् वह किस प्रकार से वह अपना रूप या आकार ग्रहण करती है। भाषा के रूप तत्सम, तद्भव, बोलचाल की भाषा आदि किस प्रकार से सर्जनात्मकता से भरकर उनकी कविता में जीवंत हो उठे हैं। नेपाली का आग्रह सहज, सरल एवं जीवंत शब्दों पर रहा है। प्रयोगशीलता, बिंब योजना, इयान्त प्रत्यय आदि तत्व उनकी कविता को विशिष्ट और बहुआयामी बनाते हैं। शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा वे अपनी कविता में लोच, लावण्य और संगीत पैदा करते हैं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' उत्तर छायावाद के कवि हैं, जिसमें हरिवंश राय 'बच्चन', रामधारी सिंह 'दिनकर', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कवि शामिल हैं। इसमें राष्ट्रीय-सांस्कृतिक एवं वैयक्तिक प्रगीतों की जो धारा है, उसी धारा के कवि हैं- गोपाल सिंह 'नेपाली'। नेपाली का जीवन अथक संघर्ष में बीता है। वे अपने जीवन में सदा अभावग्रस्त रहे। तत्कालीन समय के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आंदोलन का उनके जीवन पर गहरा असर रहा है। फिल्मी

दुनिया के झूठ-फरेब, मौकापरस्ती, गुटबाजी को उन्होंने अपने जीवन में झेला भी था। अपने स्वाभिमान और सिद्धांतप्रियता के कारण वे जीवन में कहीं स्थायी टिक न सके। जीविकोपार्जन एवं धनोपार्जन के लिए जीवन के अंत तक संघर्ष करते रहे। नेपाली की काव्य संवेदना के निर्माण में इनका गहरा एवं महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा, जिसके कारण उनके काव्य में विविधता एवं व्यापकता है। इसमें प्रकृति, राष्ट्रप्रेम, जीवन के मधुर एवं कोमल पक्ष, जीवन संघर्ष एवं मानवीय जीवन दर्शन, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना, स्त्रीमन की पीड़ा, स्वाधीन कलम का द्वंद्व, जनवादी तेवर आदि रूप शामिल हैं।

नेपाली ने अपने सैनिक पिता से देशभक्ति पाई थी एवं उनका बचपन सैनिक छावनियों में ही बिता था जिसका असर उनकी कविताओं में देखने को मिलता है। इस कारण उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना प्रबल एवं प्रखर हैं। वे स्वयं अभावग्रस्तता में पले बढ़े और जीवन के अंत तक अभावग्रस्त जीवन जीते रहे। उन्हें जनसामान्य के दुःख की गहरी अनुभूति थी। इसके कारण उनकी काव्य संवेदना में जनपक्षधरता अंत तक बनी रही। प्रकृति के प्रति उनका गहरा अनुराग बचपन से ही था। जब भी उन्हें मौका मिलता, वे प्रकृति को निहारते रहते। प्रकृति की छाप उनकी कविताओं में भीतर तक है। उनका अपनी पत्नी के प्रति गहरा प्रेम एवं समर्पण रहा। उनकी कई कविताओं में इसकी झलक देखने को मिलती है। इसीलिए उनकी कविता की संवेदना की विविधता एवं व्यापकता को कुछ शीर्षकों में विभक्त कर उनकी कविता की अंतर्वस्तु को समझ सकते हैं-

5.1 नेपाली के काव्य में प्रकृति

प्रकृति मनुष्य की चिर सहचरी रही है। गोपाल सिंह ‘नेपाली’ का अंतर्मन भी प्रकृति के सौंदर्य में डूबा रहता था। प्रकृति की हरियाली का आधार घास और वृक्ष है। नेपाली को इनसे गहरा प्रेम है। इन्होंने ‘घास’ शीर्षक से एक कविता लिखी थी। इस कविता के बहुत बड़े प्रशंसक सोहनलाल द्विवेदी थे। “घास शीर्षक कविता के संदर्भ में यह कहा जाता है कि हिन्दी में ऐसी कोई दूसरी कविता दुर्लभ है। राष्ट्रीय कवि सोहनलाल द्विवेदी के अनुसार नेपाली जी को अमरता देने के लिए ‘घास’ शीर्षक

कविता ही पर्याप्त है।"[307] स्वयं नेपाली जी ने लिखा है- "हरी घास पर नानक ने एक छोटे से दोहे को छोड़कर, हिन्दी में और कविता नहीं है। पंडित सोहनलाल द्विवेदी का कहना है कि मैं अगर सिर्फ यही कविता लिखकर मर जाता, फिर भी अमर रहता।"[308] घास नेपाली को अतिप्रिय है। वह घास को जीवन के संपूर्णता में देखते हैं। वह इसे ईश्वर की असीम अनुकंपा मानते हैं। उनका यह भी मानना था कि यदि उनके हाथ में बंदूक की जगह कलम है तो इसका कारण भी हरी-भरी घास ही है। उन्होंने लिखा भी है- "यह हरी-भरी दूब की ही महिमा है कि आज मेरे हाथ में बंदूक के बदले लेखनी है।"[309] यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि यह कविता उनके आरंभिक दिनों की है। कविता का प्रथम बंध इस प्रकार है-

"प्रभु की असीम करूणा होती है अब रे मुझे आस
सुख, सुषमा, शोभा, सुंदरता बिखरी है मेरे आस-पास
फिर मुक्त कंठ से इन सबका गुण-गान मधुर मैं करूँ न क्यों
दी बिछा उसी ने इसीलिए मेरे आंगन में हरी घास।"[310]

'हरी घास' उनकी एक महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ कविता है। इस कविता में इन्होंने प्रकृति के साथ अपनी तन्मयता और एकांतता को एकाग्र किया है। ऐसी कविता आज भी दुर्लभ है। पंत जी ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है- "यह घास नहीं है, पनप उठती है मेरे जीवन की मधुर 'आस' में भी आशा मधुर ही हो गई है।"[311]

"यह घास नहीं है पनप उठी मेरे जीवन की मधुर आस
मैं तो रहता हूँ महलों में, पर प्राण यहीं करते निवास।"[312]

---

[307] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 101
[308] गीतों के राजकुमार : गोपाल सिंह नेपाली, संपा. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 294
[309] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 5-6
[310] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51
[311] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 8
[312] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 52

नेपाली को पेड़-पौधों से काफी लगाव था। नेपाली को वृक्षों में पीपल, मौलसिरी, बेर, साल, करौंदा, जामुन, इमली अत्यंत प्रिय हैं। धान, लौकी आदि पर भी इन्होंने कविताएँ लिखी हैं। "कालिदास ने 'कुमारसंभव' और 'मेघदूत' में प्रकृति के प्रमुख उपादान पर्वत, वृक्ष, नदी, पक्षी आदि सभी चित्रित हुए हैं, उसी प्रकार नेपाली के भी प्रकृति-प्रेम के वृत्त में संपूर्ण प्रकृति आ गई है।"[313]

'पीपल' शीर्षक कविता इन्होंने विद्यार्थी जीवन में लिखी थी। हजारों पाठकों की स्मृति में यह कविता आज भी है। बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में भी यह कविता पढ़ायी जाती है। 'पीपल' के स्नेहिल स्वभाव का चित्रण यहाँ द्रष्टव्य है-

"पीपल के पत्ते गोल-गोल ,कुछ कहते रहते डोल-डोल
जब-जब आता पंछी तरू पर, जब-जब जाता पंछी उड़कर
जब-जब खाता फल चुन चुनकर, पड़ती जब पावस की फुहार
बजते जब पंछी के सितार ,बहने लगती शीतल बयार।"[314]

पंत के साथ नेपाली की घनिष्ठता रही। जयशंकर प्रसाद भी उनके प्रशंसक थे। उनकी 'बेर' शीर्षक कविता को अक्सर प्रसाद जी गुनगुनाया करते थे। "पंत की निकटता ने प्रकृति के प्रति उनके प्रेम और अभिव्यक्ति शैली को जहाँ निखारा, वहीं उन्होंने अपने को उनके प्रारंभिक प्रभाव के बावजूद उससे मुक्त कर प्रकृति के साथ ऐसी आत्मीयता स्थापित की कि वह छायावादोत्तर कविता में प्रकृति का एक अलग और आत्मीय संसार रचने वाले हिन्दी के विशिष्ट कवि बन गए।"[315]

नेपाली की प्रकृतिपरक कविताएँ उनकी प्रकृति के साथ गहरी आत्मीयता और तन्मयता को दर्शाती हैं। इन कविताओं में सरलता भी है और सहजता भी। वे सिर्फ गुलाब, चमेली, जूही के सौंदर्य से ही अभिभूत नहीं है, बल्कि लोकजीवन को संरक्षित और पोषित करने वाले प्राकृतिक तत्वों की ओर भी उन्मुख हैं। पर्वत, झरने, तलहटी सभी का सौंदर्य उन्हें आकर्षित करता है। प्रकृति के एक-एक

---

[313] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 53
[314] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 101
[315] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 7

तत्व, एक-एक भंगिमा से वे परिचित हैं। तभी तो पंत ने उनके बारे में कहा था- "आपका कवि कंठ, निर्मल-निर्झर के समान अवश्य ही मंसूरी की तलहटी में फूटा होगा।"[316] नेपाली प्रकृति के साथ अभिन्न होकर इनसे संवाद करना चाहते हैं, तभी तो कहते हैं-

"झरो-झरो ऐ निर्मल झरने, छलक पड़े वन में छल छल
फूटो-फूटो अब वसुधा से, छलक पड़ो वन में झल झल
मैं भी पी पाऊँ जीवन में एक घूँट झरने का जल
थकन दूर हो जीवन भर की, मन हो तुझ-सा ही शीतल।"[317]

प्रकृति के अभिन्न अंग है- पंछी। पंछियों के प्रति उनका अनुराग देखते ही बनता है। 'पंछी' शीर्षक उनकी एक प्रबंध रचना भी है। इस पुस्तक में उन्होंने दो पंछियों के माध्यम से प्रेम की मार्मिक अभिव्यक्ति की है। प्रकृति के सौंदर्य का यहाँ मनोरम विस्तार देखने को मिलता है। पक्षियों में नेपाली को बुलबुल और कोयल तो प्रिय हैं ही। फुलचुग्गी का रूनझुन भी वहाँ दिख जाता है। 'उमंग' काव्य संग्रह की उनकी एक कविता 'पंछी' का सहज ही इस क्रम में ध्यान आ जाता है, जहाँ कवि पंछी से तादात्मय स्थापित करना चाहता है। पंछी से कवि का संवाद करना इसको विशिष्ट बना देता है-

"रे पंछी, मंजुल बोल बोल / सुख मना मोद से कर किलोल
जब बैठ नीड़ में डालों पर / सुहला-सुहला चोचों से पर
गद-गद होकर आँसू भर-भर / कुछ गीत न गाया रे क्षण भर
तो इस जीवन का कुछ न मोल / रे पंछी, मंजुल बोल-बोल।"[318]

नेपाली पक्षियों से न सिर्फ संवाद करते हैं, उनसे तादात्मय स्थापित करते हैं, बल्कि वे उसके माध्यम से वेदना और विकलता को भी चित्रित करते हैं। उनकी कविता 'आधी रात' में कोयल की कूक का प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव का अत्यंत मनोरम चित्रांकन है। कोयल की कूक के माध्यम से

---

[316] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 7
[317] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27
[318] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 40-41

छिपी वेदना और विकलता का जो चित्र उन्होंने जीवंत किया है, वैसा चित्र न तो छायावादी कवियों के यहाँ है और न तो छायावादोत्तर कवियों के पास। एक चित्रांकन द्रष्टव्य है-

"कूकती कोयल आधी रात , सिहर उठते वसंत के प्राण
कूकती कोयल आधी रात, कोकिला गाती है बेजार
आँख में नींद नहीं इस बार, पात में तरू में वन में आज
पिकी के चंचल मन में आज।"[319]

पक्षियों पर लिखीं उनकी कविताओं में 'पहाड़ी कोयल' की चर्चा करना भी समीचीन होगा। कोयल के कल-कूँजन से शांत और चुप से जंगल के कान सहज ही खुलते हैं-

"पास के पहाड़ से, झाड़ियों की आड़ से
काली-काली कोयलियां, ऊँचे-ऊँचे बोलती
सो रहा सारा जहान , गुमसुम है आसमान
गुमसुम हैं सहम-सहम जंगलों की झाड़ियाँ
और उसके कानों की बंद हैं किवाड़ियाँ
जिनको अपनी तान से, काली-काली कोयलियां, चुपके-चुपके खोलती।"[320]

नेपाली कहते रहे हैं कि पक्षी जो गा रहे हैं, वो उनका ही गान है। उनकी वेदना उनसे जुड़ी हुई है। 'उड़-उड़कर गा रहे विहंग जो, वह मेरा ही अमर गान है' कहने वाला कवि ही उनकी वेदना को पढ़ सकता है। बुलबुल के स्वर की वेदना को इन पंक्तियों में महसूस कीजिए-

"जब दर्द बढ़ा तो बुलबुल ने सरगम का घूंघट खोल दिया
दो बोल सुने यों फूलों ने मौसम का घूंघट खोल दिया।"[321]

---

[319] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 63-64

[320] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 93

[321] गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 130

नेपाली ने प्रकृति के साथ जो आत्मीय तादात्मय स्थापित किया है, वह हिन्दी कविता में विरल हैं। वे प्रकृति के साथ इतने घुल-मिल गये हैं कि उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व को उनसे अलग नहीं किया जा सकता। प्रकृति और उनका व्यक्तित्व एक-दूसरे के पूरक जान पड़ते हैं। 'मेघ उठे सखि, काले-काले', 'नन्हीं बूँदें' और 'सावन' जैसी कविताएँ इनके प्रमाण हैं।

उनकी 'मेघ' शीर्षक कविता को देखें तो इसमें उन्होंने अद्भुत प्रयोग किया है। इस कविता की आरंभिक पंक्तियों में बालकृष्ण का ऐसा रूपक खड़ा किया है कि बरबस महाकवि सूरदास याद आने लगते हैं-

'खुले काले-घुँघराले बाल / चली चंचल समीर झकझोर
खुले काले घुँघराले बाल / बजा यमुना-कदम्ब पर वेणु
मुग्ध नर-नारि, चकित वन-धेनु / संघन कुंजों की छवि अभिराम
छिपे तरू के पातों में श्याम / बाँसुरी में राधा का नाम।"[322]

इसी तरह 'इस रिमझिम में चाँद हँसा है' शीर्षक कविता में नेपाली ने दार्जिलिंग की घाटियों में बरसने वाले मेघों के सौंदर्य का जैसा सहज और सजीव चित्रांकन किया है, वह दुर्लभ है। इस कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए -

"फुहियों में पत्तियाँ नहाई, / आज पाँव तक भीगे तरूवर
उछल शिखर से शिखर पवन भी / झूल रहा तरू की बाँहों पर,
निद्रा भंग, दामिनी चौंकी / झलक उठे अभिराम सरोवर
घर के, वन के अगल-बगल से / छलक पड़े जल-स्रोत मछलकर।"[323]

नेपाली को वर्षा और वसंत ने बार-बार आकर्षित किया है। इन दोनों ही ऋतुओं की मनोरम छवि का अंकन उनकी कई कविताओं में है। नेपाली का मन पावस की श्याम घटाएँ देखकर विकल विह्वल हो जाता है। 'आया मेरा श्याम उमड़ के', 'इस रिमझिम में चाँद हँसा है', 'पावस ने अंजलि

---

[322] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 35
[323] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27

उड़ेल दी', 'बादल गरजे बिजली चमकी' शीर्षक कविताएँ वर्षा ऋतु से संबंधित उनकी उल्लेखनीय कविताएँ हैं।

'सावन' शीर्षक से उन्होंने एक लंबी कविता भी लिखी हैं, जिसमें 101 छंद हैं। इन छंदों में उन्होंने सावन को अनेक उपमाएँ दी हैं। कहीं सावन दहकता से मुक्ति का मास है तो कहीं प्रेम की रिमझिम फुहार का महीना। उन्होंने सावन को अपनी जीवन माया स्वीकार करते हुए लिखा है-

"काले बादल मेरी काया, सावन मेरी जीवन माया
बिजली में मेरा प्राण-दीप प्रिय का पथ चमकाता आया
बूँदों में मेरे जीवन की वीणा की है झंकार मधुर
परछाई बनकर आए हो, काले घन में तुम छाए हो
उसको खोजूँ मैं बिजली में, बादल में जिसे छिपाए हो।"[324]

निराला की तरह नेपाली को भी वसंत ऋतु अत्यंत प्रिय था। जहाँ निराला स्वयं को वसंत का अग्रदूत कहते थे, वहीं नेपाली ने स्वयं को वसंत के रूप में ही चित्रित कर दिया है-

"मैं वसंत हूँ, कुंज-कुंज में / मेरा ही पीताम्बर उड़ता
निर्झर की उद्दाम लहर में / मेरा यौवन फूट उमड़ता।"[325]

नेपाली ने ऋतुओं के साथ प्रभात, संध्या एवं रात्रि पर भी कविताएँ लिखी हैं। वे संध्या, रात्रि एवं प्रभात में प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों के साथ मनोदशा के चित्रांकन का प्रयास करते हैं। 'संध्या गान' शीर्षक कविता इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है जिसके बिंबों में चित्रात्मक सजीवता है, वैसी चित्रात्मकता सजीवता छायावादी कवियों में भी विरल है। कुछ पंक्तियाँ देखिए -

आ रही थी अंधियाली रात, और मैं दिए जलाती चली
दिवस भर चलते चलते थका, हो उठा रवि का आनन लाल

---

[324] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 85
[325] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 87

क्षितिज-वेदी पर कोई खड़ी, अप्सरा लिए आरती-थाल
गा रहे पंछी-वंदन गान, सघन वन-वृक्ष भक्त से झुके
थाल में सौ-सौ पूजन दीप, सुलग कर एक साथ जल चुके
जा रहे गगनांगन से देव, मेघ का चंवर डुलाती चली।"[326]

संध्या-रात्रि के बाद एक चित्रांकन रात्रि की मनोदशा का देखिए-

"भाव-भरी सुंदर विभावरी, निद्रा-आलस के सम्मोहन
मधुर-श्रांति की मधुमाया में उलझ रहा था मतवाला मन
जब शीतल-शीतल झोंकों से रोमांचित हो गिरिवन उपवन
तब क्या संभव था कि जागता मेरी आँखों में नवचेतन।"[327]

सुबह की वेला प्रभात पर उनकी दो कविताएँ 'भोर और प्रभात गान' शीर्षक कविताएँ उल्लेखनीय हैं। नेपाली प्रकृति को जिस सजीवता और सहजता से अंकित करते हैं कि उनके साथ आत्मा भी एकात्म हो उठती है। 'भोर' शीर्षक कविता के प्रथम पंक्ति में ही उन्होंने प्रभात की रश्मियों के प्रभाव को कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति दे दी है। प्रभात के साथ प्रकृति और जीवन में परिवर्तन होने वाले बिंबों को देखिए-

"मारकर तुम किरणों के बाण, खिलाते नयनों के जलजात
ऊँघती होती काली रात, बुझ चुने होते नभ के दीप
चरण तब बज उठते हैं मंद, तुम्हारे गिरि-वन-कुंज-समीप
मधुर है मधुर तुम्हारा हास, आज उन गिरि-शिखरों के पार
उचट जाती है जिससे नींद, जाग उठता सोया संसार
नयन पर छिड़क ओस की बूंद, जिलाते तुम वन-वन में प्रात।"[328]

---

[326] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27
[327] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 115
[328] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 23

'प्रभात-गान' शीर्षक कविता में प्रभात भी निर्झर के समान अपना परिचय देता है और कहता है कि वह स्वर्णिम किरणों पर आरूढ़ होकर सर्वत्र प्रकाश की धूम मचा देता है, जिससे अंधेरा हट जाता है-

"आज मैं स्वर्णिम रथ पर बैठ ज्योति की धूम मचाता चला

सरस सुमनों का सौरभ फूँक-फूँक मैं दिए बुझाता चला।"[329]

जहाँ तक नेपाली के प्रकृति-चित्रण के वैशिष्ट्य का प्रश्न है तो कहना होगा कि उनकी प्रारंभिक रचनाओं पर छायावाद का असर है। लेकिन जल्द ही छायावादी संस्कार से अपने को मुक्त कर लेते हैं। 'नौका विहार' शीर्षक से पंत ने कविता लिखी थी। इसी नाम से नेपाली जी ने भी कविता लिखी है। लेकिन पंत की 'नौका विहार' और नेपाली की 'नौका विहार' दोनों ही एक-दूसरे से भिन्न कविता है। पंत की 'नौका विहार' में उनकी प्रौढ़ता दिखती है। उन्होंने उस कविता में जीवन की शाश्वतता की आध्यात्मिक अनुभूति पिरोई है। जबकि नेपाली गंगा की लहरों पर मचलती मंदमंद चल रही नौका में विहार करते समय की प्रकृति और अपनी मनोदशा का अंकन करते हैं-

"वह शांत-स्निग्ध मंजुल बेला, इस समय रात का प्रथम पहर
उस पार तिमिर, इस पार तिमिर, उस पार रेत, इस पार शहर
हम बीच धार में मचल-मचल कर रहे आज क्रीड़ा कलरव
झिलझिल प्रकाश में दीपों के हैं थिरक रही रे लहर-लहर।"[330]

प्रकृति के प्राय: सभी रूपों को नेपाली ने अपने काव्य में बड़े ही अपनत्व के साथ चित्रित किया है। वैसा चित्रण अन्यत्र विरल है। पर्वत, निर्झर, सरिता, मेघ, पंछी, फूल, किरण, पीपल, घास, विविध ऋतुएँ, मोर, मध्याह्न, संध्या, रात्रि, प्रभात- सब अपने सहज-स्वाभाविक रूप में कवि के आत्मीय स्पर्श से जीवंत हो उठे हैं। पर्वत पंत को प्रिय है, नेपाली को भी। 'मंसूरी की तलहटी' शीर्षक

---

329 पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 24
330 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 66

कविता उनकी अनुपम कविता है, जिसमें उन्होंने प्रकृति को निकटता, व्यापकता और सूक्ष्म दृष्टि से देखकर अत्यंत ही सहजता से अभिव्यक्त किया है। मंसूरी की सौंदर्य यात्रा का एक नमूना द्रष्टव्य है-

"ऊपर मनहर मंसूरी करती निशि दिन नभ में विलास
नीचे की सुंदर मंसूरी करती है जंगल में निवास
साथ में स्वर्ग की छटा लिए वह नीचे-नीचे आती है
बिछ जाती है आंगन में फिर बन-बनकर कोमल हरी घास।"[331]

जहाँ छायावादी कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया है, वहीं नेपाली ने प्रकृति के साथ आत्मीकरण किया है। प्रकृति के साथ आत्मीयता नेपाली की विशिष्टता है। नेपाली की 'निर्झर गान' जैसी दूसरी कविता हिन्दी साहित्य में नहीं है। नेपाली ने खुद को प्रकृति के साथ इतना एकात्म किया है, खुद ही प्रकृति हो गए हैं-

"बना मैं झर झर निर्झर रूप और जीवन बहता जल हुआ
डाल पर विहंस रहे थे फूल, पात पर चमक रही थी किरण
कहीं से आकर चंचल पवन, हटाती छवि पर से आवरण
मधुप फिर रहे कुंज से कुंज, उड़े खग बाल डाल से डाल
जगत में जला दीप से दीप ,यहाँ औरों का जीवन देख, हृदय मेरा भी चंचल हुआ।"[332]

नेपाली को पर्वत की अपरूप सुंदरता बचपन से ही आकर्षित करती रही है। हिमालय उनके लिए भारत भूमि की धरोहर है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"जन्मभूमि यह धन्य हमारी / प्रिय, इस पार हिमालय है
छवि-दर्शन को पगडंडी है / आश्रय को छाया ठंडी है
गदगद कंठ करो शीतल कवि / अमृत-धार हिमालय है

----

[331] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 60
[332] गोपाल सिंह नेपाली समग्र भाग - 1 - संपादिका सविता सिंह नेपाली, पृ.सं. 219

प्रेमी मानव को वंदन है / अखिल विह्व का अभिनंदन है

भारत को जो कुछ कहना है / उसका उद्गार हिमालय है।"[333]

हिमालय पर उनकी एक और कविता यहाँ द्रष्टव्य है- 'हिमालय और हम' इनकी यह कविता गिरकर उठकर खड़े होने की प्रेरणा देता है-

"गिरिराज हिमालय से भारत का कुछ ऐसा ही नाता है

चालीस करोड़ों का जत्था, गिर-गिरकर भी उठ जाता है।"[334]

हिमालय पर उनकी कई कविताएँ हैं। 'रागिनी' में कवि हिमालय को 'तुंग-हिमांचल मानस चंचल, निर्मल जल की धारा' और 'वन पर्वत से नीचे उतरी, झरी श्रृंग से आज प्रिय' कहकर याद किया है। 'पंचमी' की 'हिमांचल' शीर्षक 'हिमालय' पर लिखी हिन्दी की श्रेष्ठतम कविताओं में से है। "राष्ट्रीय धारा के कवि दिनकर की भी प्रसिद्ध कविता का शीर्षक हिमालय ही है, लेकिन दिनकर जी के लिए हिमालय वर्तमान के पतन और अतीत के गौरव को याद कर आंसू बहाने का माध्यम है जबकि राष्ट्रीयता को, भारतीयों की सांस्कृतिक चेतना को, भारत की नैसर्गिक सुंदरता के साथ अंतरंग आत्मीय सूत्र में पिरोकर प्रस्तुत करने वाले कवि नेपाली के लिए हिमालय भारत की अस्मिता और पहचान का प्रतीक है।"[335] कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"आज धरा से ऊपर उठकर / कवि, विशाल हिमगिरि को देखो

चली गई है दूर-दूर तक / यह ऊँची ऊँची गिरिमाला।"[336]

डॉ. सतीश कुमार राय ने उनके काव्य में प्रकृति की अभिव्यक्ति पर लिखा है- "नेपाली के प्रकृति चित्रण का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे प्रकृति के समग्र कवि हैं, संपूर्ण प्रकृति के कवि हैं। उनकी कविताओं का लगभग अर्द्धांश प्रकृति को ही समर्पित है। इतना ही नहीं, वे अपने पहले काव्य संग्रह से लेकर अंतिम कृति तक उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया है। यह प्रमाण है

---

[333] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75

[334] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 18

[335] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 100

[336] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 45

कि प्रकृति के प्रति नेपाली का प्रेम किसी कालावधि या प्रवृत्ति के आग्रह के कारण नहीं है। वे नैसर्गिक रूप से प्रकृति के कवि हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति का प्रेम है और प्रेम की प्रकृति है। इस अर्थ में वे आधुनिक हिन्दी कविता में न केवल प्रकृति के प्रतिनिधि कवि हैं, बल्कि उसके अकेले संपूर्ण कवि भी हैं।"[337] वे प्रकृति के साथ अपने को एकात्मक कर आत्मीयता दिखाते हैं। उनका प्रकृति वर्णन सरल, सहज एवं जीवंत है। उहोंने 'सहजता' की कठिन साधना की है।

5.2 नेपाली के काव्य में प्रेम और सौंदर्य

गोपाल सिंह 'नेपाली' मूलत: प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। निराला की तरह इनके काव्य में भी एक साथ प्रेम एवं सौंदर्य के साथ विद्रोह की अभिव्यक्ति है। नेपाली को प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन का अलमस्त गायक कहा गया है। उनके काव्य में प्रेम की गहरी संवेदना है। नेपाली ने स्वयं कहा है-

"बस मेरे पास हृदय भर है / वह भी जग को न्योछावर है

लिखता हूँ तो मेरे आगे / सारा ब्रह्माण्ड विषय भर है।"[338]

नेपाली के काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति पर डॉ. सतीश कुमार राय ने लिखा है- "प्रेम नेपाली के काव्य की मूल संवेदना है। इस प्रेम में व्यापकता भी है और गहराई भी। यह प्रेम कुंठा की कुहेलिका को भेद कर पूरे वातावरण में छा जाने वाला आशादीप्त प्रेम है। प्रेम कवि नेपाली के लिए जीवन का मूल मंत्र है। वे प्रेम को मनुष्यता का पर्याय मानते हैं। प्रेम संसार को स्वर्ग बनाने वाली कल्पना है। वह सच्चा पुण्य है। यह संसार का सार है और भवसागर को पार कराने वाली जीवन नौका की पतवार भी।"[339] उन्होंने लिखा है-

"चातक, मोर, पपीहा, कोयल / अपने जीवन के दिन चार

करते हैं आकर दुनिया में / यहीं प्रेम का व्यापार।"[340]

---

[337] गोपाल सिंह नेपाली : प्रतिनिधि कविताएँ - संपादन सतीश कुमार राय, पृ.सं. 6

[338] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 74

[339] नेपाली की सत्तर कविताएँ - चयन एवं संपादन डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 5

[340] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27

नेपाली की प्रेमपरक कविताएँ अत्यंत गंभीर है। उसमें दैहिक प्रेम के प्रति आकर्षण नहीं है। उनका प्रेम किसी बंधन में बाँधता नहीं है, बल्कि मुक्त करता है। उनकी 'प्रेम' शीर्षक कविता को देखिए-

"तुम कब समझोगे नंदन वन के / सुंदर, सरल, सुमन, सुकुमार
इठला-इठला कर करते हैं / कुछ दिन वन-समीर से प्यार।"[341]

नेपाली का प्रेम प्रकृति से भी है। उनके प्रेम का संस्पर्श पेड़-पौधे, पशु-पक्षी से लेकर प्रेमी-प्रेमिका तक है। उनके लिए प्रेम का महत्त्व इतना अधिक है कि वह उस तीर्थ की यात्रा करना चाहते हैं, जहाँ प्रेम की पूजा होती है-

"चाहे करूँ न पुण्य जनम भर, मिले न यश जग में अक्षय
चाहे कर न पाऊँ न यहाँ मैं सोने-चाँदी का संचय
किंतु जहाँ भगवान प्रेम की होती है पूजा सविनय
करूँ तीर्थ यात्रा उस जग की, यह मेरे तन का निश्चय।"[342]

कवि नेपाली के लिए प्रेम किसी ईश्वर से कम श्रेष्ठ और पवित्र नहीं है। उनके लिए प्रेम सर्वोपरि है। कवि कहता है कि उस ईश्वर ने ही उसे वह दृष्टि दी है, जिसने उसे सभी बंधनों से मुक्त कर दिया है। सभी को जीवन ईश्वर ने ही दिया है। जिस ईश्वर ने दूसरे को मोह-पाश में बाँध रखा है, उसी ने उसे वह प्रेमानुभूति दी है, जिससे वह मुक्तता के आनंद से भरा है-

"जिसने तुझे दिया धन इतना उसने मुझे दिया है मन
जिसने बेदिल तुझे बनाया उसने किया मुझे निर्धन
जिसने लोचन हीन बनाया तुझको दो लोचन देकर
उसने लोचन-मुक्त बनाया मुझसे दो लोचन लेकर
जिसने भरा लबालब मद से तेरा सोने का प्याला
उसने करूणा के अमृत से मेरा मन घट भर डाला।"[343]

---

[341] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27
[342] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21
[343] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 20

कवि की दृष्टि प्रेम को लेकर व्यापक है। उसका मानना है कि यदि प्रेम जीवन में उलझन उत्पन्न करता है तो यही प्रेम जीवन की सारी गुत्थियों को सुलझा भी आता है। प्रेम से ही मुक्ति के द्वार खुलते हैं-

"हृदय रहे आधार हृदय का, पत्थर भी दिलदार रहे
खिसक पड़ें कड़ियाँ बंधन की, लगा नेह का तार रहे
मचल-मचलकर नंदन वन में विहरे मस्ताना यौवन
चहक उठे अंतर की बुलबुल, जग विमुक्त उद्गार रहे।"[344]

नेपाली कृति 'पंछी' उनकी प्रेमानुभूति की ही अभिव्यक्ति है। दो पंछियों के माध्यम से उन्होंने इसकी कथा को बुना है। स्वयं निराला ने इसकी अकृत्रिम काव्य सौंदर्य की प्रशंसा की है। उनकी प्रेमानुभूति की एक झलक देखिए -

"जग में, जीवन में, यौवन में यह अवसर आता है
सहसा अपना रीता प्याला मधु से भर जाता है
जब गूंगा भी अपना गाना विहंस विहंस गाता है
हृदय-हृदय से प्राण-प्राण से लगता चिर नाता है।"[345]

प्रेम से मनुष्य के जीवन में असाधारण परिवर्तन आता है। प्रेम के संस्पर्श मात्र से ही दुनिया बदल जाती है। प्रेम से जीवन परिवर्तन की एक अनुभूति की बानगी इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

"उमड़ उमड़ आता मानस में रस का स्रोत असाधारण
जग बदला है, बदली दुनिया, बदल गया सब साधारण
आज अचानक फूटी वाणी / घर-घर में गूंजी कल्याणी
जीवन का संगीत भिन्न अब, भिन्न मंत्र, सब उच्चारण
हृदय द्रवित यह लोचन गिले / एक प्रेम सब बंधन ढीले
आई अब वह बेला, यह सब जिसके हित, जिसके कारण

---

[344] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 95
[345] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 29

उमड़-उमड़ आता मानस में रस का स्रोत असाधारण।"[346]

प्रेम हृदय में जहाँ उल्लास का संचार करता है वहीं प्रेम जब टूट जाता है, तो सारी दुनिया हिल जाती है। लेकिन प्रेम की अंतर्वेदना इतनी गहरी और व्यापक होती है कि सच्चा प्रेमी वहीं डूबता-इतराता रहता है। प्रेम की उदात्त अनुभूति को कवि पहचान गया है। इसलिए वह कहता है-

"भीतर रोना, बाहर हंसना, संगिनी जान गया हूँ मैं
नाच गई कांटों में मीरा / झूम-झूम गा गए कबीरा
जग बदला मेरी बारी में / गंगा बनी गहन गंभीरा
इतना है कि प्रेम की वाणी अब पहचान गया हूँ मैं।"[347]

नेपाली के प्रेम में आत्मा का संगीत है। वह देह तक ही सीमित नहीं है। अंतर-सागर की गहराई है, कहीं उछलापन नहीं है। यही कारण है कि प्रेम के मार्ग में बाधक धरम-करम के प्रति अनास्था रखता है-

"हर धरम को दूसरे धरम-करम से बैर है, इस जलन से ही मुझे जनम-जनम से बैर है
और धर्म है कि बेड़ियाँ पड़ी कदम-कदम, एक धर्म प्रेम है कि चाँदनी की सैर है
चाँदनी लगन की है तो प्यार गंग-धार है, तीर हो कि बीच धार नाव तेरी पार है
आज रात चाँद में उभार है, उतार है, चाँद की हथेलियों से एक रात छीन लो।"[348]

नेपाली के प्रेम में रूपाकर्षण भी है। उनका प्रेम रूपाकर्षण से ही प्रारंभ होता है। इसीलिए कवि कहता है-

"है रूप जहाँ बस प्रेम वहीं
प्रिय दर्शन में कुछ खेद नहीं।"[349]

---

[346] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 100
[347] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14
[348] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 115-116
[349] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 48

भले ही नेपाली का प्रेम रूपाकर्षण से प्रारंभ होता है, लेकिन प्रेम होने के बाद वह उसका जीवन सर्वस्व बन जाता है। प्रेम के लिए वह धर्म की दीवारों को वह नहीं मानता। उसके लिए प्रेम ही सारी दुनिया है। इसलिए कवि कहता है-

"मंदिर-मस्जिद गिरजा ले लो
मजहब के खेल तुम्हीं खेलो
मुझको मेरी दुनिया दे दो।"[350]

कवि के लिए प्रेम की अनुभूति गहरी है। उसका प्रेम निर्मल, स्वच्छ एवं पवित्र है। उसे जीवन-दर्पण किसी तीर्थ में नहीं मिलता, उसे वह मिलता है नारी में। तभी तो वह कहता है-

"मंदिर में अर्पण ही अर्पण / तीर्थों में तर्पण ही तर्पण
दर-दर भटका, घर-घर अटका / मुझको न मिला जीवन-दर्पण
वह दर्पण चमन उठा बिजली सी नारी में / मैं प्यार चुराता चला गया अंधियारी में।"[351]

कवि नेपाली का प्रेम स्त्री के बिना अधूरा है। सृष्टि के दो अभिन्न अंग है- स्त्री और पुरुष। दोनों के एकाकार होने से सृष्टि की अर्थवत्ता है। इसीलिए कवि कहता है-

"आधी दुनिया मैं हूँ, आधी तुम हो मेरी रानी
तुमने हमने मिलकर कर दी पूरी एक कहानी।"[352]

उनकी एक प्रेम कविता 'मैं प्यासा भृंग जनम भर का' बहुत ही लोकप्रिय हुई। इस कविता में उन्होंने गहन प्रेम के मर्म को वाणी दी है-

"फिर क्या मधुमक्खी का छत्ता, क्या पर्वत, क्या पत्ता पत्ता
किरणों में, बिजली में लौ में, बस चमक रही उसकी सत्ता
वह सत्ता तो अगम निगम वाली, मेरा तो प्यार मरम भर का

---

[350] गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 171
[351] गोपाल सिंह नेपाली संकलित कविताएँ - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 168
[352] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 49

मैं प्यासा भृंग जनम भर का।"[353]

उनकी एक और लोकप्रिय प्रेम कविता है- 'दीपक जलता रहा रात भर'। उनके प्रेम का दीपक प्रिया के मिलन के स्नेह रस से जलता रहता है। यहाँ मिलन की भूख है, प्रेम की विकलता भी है। लेकिन वासना नहीं।

"मेरे प्राण मिलन के भूखे / ये आँखें दर्शन की प्यासी
चलती रही घटाएं काली / अंबर में प्रिय की छाया सी।"[354]

नेपाली के काव्य में कई जगह प्रेम की कोमल और हृदयस्पर्शी व्यंजना है। नेपाली प्रेम की कोमल संवेदना के सहज कवि हैं। उनके काव्य में कृत्रिमता नहीं है। उनके काव्य में प्रेयसी के प्रति उद्गार की संवेदना को देखिये-

"बोले मधुप फूल की बोली, बोले चाँद समझ लें तारे
गा-गाकर मधुगीत प्रीति के, सिंधु किसी के चरण पखारे
यह पापी भी क्यों न तुम्हारा मनमोहन मुखचन्द्र निहारे
प्रिये, तुम्हारी इन आँखों में मेरा जीवन बोल रहा है।"[355]

नेपाली के काव्य में सौंदर्य की भी सहज अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। वह प्रकृति के साथ पशु-पक्षी, मनुष्य सभी के सौंदर्य का चितेरा है। प्रकृति का प्राकृतिक सौंदर्य उन्हें बहुत प्रिय था। वह प्रकृति को अपलक निहारा करते थे। उनकी सौंदर्य-दृष्टि को समझने के लिए उनकी यह टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है- "रात के 9 बजने का समय है। अभी-अभी पहाड़ की चढ़ाई से थककर मैं एक पहाड़ी बंगले के बाहर शांति और सौंदर्य की खोज में हूँ। 15 हाथ नीचे पहाड़ी नाला भीम वेग से बह रहा है। चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ उचक-उचक कर ताक रही हैं कि इतने में चन्द्रोदय होता है। चारों ओर दौड़-दौड़कर चन्द्रमा की नटखट किरणें पहाड़ियों के 'जोबन' झलका देती हैं। मेरा कवि हैरान,

---

[353] चुनी हुई कविताएँ : गोपाल सिंह नेपाली, परिचय एवं चयन - सुरेश सलिल, पृ.सं. 21
[354] नवीन - - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14
[355] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 98

अवाक, मुग्ध और गदगद होकर दृष्टि फेंकता है, किंतु चन्द्रमा का कहीं अता-पता ही नहीं। वह पहाड़ी के उस ओर रह गया। ऐसे ही इंसपिरेशन मुझे चाहिए। लिखूंगा क्यों नहीं, यहीं तो लिखूंगा।"[356]

नेपाली के सौंदर्य प्रियता को प्रकृति के संदर्भ में हम पहले ही देख चुके हैं। ग्राम्य युवती के नैसर्गिक सौंदर्य और लावण्यता की स्वाभाविक छवि की एक झलक यहाँ द्रष्टव्य हैं-

"मैंने यौवन की लहरों में, झिलमिल स्वर्णपरी देखी है
घूंघट था तारों के नभ सा, मेघ खंड सा उड़ता आंचल
उस घूंघट के झीने पर से झांक रहा था शशि-मुख उज्ज्वल
जग में उसकी नई जवानी पूनम की चाँदनी बनी थी
उसकी छवि यौवन-वसंत में फूलों सी निखरी देखी है।"[357]

नेपाली का कवि रूप ऐसे सौंदर्य का उपासक है, जो आत्मीयता से भरा है। यही कारण है कि वे प्रेयसी में अपने जीवन की मुखरता को अनुभव करते हैं-

"प्रिय, तुम्हारी इन आँखों में मेरा जीवन बोल रहा है
देखा मैंने एक बूंद से ढका जरा आँखों का कोना
थी मन में कुछ पीर तुम्हारे, पर कहीं कुछ रोना-धोना
मेरे लिए बहुत काफी है आँखों का यह डब-डब होना।"[358]

नेपाली ने रूप और सौंदर्य के अनेक गीत रचे हैं। उनके सौंदर्य की अत्यंत मोहक छवि की एक बानगी देखिए-

"सौंदर्य तुम्हारा सूर्योदय, संध्या हो, आधी रात हो
दर्शन से खिलता मुग्ध हृदय जैसे कोई जलजात हो।"[359]

नेपाली की अप्रतिम सौंदर्य की एक अद्भुत अभिव्यक्ति और देखिए-

---

356 पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14-15
357 पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 127
358 पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 98
359 असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 37

"तुम गौर वर्ण, पट पीत श्याम / शोभा-सुषमा नयनाभिराम

पूर्णिमा तुम्हारे हँसने में / ऋतुराज तुम्हारे बसने में

....

उर्वशी विश्व सुन्दरी एक / जग तम सा बैठा ऊँघ रहा

जल रहा तुम्हारा रूप दीप।"[360]

सौंदर्य का दैहिक चित्र तो प्राय: सभी कवियों में मिलता है, लेकिन सच्चे कवि का सौंदर्य देह पर नहीं मन पर केन्द्रित होता है। उनकी कविता 'चन्द्रमुखी' जो धर्मयुग में छपी थी, जिसे सतीश कुमार राय ने नेपाली की असंकलित रचनाएँ में 'चुनरिया झूठी है' शीर्षक से संकलित किया है काफी चर्चित एवं लोकप्रिय हुई। यहाँ कवि ने बहिरंग छवियों के साथ सौंदर्य की आंतरिक कोमलता पर दृष्टिपात किया है-

"मृगनयनी, पिकबयनी, तेरे सामने बंसुरिया झूठी है

रग-रग में इतने रंग भरे रंगीन चुनरिया झूठी है

मुख भी गोरा इतना तेरा कि बिन चंदा के पूनम है

अलकें-पलकें इतनी काली घनश्याम बदरिया झूठी है,

रग-रग में इतने रंग भरे, रंगीन चुनरिया झूठी है।"[361]

नेपाली सौंदर्य चित्रण में अपने समकालीन कवि बच्चन और दिनकर से पृथक दिखाई पड़ते हैं। दिनकर के काव्य में "सौंदर्य-पिपासा के मनोरम चित्र हैं और उर्वशी तो जैसे नारी के संपूर्ण देह-सौष्ठव का मांसल चित्र उकरने वाली चित्रशाला है।"[362] दिनकर और बच्चन दोनों नारी के शरीर का अंकन करते हैं और वह भी बाहरी सौंदर्य का। नेपाली का सौंदर्य मन के सौंदर्य पर अधिक केन्द्रित है। नेपाली ने स्त्री सौंदर्य को जिस रूप में देखा है, उसकी बानगी देखिए-

---

[360] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 96

[361] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 39

[362] गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 123

"तू पढ़ती है मेरी पुस्तक, मैं तेरा मुखड़ा पढ़ता हूँ
तू चलती है पन्ने-पन्ने, मैं लोचन लोचन बढ़ता हूँ।"[363]

नेपाली के काव्य में जगह-जगह यौवन की अभिव्यक्ति हुई है। उनके काव्य में यौवन की उद्दाम गति और प्रवाह के साथ यौवन का मूर्तिमान स्वरूप भी अभिव्यक्त हुआ है। कवि कहता है-

"पंचभूत का पुतला मुझको समझो तो नादानी
यौवन की प्रतिमा पर चढ़ता है मस्ती का पानी
जितने जीव जगत में आये उठा चलेंगे डेरा
रह जाएगी मस्ती मेरी हँसता यौवन मेरा।"[364]

यौवन असीम ऊर्जा का प्रतीक है। युवा ही क्रांति का बिगुल फूँकते हैं। कवि कहता भी है-

हैं जीवन हम, हैं यौवन हम, हैं यौवन के उन्माद हमीं
जो हिला-डुला दे दुनिया को उस विप्लव के सिंहनाद हमीं
जिस पर अवलम्बित क्रांति प्रबल वह पत्थर की बुनियाद हमीं
जिसमें है साहस, शक्ति भरी वह ब्रह्मा की ईजाद हमीं।"[365]

उनकी एक बड़ी ही प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कविता है- 'भाई-बहन'। यह कविता स्वतंत्रता संग्राम में जूझ रहे सभी युवक-युवतियों की सशक्त अभिव्यक्ति का प्रतीक है। यहाँ क्रांति के लिए जूझ रहे युवक-युवतियों की ओजस्वी वाणी की एक अभिव्यक्ति देखिए-

"तू चिनगारी बनकर उड़ री, जाग-जाग मैं ज्वाल बनूँ
तू बन जा हहराती गंगे, मैं झेलम-बेहाल बनूँ
यहाँ न कोई राधा-रानी वृंदावन वंशी वाला
तू आँगन की ज्योति बहन री मैं घर का पहरे वाला।"[366]

---

[363] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 46
[364] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 81
[365] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 82
[366] रागिनी - - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51

नेपाली के काव्य में यौवन सिर्फ मस्ती का नाम नहीं है। इनका यौवन बच्चन की तरह हाला-प्याला में डूबे रहने का नाम नहीं है और न ही दिनकर की तरह यौवन की मस्ती और कर्म चेतना के बीच अनिवार्य द्वंद्व को रूपायित करता है। इनके काव्य में यौवन एकपक्षीय नहीं है। कवि नेपाली यौवन को एक सकारात्मक और सृजनात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। वह यौवन की मस्ती के अलमस्त गायक हैं। उनमें अनुभूति की प्रवणता है। उनकी उमंग और मस्ती का मर्म उनके जीवनानुभव में है। यौवन कुछ कर गुजरने का नाम है। युवकों को क्रांति के लिए प्रेरित करती इन पंक्तियों को देखिए-

"अब आए वे दिन जीवन में / जिनको यौवन कहते हैं
आठों पहर भस्म के पुतले / भस्म रमाए रहते हैं
मुट्ठी खोल चले जो जग से / उनके लिए कहानी है
जिनकी मुट्ठी बंद, जवानी / उनकी बढ़ी दीवानी है।"[367]

5.3 नेपाली के काव्य में स्त्री-दृष्टिकोण

नेपाली अपने समय के एक सजग कवि थे। स्त्री के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही सकारात्मक था। वे नारी को पुरुष की सहचरी मानते थे। वे नारी को सिर्फ उपभोग की वस्तु या श्रृंगार की वस्तु मानने के पक्ष में नहीं थे। वे नारी को पुरुष का अभिन्न अंग मानते थे। उनका मानना था कि स्त्री पुरुष की आदि सहचरी है, जो पुरुष के जीवन को सुखमय एवं संपूर्ण बनाती है। उनका यह भी मानना था कि स्त्री आधी दुनिया है। आधी दुनिया पुरुष है। स्त्री-पुरुष मिलकर ही एक संपूर्ण दुनिया बनती है। कहने का अर्थ है कि वे नारी को सही अर्थों में अर्द्धांगिनी मानने के पक्षधर रहे हैं। स्त्री के बिना पुरुष की दुनिया आधी है, अधूरी है। तभी तो वे कहते हैं-

"आधी दुनिया मैं हूँ, आधी / तुम हो मेरी रानी
तुमने हमने मिलकर, कर दी / पूरी एक कहानी।"[368]

---

[367] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 41

[368] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 49

नेपाली के काव्य में कई ऐसे प्रसंग हैं, जहाँ स्त्री सहचरी के रूप में चित्रित हुई है। स्त्री का साहचर्य पाकर ही पुरुष अपने जीवन में सुख पाता है। तभी तो वे कहते हैं-

"लहर-लहर पर कब तैरेंगे मेरे मंजुल गान सखी
होंगे कब पूरे ये मेरे जीवन के अरमान सखी
कुंजों के झुरमुट में होगी आँखों की पहचान सखी
कब मिल पावेंगे गुपचुप में दोनों दिल नादान सखी
कह तो दे कब मिल जावेगा, मुझको मेरा प्यार सखी
इसी प्रतीक्षा में कटते हैं, जीवन के दिन चार सखी।"[369]

नेपाली तो प्रिया और प्राण को एक मानते हैं। उनके लिए प्रिया और प्राण में अंतर ही नहीं है। प्रिया ही जीवन है, प्रिया ही धड़कन है। प्रिया के बिना जीवन क्या?

"डोरी के दो मुँह जैसे ही प्राण और तुम एक प्रिए
जग-जीवन यौवन अभिलाषा की मृदु-मृदु उद्रेक प्रिय।"[370]

नेपाली का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण का पता तो इन पंक्तियों को देखकर भी लगाया जा सकता है-

"जिसका प्रेम मेरे लिए आषाढ़ का पहला दिन है
जिसकी बड़ी-बड़ी आँखें में मेरी दुनिया छिपी हुई है
जिसके होंठों में मुझे सारी मुसीबतों का जवाब मिलता है
जिसके संध्या की तरह मेरे सामने आते ही
मेरे मन-मंदिर के सारे दीपक जल उठते हैं
उसी
पहले क्षण की तरह नवीन

[369] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 29
[370] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 20

पहले झोंके की तरह मतवाली

आंसू की तरह दुबकी-सहमी प्यारी

अपनी रानी को।"[371]

उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'भाई-बहन'। कहने को तो यह एक आह्वान गीत है। लेकिन इस गीत के संदर्भ कई मायनों में परंपरा से हटकर हैं। वे भाई-बहन के रूप में स्त्री-पुरुष को एक साथ चलने का आह्वान करते हैं। इस गीत का संदर्भ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ा है। वे उस आंदोलन में स्त्री-पुरुष सबकी भागीदारी चाहते हैं। उनका मानना है कि स्त्री के सहयोग के बिना, स्त्री की सहभागिता के बिना कोई आंदोलन हो या लड़ाई संपूर्ण रूप से नहीं जीती जा सकती है। राष्ट्र जागरण के लिए वे स्त्री को पुरुष के साथ देखना चाहते हैं। उनका कहना है-

"तू चिनगारी बन कर उड़ री जाग-जाग में ज्वाल बनूं

तू बन जा हहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल बनूं

आज बसंती चोला तेरा, मैं भी सज लूँ लाल बनूं

भू भागिनी बन क्रांति काली, मैं भाई विकराल बनूँ।"[372]

नेपाली स्त्रियों की पीड़ा से व्यथित थे। उन्होंने न केवल उनके प्रति अपनी संवेदना प्रकट की, बल्कि पुरुषवादी वर्चस्व पर सवाल भी उठाये। अभागिनी की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

"दर्द से भरा है गला और मन में पीर है

सूखा पड़ा है भाग में, लेकिन नयन में नीर है

टूट-टूट आँसुओं में जिंदगी जंजीर है

बज रही खनन-खनन-खनन नदी की धार में

किस चमन का फूल यह सिसक रहा है धूल पर

रोना भी था इसको ही क्या अब किसी की भूल पर

[371] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 5

[372] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51

पत्ता क्यों यह पतझड़ का उड़ रहा बहार में।"[373]

नेपाली के काव्य में स्त्री के कई रूप चित्रित हैं। एक रूप पत्नी का है, घर की मालकिन का है। वह इस रूप में अपनी पूरी तन्मयता के साथ परिवार के साथ खड़ी रहती है। वह अपने परिवार के लिए अपने सारे सुख, सारी आकांक्षाओं का त्याग कर देती है। वह खुद ही धनोपार्जन के लिए पति को हँसकर परदेश भेज देती है और उसकी मंगलकामना करती हुई प्रतीक्षा करती है-

"बासमती का चावल दूँगी, गंगाजल के पान में
सोने का दूं सेज अछूती सर्वस दूंगी दान में
दूंगी ऐसे फूल जिसे कोई न भौंरा जानता
दूंगी ऐसी प्यार जिसे कोई नहीं पहचानता
डाली-डाली फूल खिले हैं, मस्ती है हर बात में
ओ परदेशी बालम आजा आधी-आधी रात में।"[374]

उनकी एक कविता है 'बाबुल तुम बगिया के तरूवर'। इस कविता की चर्चा स्त्री-विमर्श के संदर्भ में भी महत्त्वपूर्ण है। उनकी यह लंबी कविता स्त्री-जीवन को संपूर्णता में समेटे हुए हैं। डॉ. सतीश राय के अनुसार- "नेपाली अपनी कविताओं में सार्थक स्त्री-विमर्श भी करते रहे हैं। इसमें कन्या के जन्म से लेकर उसके महाप्रस्थान तक की व्यथा रेखांकित हुई है।"[375] आज के दौर में स्त्री-विमर्श स्थापित भले ही हो चुका है, लेकिन स्त्री आज भी पीड़ित है, शोषित है, उत्पीड़ित है।

आज जब कन्या को जन्म लेने से पहले ही भ्रूण हत्या कर दी जा रही है तो ये पंक्तियाँ हमारी संवेदना पर गहरे तक चोट करती है-

"जनम लिया तो जले पिता-माँ, यौवन खिला ननद-भाभी
ब्याह रचा तो जला मुहल्ला, पुत्र हुआ तो बन्ध्या भी

[373] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 89
[374] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 55
[375] गोपाल सिंह नेपाली - डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 95

जले हृदय के अंदर नारी, उस पर बाहर दुनिया सारी"[376]

उनकी यह महत्त्वपूर्ण कविता स्त्री विमर्श के सभी महत्त्वपूर्ण आयामों को अपने अंदर समेटे हुए हैं। उनकी स्त्री सवाल करती है-

"जनम-जनम जग के नखरे पर, सज-धज कर जायें वारी
फिर भी समझे गये रात-दिन हम ताड़न के अधिकारी
पहले गये पिया जो हमसे, अधर्म बने हम यहाँ अधम से
पहले ही हम चल बसें, तो फिर जग बाँटे लड़ियाँ रे।"[377]

विवाह स्त्री-पुरुष के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। विवाह में स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के प्रति समर्पित होते हैं। एक-दूसरे के प्रति प्रीत निभाने की कसमें खाते हैं। लेकिन नेपाली जी विवाह संस्था पर सवाल उठाते हुए कहते हैं-

"मंत्र पढे सौ सदी पुराने, रीत निभाई प्रीत नहीं
तन का सौदा करके भी तो पाया मन का मीत नहीं।"[378]

स्त्री-विमर्श के तौर पर निम्न पंक्तियाँ भी द्रष्टव्य हैं-

"वेद-शास्त्र थे लिखे पुरुष के, मुश्किल था बच कर जाना
हारा दाँव बचा लेने को पति को परमेश्वर माना
दुल्हन बनकर दिया जलाया, दासी बन घर-बार चलाया
माँ बन कर ममता बाँटी, तो महल बनी झोपड़ियाँ रे।"[379]

निष्कर्ष के तौर पर देखें तो उनकी एक ही कविता 'बाबुल तुम बगिया के तरूवर' स्त्री विमर्श के संपूर्ण आयाम को उद्घाटित करने में सक्षम है। उन्होंने अपने संपूर्ण काव्य में स्त्री को पुरुष की

---

[376] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 87
[377] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 88
[378] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 86
[379] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 87

सहचरी के रूप में देखा है। वे स्त्री के संघर्ष को, उसके यातनापूर्ण जीवन को पूरी संवेदना के साथ अभिव्यक्त करने से भी नहीं चूके हैं।

5.4 नेपाली के काव्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना एवं इतिहासबोध

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उनकी राष्ट्रीय चेतना के कई आयाम हैं। उनमें राष्ट्र की चिंता है तो राष्ट्र की मुक्ति की आकांक्षा भी। राष्ट्र की प्रगति की अभिलाषा है तो सुरक्षा की चिंता भी। नेपाली ने जब कविता लिखना प्रारंभ किया, उस समय भारतीय राजनीति में गाँधीजी छाये हुए थे। चम्पारण के रहने वाले नेपाली के यहाँ गाँधीजी ने सफल चंपारण सत्याग्रह किया था। जनता में गाँधीजी की छवि राष्ट्र नायक की बन चुकी थी। नेपाली पर भी गाँधीजी का प्रभाव पड़ा था। उनकी कई कविताओं पर गाँधीजी का स्पष्ट प्रभाव है। डॉ. सतीश राय ने इस संबंध में लिखा है कि- "कवि अपने समय की हर हलचल, हर आहट का निहितार्थ जान लेता है। महात्मा गाँधी के प्रेरणादयी नेतृत्व को वह राष्ट्र की मुक्ति के लिए अपेक्षित मानता है। उसे ज्ञात है कि महात्मा जी के लिए राष्ट्र की मुक्ति से बढ़कर दूसरा कोई अभियान नहीं है। वे मुक्ति के अग्रदूत हैं। इसीलिए वे सत्याग्रह को, अहिंसा और करूणा को मुक्ति का माध्यम बनाते हैं। पाशविकता और क्रूरता से मानव समुदाय को मुक्त करवाना भी गाँधीजी का ध्येय रहा है।"[380] नेपाली ने गाँधीजी पर 'मोहन से', 'स्वागत', 'अमर सेनानी बापू' एवं 'बापू तुम्हारी प्रार्थना' शीर्षक कविताएँ लिखी हैं। उनकी 'सत्याग्रह' शीर्षक कविता भी गाँधीवाद पर उनकी गहरी आस्था को ही प्रकट करती है। गाँधी जी पर अपनी पहली कविता 'मोहन से' में गाँधी जी के महत्त्व को बताते हुए लिखते हैं-

"शाही महलों तक कुटियों से तुझे हमारा ध्यान रहा
'मोहन' पर कुर्बान बराबर सारा हिन्दुस्तान रहा
उजलों के काले दिल पर तूने सच्चा नक्शा खींचा
उजड़ा 'लंकाशायर' अपने गीले आँसू से सींचा।"[381]

---

[380] गोपाल सिंह नेपाली - डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 30
[381] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 84

गाँधीजी दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए सन् 1931 में लंदन गये थे। वहाँ से लौटने पर गाँधी जी के सम्मान में नेपाली ने 'स्वागत'शीर्षक से कविता लिखी। इस कविता में भारत के संघर्ष और उसकी दीनता का वर्णन है। इसका स्वर उद्बोधन का है। कवि लिखता है-

"उतर-उतर जल्दी इस तट पर, गिन माँ के दिल की धड़कन
देख नाचने को आँगन में आतुर है अब नव-यौवन
बचपन बीता, मरा बुढ़ापा आया है अब पागलपन
बहती चारों ओर हवा है उबली आहों की सन सन
बागडोर ले हाथों में अब, बलिवेदी पर रथ ले चल
जिस पथ से गत वर्ष गये थे हमें वही अब पथ ले चल
जितने हैं ये नाग भयंकर उन सबको तू नथ ले चल
छोड़-छोड़ अब सात समुन्दर गंगा ही को मथ ले चल।"[382]

उनकी 'सत्याग्रह' शीर्षक कविता में गाँधीजी के अहिंसा और सत्याग्रह की महिमा बतायी गयी है। इससे नेपाली की गाँधीजी पर गहरी आस्था का पता चलता है-

"है अपूर्व यह युद्ध हमारा हिंसा की न लड़ाई है
नंगी छाती की तोपों के ऊपर विकट चढ़ाई है
तलवारों की धार मोड़ने गर्दन आगे आई है
सिर की मारों से डण्डों की होती यहाँ सफाई है
मर-मिटने में ही होता है मान यहाँ बलवानों का
ऐसी-वैसी यह न लड़ाई, महासमर मरदानों का
जिसमें अंत नहीं आहुति का, प्राणों के बलिदानों का।"[383]

---

[382] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 85-86
[383] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 83

नेपाली जी ने गाँधी जी के निधन के बाद उन पर दो कविताएँ लिखीं- 'अमर सेनानी बापू' एवं 'बापू, तुम्हारी प्रार्थना'। 'अमर सेनानी बापू' कविता बहुत ही महत्त्वपूर्ण कविता है। यह कविता गाँधी जी के महत्त्व को बताती है। इसमें पूरा स्वाधीनता आंदोलन का इतिहास समाया हुआ है। यह कविता नेपाली जी ने गाँधी जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखी थी-

"औरों के सुख को रोते थे, अपने सुख का ध्यान न था
झुका दिया साम्राज्य, मगर उनको कुछ अभिमान न था
गये कभी काबा न का कलीसा, हृदय पावनी गंगा जी-सा
जीवन था बहता पानी-सा, तन-मन से लगते थे ईसा
तन पर खाई तीन गोलियाँ, सबको छलते चले गये
लिया स्वराज्य अहिंसा से, इतिहास बदलते चले गये।"[384]

नेपाली की आस्था गाँधी जी में थी। लेकिन उनका स्पष्ट मानना था कि अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ता है। आजादी लड़ने से मिलती है, भीख माँगने से याचना करने से नहीं। वे आजादी के लिए विद्रोह को आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि प्राणों की बाजी लगाकर ही आजादी पायी जा सकती है। गाँधीजी के प्रभाव में रहते हुए भी वे इस मामले में गाँधीजी से अलग थे। गाँधीजी से असहमति का स्वर उनकी कई कविताओं में है। उनका कहना था कि किसी भी देश या समाज को बिना संघर्ष किए कोई अधिकार नहीं मिलता। उन्होंने लिखा है-

"सिद्धांत, धर्म कुछ और चीज, आजादी है कुछ और चीज
सब कुछ है तरू-डाली पत्ते, आजादी है बुनियाद बीज
इसलिए वेद-गीता-कुरान दुनिया ने लिखे स्याही से
लेकिन लिखा आजादी का इतिहास रूधिर की धार से।"[385]

---

[384] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 50
[385] हिमालय ने पुकारा - - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 62

नेपाली आजादी की लड़ाई को बहुत ही महत्त्वपूर्ण मानते थे। उन्होंने आजादी के लिए लड़ी गई पहली लड़ाई 1857 को इस रूप में याद किया है-

"अठारह सौ सतावन को ऐसी आँधी आई थी
पहली बार करोड़ों ने मिलकर तलवार उठाई थी
नगर-नगर भड़की चिंगारी, उजड़े महल कुटी फुलवारी
जीत गए पर अत्याचारी, रही अधूरी क्रांति हमारी।"[386]

नेपाली की राष्ट्रीय कविताओं में उद्बोधन का स्वर है। वे उद्बोधन द्वारा राष्ट्र की जनता को जगाना चाहते हैं। वे जनता को दृढ़ संकल्प होकर संघर्ष करने का आह्वान करते हैं। 'देशदहन', 'टुकड़ी' और 'भाई बहन' जैसी कविताओं में उनकी राष्ट्रीय चेतना देखते ही बनती है। 'टुकड़ी' शीर्षक कविता लिखने के लिए नेपाली को ब्रिटिश सत्ता का कोपभाजन भी बनना पड़ा था। 'टुकड़ी' कविता एक छोटी सी कविता है। लेकिन इसमें उद्बोधन का स्वर गहरा है। यह कविता युद्ध में बची हुई टुकड़ी को आगे बढ़कर विजयी होने का आह्वान करती है। "यह कविता जहाँ एक ओर वीरों की राष्ट्रभक्ति को व्यंजित करती है, वहीं उन कायरों का चरित्र भी उजागर करती है, जो टाई पहनकर अंग्रेजों की खुशामद करने में ही अपनी सार्थकता समझते हैं।"[387] निम्न पंक्तियाँ देखिए-

"चल बढ़ बची हुई टुकड़ी अब, कर न विचार तनिक क्या बीता!
कदम-कदम पर ताल दे रहा, गरज दमक, हुँकार पलीता!
मरते हैं डरपोक घरों में बाँध गले रेशम का फीता!
यह तो समर, यहाँ मुट्ठी भर, मिट्टी जिसने चूमी, जीता।"[388]

'भाई बहन' शीर्षक कविता उनकी एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं लोकप्रिय कविता है। यह कविता भाई-बहन के रूप में पूरी युवा पीढ़ी को राष्ट्र की मुक्ति के लिए आगे बढ़ने का आह्वान करती

---

[386] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 47
[387] स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 75-76
[388] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 45

है। नंद किशोर नंदन ने इस कविता के संदर्भ में लिखा है- “ ‘भाई-बहन’ शीर्षक कविता राष्ट्रीय संग्राम के संदर्भ में युवा पीढ़ी के उद्दाम विद्रोह की सशक्त अभिव्यक्ति है। यहाँ भी यौवन के विद्रोही मुद्रा के दर्शन होते हैं। कहना न होगा कि तरूणाई के अप्रतिम गायक भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी ही नेपाली जी के प्रेरणास्रोत थे। यही कारण है कि दद्दा के समान ही उनकी कविताओं में यौवन और विद्रोह की प्रखर अभिव्यंजना मिलती है।”[389] देश की मुक्ति के लिए भाई बहन को जगाते हुए कहता है-

“तू चिनगारी बनकर उड़ री, जाग-जाग मैं ज्वाल बनूँ
तू बन जा हहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल बनूं।
आज बसंती चोला तेरा, मैं भी सज लूँ, लाल बनूँ
तू भगिनी बन क्रांति कराली, मैं भाई विकराल बनूँ।”[390]

राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति उनकी कई कविताओं में है। ‘विशाल भारत’ उनकी एक ऐसी ही महत्त्वपूर्ण कविता है। इसमें भारत के भूगोल को, उसके सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को, उसकी आध्यात्मिक उपलब्धियों को एवं उसकी मानवतावादी दृष्टि को रूपायित किया गया है। ऐसी ही एक अन्य कविता है ‘भारत माता’। इसमें भी भारत की गौरवशाली परंपरा का स्मरण है। साथ ही यह कविता पराजयबोध से मुक्त होकर संघर्ष कर अपनी खोयी प्रतिष्ठा प्राप्त करने का आह्वान भी करती है। उनकी कुछ कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें राष्ट्र की महिमा का बखान किया गया है। ‘यह मेरा हिन्दुस्तान है’, ‘मेरा देश गर्वीला’ जैसी कविताएँ देश की महत्ता, स्वाभिमान एवं इसकी गौरवशाली परंपरा को रूपायित करने वाली कविताएँ हैं।

उनकी एक महत्त्वपूर्ण लोकप्रिय कविता है- ‘नवीन’। यह कविता उन्होंने उस समय लिखी थी, जब देश स्वतंत्रता के द्वार पर खड़ा था। इस कविता में नेपाली देश की नई पीढ़ी से नए राष्ट्र के निर्माण के लिए नई कल्पना करने का, देश की व्यथा दूर करने का आह्वान करते हैं। वह कहते हैं कि रोने-धोने

---

389 स्वप्न हूँ भविष्य का - नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 55
390 रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51

से पराधीनता के बंधन नहीं टूटते और न ही दुलार-पुचकार से दरिद्रता और दु:ख का अंत होता है। कवि कहता है-

"जंजीर टूटती कभी न अश्रुधार से, दु:ख-दर्द दूर भागते नहीं दुलार से
हटती न दासता पुकार से, गुहार से, इस गंगातीर बैठ आज राष्ट्रभक्ति की
तुम कामना करो किशोर, कामना करो, तुम कामना करो।"[391]

देश को 1947 ई. में आजादी मिल गई। आजादी मिलने के बाद देश के सामने कई चुनौतियाँ थीं। नये राष्ट्र के निर्माण का प्रश्न था। देश दो हिस्सों में बँट चुका था। सांप्रदायिकता के कारण ही देश के दो टुकड़े हो गये थे। सांप्रदायिकता जिस रूप में भी हो, उसने हमेशा लोगों को बाँटने का ही काम किया है। राष्ट्र निर्माण के लिए सांप्रदायिकता का अंत जरूरी है। कवि नेपाली को राष्ट्र की चिंता है। इसलिए वह कहते हैं-

"लाखों बने उसी मिट्टी के, फिर क्यों इतनी जातियाँ
बोली, कपड़े, धर्म, बदलने पर क्यों बदलें पातियाँ
मस्जिद से आ रहे नमाजी, मंदिर को जा रहे समाजी
पर इंसान गले न लगें तो, धर्म नहीं, दीवार है।"[392]

नेपाली ने पाकिस्तान और कश्मीर समस्या पर कई कविताएँ लिखीं। उनका मानना था कि दोनों देश अच्छे पड़ोसी की भांति रहे। उनकी इच्छा थी कि पाकिस्तान में लोकतंत्र की जड़ें गहरी और मजबूत हों। लेकिन पाकिस्तान की नापाक हरकतों से नेपाली काफी दु:खी हुए। वे चाहते थे कि भारत पाकिस्तान के साथ सख्ती से पेश आए और कश्मीर समस्या को जल्द खत्म करें। पाकिस्तान की नापाक हरकतें आज भी जारी है और कश्मीर समस्या जस की तस बनी हुई है। कश्मीर समस्या पर कवि की पंक्तियाँ हैं-

सर झुका पड़ोसी, विदेशियों सुन लो; आजाद सिवाना भारत का कश्मीर है
रावी-रावी का तट हमको प्यारा; उतना जितना गंगा जमुना का तीर है

---

[391] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11
[392] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 52

था और नहीं छुटकारा रे; हमने माना बँटवारा रे

रह गये हमारे हिस्से में; मंदिर मस्जिद गुरूद्वारा रे

तुम लड़े मगर कश्मीर मिला हम से।"[393]

उनकी एक बहुत ही लोकप्रिय कविता है- 'शासन चलता तलवार से'। इस कविता के माध्यम से कवि ने सीधे तत्कालीन देश की सत्ता को सचेत किया था। पाकिस्तानी रेंजरों ने गोलीबारी कर भारतीय मेजर बधवार को मार दिया था। कवि नेपाली तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू को कटघरे में खड़ा करते हैं। वे चाहते थे कि भारत पाकिस्तान की बदमाशी पर कमजोरी से पेश न आकर सख्ती दिखाये और उस पर कड़ी कार्रवाई करते हुए उसे सबक सिखाये। किसी कवि के लिए सीधे प्रधानमंत्री को कटघरे में खड़ा करना आसान नहीं होता। लेकिन नेपाली सत्ता के चाटुकार नहीं थे। वे जनता के कवि थे। निर्भीक थे। इसलिए सीधे प्रधानमंत्री से सवाल करते हैं-

"तुम उड़ा कबूतर अम्बर में, संदेश शांति का देते हो

चिट्ठी लिखकर रह जाते हो, जब कुछ गड़बड़ सुन लेते हो

वक्तव्य लिखो कि विरोध करो, यह भी कागज वह भी कागज

कब राष्ट्र की नाव पार लगी, यों कागज की पतवार से

ओ राही! दिल्ली जाना तो कहना अपनी सरकार से।"[394]

नेपाली ने नेहरू पर एक महत्त्वपूर्ण कविता लिखी है। ऐसे तो नेहरू पर नई कविताएँ लिखी गई हैं, लेकिन जैसी कविता नेपाली ने लिखी है, वैसी दूसरी नहीं मिलती। पाकिस्तान और चीन को लेकर नेपाली का नेहरू से मोहभंग हो गया। उन्होंने कई कविताओं में नेहरू पर कड़ा प्रहार किया है। चीनी आक्रमण से संबंधित उनकी दर्जन भर कविताएँ हैं। 'चालीस करोड़ों को हिमालय ने पुकारा', 'बोमडिला चलो', 'इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो', 'हिन्दुस्तान की ललकार' आदि कुछ लोकप्रिय कविताएँ हैं, जो चीन युद्ध से संबंधित हैं।

[393] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 43

[394] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 60

तत्कालीन समय में जब चीन ने तिब्बत को कब्जे में ले लिया और भारत देखता रह गया था तो उस समय ही उन्होंने चीन के प्रति नेहरू की नीति का विरोध किया था। वे चीन के खतरे को समझ रहे थे। चीनी आशंका को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था-

"है भूल हमारी वह छुरी क्यों न निकाले
तिब्बत को अगर चीन के करते न हवाले
पड़ते न हिमालय शिखर चोर के पाले।"[395]

वे नेहरू को लिखते हैं-

"ओ बात के बलवान अहिंसा के पुजारी
बातों की नहीं, आज तेरी आन की बारी
बैठा ही रहा तू तो गई लाज हमारी।"[396]

नेपाली चीन की रणनीति को समझ रहे थे। उनका मानना था कि भारत तिब्बत को लेकर सजग नहीं होगा तो भारत पर खतरा बढ़ जाएगा। भारत की सीमाएं सुरक्षित नहीं रहेंगी। वे गाँव-गाँव, शहर-शहर घूम घूमकर जनता को जगाते रहे। चीन के प्रति सावधान करते रहे। उनकी आशंकाएं सच साबित हुई। भारत की सीमा पर चीन की घुसपैठ आज भी जारी है।

हिमालय पर कई कवियों ने कविताएँ लिखी हैं। नेपाली को भी हिमालय प्रिय था। उनके समकालीन दिनकर को भी हिमालय से प्यार था। हिमालय भारत की गौरवशाली परंपरा का प्रतीक है। हिमालय को कवियों ने भारत का मस्तक कहा है। कवि नेपाली हिमालय को भारत का ताज कहते हैं-

"आजाद परिंदों से कह दो, अब यहाँ विदेशी राज नहीं
है ताज हिमालय के सिर पर, अब और किसी का ताज नहीं।"[397]

---

[395] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 16
[396] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 16
[397] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 31

जब चीन का भारत पर आक्रमण हुआ, तो उन्होंने कविता लिखी- 'हिमालय ने पुकारा'। कवि नेपाली का स्पष्ट मानना था कि भारत तभी सुरक्षित है, जब हिमालय सुरक्षित है। इसीलिए उन्होंने कहा था- 'इन चीनियों को हिमालय से निकालो'। 'हिमालय' नेपाली की कविताओं में कई जगह आया है। कवि हिमालय के महत्त्व को बताते हुए लिखता है-

"भारत का ऊँचा शीश यही, है उत्तर की दीवार यही
हम पहरेदार जगत भर के, तो अपना पहरेदार यही।"[398]

'हिमालय और हम' कविता में नेपाली हिमालय को भारतीयों के लिए प्रेरणा स्रोत मानते हैं। इसलिए लिखते हैं-

"गिरिराज हिमालय से भारत का कुछ ऐसा ही नाता है
चालीस करोड़ों का जत्था, गिर-गिर कर भी उठ जाता है
इतनी ऊँची इसकी चोटी कि सकल धरती का ताज यही
पर्वत-पहाड़ से भरी धरा पर केवल पर्वत राज यही।"[399]

गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य का एक सांस्कृतिक पक्ष है। उन्हें भारतीय संस्कृति की व्यापक समझ थी। उन्होंने कविताओं के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक समझ की अभिव्यक्ति की है। संस्कृति एक जटिल अवधारणा है, जो गंभीर समझ की माँग करती है। संस्कृति का एक पक्ष धर्म से भी जुड़ता है। धर्म और संस्कृति को अलग करके देखा भी नहीं जा सकता है। मनुष्यता ही सबसे बड़ा धर्म है।भारत विभिन्न धर्मावलंबियों का देश है। अनेकता में एकता इसकी पहचान है। आपसी साहचर्य और प्रेम ने इस देश की संस्कृति को जीवंत किया है। नेपाली किसी धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव नहीं रखते। वे सभी धर्मों का समान आदर करते हैं, तभी तो वे कहते हैं-

"वेद, पुराण, कुरान, हमारे अन्तस्तल के मर्म सही
पत्थर से भी नेह लगाना, एक नेह ही धर्म सही

---

[398] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 18
[399] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 18

सही सभी बातें इस जग की पाप-पुण्य दो कर्म सही

जब तक जीवन है तब तक तो काला, गोरा चर्म सही।"[400]

नेपाली का कहना है कि वेद, कुरान आदि धर्मग्रंथ हमारे अन्त:स्थल से जुड़े हुए हैं। वे अपनी आस्था सभी धर्मों में व्यक्त करते हैं। उनका मानना है कि नेह ही सभी धर्मों का मर्म है। पाप और पुण्य यही दो कर्म हैं। सच्चा धर्म तो वही है, जहाँ मनुष्यता का प्रसार है।

भारतीय संस्कृति करूणा से अनुप्राणित रही है। बौद्धों की करूणा भारतीय संस्कृति की अमिट पहचान है। नेपाली अपने काव्य में करूणा के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए कहते हैं-

पीड़ित मन की थोड़ी-सी पीड़ा हरती है करूणा

इस जग में बोझ दु:खी का कुछ कम करती है करूणा

अंतर की गागर इतना छल-छल भरती है करूणा

हल्का-सा धक्का लगते दृग से झरती है करूणा।"[401]

भारतीय संस्कृति सामासिक संस्कृति है। यहाँ सभी धर्मों के लोग आपसी भाइचारे और प्रेम से सदियों से रहते आये हैं। लोक मंगल भारतीयता की पहचान है। सूखे से तप्त धरती को शीतलता प्रदान करने के लिए वे घनश्याम का आह्वान इस प्रकार करते हैं कि वहाँ भारतीय संस्कृति की सामासिकता और लोकमंगल की कलात्मकता और सौंदर्यता देखते ही बनती है-

"मुस्लिम के होंठ कहीं प्यासे, हिन्दू का कंठ कहीं प्यासा

मंदिर-मस्जिद गुरूद्वारा में, बतला दो कौन नहीं प्यासा

चल रही चुराई हुई हँसी, पर सकल बजारिया प्यासी है

घनश्याम कहाँ जाकर बरसे, हर घाट गगरिया प्यासी है।"[402]

---

[400] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 33

[401] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 44

[402] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 104

भारत के लोग उत्सवधर्मी हैं और उत्सवधर्मिता भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न हिस्सा है। नेपाली अपने काव्य में कई जगह इसी उत्सवधर्मिता को रेखांकित करते हैं। भारतीय संस्कृति की उत्सवधर्मिता का एक उदाहरण देखिए-

"यह गीतों का है देश जहाँ चरवाहा विरहा गाता है
सुख हो, दु:ख हो, सौंदर्य यहाँ गीतों में गाया जाता है
कवि से पहले जब गीत मरा, तो अमर निशानी कहाँ हुई
लोगों के आँसू कब सूखे, मुस्कान कहाँ पुरानी हुई।"[403]

भारत को गाँवों का देश कहा गया है। ग्राम्य संस्कृति की झलक इनके काव्य में जगह-जगह मिलती है। गाँवों से शहर की ओर पलायन आम बात है। ग्राम्य जीवन और प्रोषित पतिका की आकांक्षा का एक सुंदर उदाहरण देखिए-

"ओ परदेशी बालम आजा आधी-आधी रात में
बासमती का चावल दूँगी गंगा के पान में
सोने का दूँ सेज अछूती संवेस दूँगी दान में
दूँगी ऐसे फूल जिसे कोई न भौंरा जानता
दूँगी ऐसा प्यार जिसे कोई नहीं पहचानता
डाली-डाली फूल खिले हैं मस्ती है हर बात में
ओ परदेशी बालम आजा आधी-आधी रात में।"[404]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी कविताओं में भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है। उन्होंने सभी धर्मों के प्रति अपना आदर व्यक्त किया है। साथ ही भारत की उत्सवधर्मिता की अभिव्यक्ति भी अपने काव्य में की है।

---

[403] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 96
[404] असंकलित रचनाएँ - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 55

5.5 नेपाली के काव्य में प्रगतिशील चेतना एवं व्यंग्य दृष्टि

गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य में प्रगतिशील चेतना की चर्चा न के बराबर हुई है। उनकी प्रगतिशीलता को न तो प्रगतिशील आलोचक देख पाए और न बौद्धिक आलोचक। प्रगतिशील कवि होने के लिए प्रगतिवाद के ढाँचे में फिट होना जरूरी तो नहीं ही है। जनवादी कहलाना या कम्युनिस्ट या साम्यवादी होना इसका एकमात्र पैमाना तो नहीं ही मानना चाहिए। हर कवि प्रगतिशील है, जो जन की पीड़ा-व्यथा को अपनी अभिव्यक्ति देता है। शोषित उत्पीड़ित जनता से गहरी सहानुभूति ही कवि को प्रगतिशील बनाएगी, न कि किसी खाँचे में फिट होना। जनपक्षधरता ही प्रगतिशीलता की पहचान है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं में जन-प्रतिबद्धता उनकी पहली कृति 'उमंग' से लेकर अंतिम कृति 'हिमालय ने पुकारा' तक में मौजूद है। सुमित्रानंदन ने उनकी परिवर्तनकामी चेतना को रेखांकित करते हुए लिखा है- "नवयुग का भी आपने मुक्त हृदय से स्वागत किया है, उससे 'खोल-खोल मेरे बंधन' कहकर ही आप संतुष्ट नहीं हो गए हैं, प्रत्युत विश्वव्यापी परिवर्तन भी चाहते हैं।"[405] उनकी राष्ट्रीयता सिर्फ अतीत का गौरव गान और वर्तमान की पतनशीलता पर आँसू बहाने वाली है, बल्कि वह जनोन्मुखी होने के साथ समता और भाईचारा से परिपूर्ण भी है।

नेपाली शोषणाधारित व्यवस्था से सांठ-गांठ कर वैयक्तिक सुख भोगने के आकांक्षी कभी नहीं रहे। वे जीवन की हर चुनौती को स्वीकार कर सदैव संघर्ष करते रहे। उन्होंने अपने जीवन में तमाम कठिनाइयों का सामना किया, लेकिन सत्ता से समझौता नहीं किया। जनपक्षधरता को छोड़ सत्ता के चाटुकार बन चुके साहित्यकारों पर कड़ा प्रहार करते हुए उन्होंने लिखा है-

"तुझ सा लहरों में बह लेता, तो मैं भी सत्ता गह लेता
ईमान बेचता चलता तो, मैं भी महलों में रह लेता
हर दिल पर झुकती चली मगर, आंसूवाली नमकीन कलम
मेरा धन है स्वाधीन कलम।"[406]

---

[405] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 8
[406] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75

नेपाली की कविताओं में अभावग्रस्त, पराधीन और उदास भारत की मार्मिक अभिव्यक्ति है। भारतीयों की जीविका का आधार कृषि है। पराधीन और विपन्नत भारत की स्थिति ऐसी हो गई है कि भूखे लोगों को अपने ही लोगों के सामने हाथ फैलाना पड़ रहा है-

"लटक रहा है सुख कितनों का आज खेत में गन्नों में
भूखों के भगवान खड़े हैं दो-दो मुट्ठी अन्नों में
कर जोड़े अपने घरवाले हमसे भिक्षा माँग रहे
किंतु देखते उनकी किस्मत हम पोथी के पन्नों में।"[407]

इस कविता की अगली चार पंक्तियाँ बड़ी ही मार्मिक हैं। भुखमरी को मिटाने के बदले भाग्य और किस्मत को दोष दिया जा रहा है। उनकी स्थिति ऐसी हो गई है कि उनके लिए मृत्यु ही सुखकर जान पड़ती है।

"जग में सुख है मृत्यु हमारी, है आराम मजारों में
जीवन का परिचय पाता है कोई एक हजारों में
अपने आँसू की गंगा में कितने अब तक डूब चले
बाकी का जीवन अटका है इन चिथड़ों के तारों में।"[408]

सन् 1931 ई. में पूना पैक्ट हुआ। इस समझौते के बाद दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। इस दौरान उनकी लिखी गई इन पंक्तियों में दलित की पीड़ा को समझिए-

"जिस बर्तन में छेद हो चुका, देर न उसके चूने में
इसीलिए थी दौड़-धूप रे इतनी उस दिन पूने में
बिछुड़े परिजन मिले बढ़ाते हाथ प्रेम का मिलने का
पर जाता सम्मान हमारा उन हरिजन को छूने में।"[409]

---

[407] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 87
[408] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 87
[409] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 87

कृषकों की दशा अंग्रेजों के समय काफी दयनीय थी। आजादी के बाद से कृषकों की स्थिति में पहले से काफी परिवर्तन आया। लेकिन कृषकों के लिए चुनौयिताँ अभी भी बनी हुई है। उनकी दशा में सुधार तभी होगा, जब वे खुद निद्रा से जगकर कुछ ठोस उपाय करें-

"मानचित्र भारत का अंकित कृषकों की कृश छाया में
सब रहस्य है छिपा हमारी इस निद्रा की माया में।"[410]

उनकी प्रगतिशील चेतना को चित्रित करती एक महत्त्वपूर्ण कविता है- "देख रहे हैं महल तमाशा।" कविता के शीर्षक में ही व्यंग्य छुपा है। मानव सभ्यता का दिनोंदिन विकास हुआ है। कहा जाता है कि हम पहले से सभ्य हुए हैं। तो यह फिर कैसी सभ्यता पनप रही है, जो मानव से मानव के बीच दूरियां बढ़ा रही है-

"कहते हैं, सब सभ्य हो रहे, सीख रहे हैं, जीना सुख से
अलग हो रहा है मानव का ; जीवन अब जीवन के दु:ख से

ऊँचे-ऊँचे महल और भी, ऊँचे हो आपत्ति नहीं कुछ
किंतु जरूरी है क्यों, उजड़े, इन महलों के लिए ग्राम ही।"[411]

इस कविता की अंतिम चार पंक्तियों को देखिए- ये कितनी प्रासंगिक आज भी बनी हुई है। वैश्वीकरण और औद्योगीकरण के कारण किसानों से जमीनें छीनी जा रही हैं। बड़े-बड़े औद्योगिक घरानों के लिए गाँव को वीरान कर शहर बनाये जा रहे हैं। सवाल यही है- "किंतु जरूरी है क्यों उजड़े, इन महलों के लिए ग्राम ही।" नेपाली की इन पंक्तियों में उनकी प्रगतिशीलता द्रष्टव्य है।

भारत में अमीरी और गरीबी की खाई चौड़ी है। अमीरी-गरीबी को मिटाने के लिए कवि विप्लव का आह्वान करता है-

"यहाँ सुखी हैं थोड़े मानव / ज्यादा मानव यहाँ दु:खी हैं

[410] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 88
[411] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 69

चलो दूर सुखियों को छोड़ो / तुम दुखियों की पीड़ा हर दो।

बढ़ो, तुम्हारे बलिदानों से / मानव, जरा उदार बनेगा

बढ़ो, तुम्हारे इन कदमों पर / जीवन बारंबार बनेगा।"[412]

नेपाली जनता से आह्वान करते हैं- आगे बढ़ने के लिए। उन्हें सांत्वना देते हुए कहते हैं- 'बस थोड़ी दूर और चलना है।' फिर इस गुलामी के जंजीरों को तोड़कर नया संसार बसेगा। इस नये संसार में मानव की मानव पर गुलामी न होगी। समरस नया संसार बनेगा। निम्न पंक्तियाँ देखिए -

"दुनिया में न गुलामी होगी / मानव की मानव पर कायम

बढो, तुम्हारे संघर्षों से / एक नया संसार बसेगा

बढ़ो, लगा दें आग चिता पर / आज गुलामी को जलना है

बढ़ो, गीत विप्लव का गाते / थोड़ी दूर और चलना है।"[413]

'नवीन' कविता तक उनकी क्रांतिकारी चेतना और दृढ़ तथा स्पष्ट हो जाती है। वह विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि में पूँजीवाद के जनविरोधी चरित्र को देखते हुए युवकों से आग पर चलने का आह्वान करते हैं-

"तुम आग पर चलो जवान, आग पर चलो ,तुम आग पर चलो,

अब तो समाज की नवीन धारणा बनी ,हैं लूट रहे गरीब और लूटते धनी

संपत्ति हो समाज के न खून से सनी ,यह आंच लग रही मनुष्य के शरीर को

तुम आँच में ढलो, नवीन आँच में ढलो, तुम आँच में ढलो।"[414]

---

[412] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 71

[413] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 72

[414] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 77

पूँजीवाद का एक ही चरित्र है- अधिक से अधिक मुनाफा कमाना। पूंजीवादी व्यवस्था एक ऐसा दैत्य है, जिसका पेट कभी नहीं भरता। वह हर झूठ, फरेब, हिंसा का उपयोग करता है, अपनी व्यवस्था को बनाए रखने में। पूँजीवाद के जिस भयावह रूप से आज दुनिया परिचित हो रही है, उसका पूर्वानुमान नेपाली जी को था। आज पूँजीवाद केन्द्रित होकर कुछ बड़े औद्योगिक-कारपोरेट घरानों में तब्दील हो गया। मनुष्य की स्थिति पूँजीवाद के चक्र में असहाय सी हो गयी है। नेपाली की कई कविताओं में पूँजीवाद विरोधी स्वर हैं। कुछ पंक्तियाँ देखिए-

> "अंबार एक ओर, एक ओर झोलियाँ; संसार एक ओर, एक ओर टोलियाँ
> मनुहार एक ओर, एक ओर गोलियाँ; इस आज के विभेद पर जहीन रो रहा
> तुम अश्रु में पलो कुमार, अश्रु में पलो, तुम अश्रु में पलो।"[415]

नेपाली में गहरा आक्रोश है। उसका कारण है कि जीवन की सारी हँसी-खुशी महलों में कैद हो गई है। झोपड़ियों में भूख और अभाव का अंधेरा गहराता जा रहा है। रोटी का प्रश्न आज भी प्रासंगिक बना हुआ है। 'रोटियाँ गरीब की' की इन पंक्तियों को देखिए-

> "दिन गये बरस गये, यातना गई नहीं
> रोटियाँ गरीब की, प्रार्थना बनी रही
>   विश्व के अधिक दु:खी हो रहे अधिक दु:खी
>   जो रहे अधिक सुखी, हो रहे अधिक सुखी
>   कागजों में रह गयीं, क्रांतियाँ चतुर्मुखी
> राज भी बदल गया, यातना गई नहीं
> रोटियाँ गरीब की, प्रार्थना बनी रहीं।"[416]

किसानों की पीड़ा नेपाली के लिए असह्य है। वे बार-बार किसानों की दयनीय स्थिति की मार्मिक अभिव्यक्ति करते हैं। आज आजादी के 70 वर्षों के बाद भी किसानों की स्थिति में परिवर्तन

---

[415] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 77-78

[416] असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 83

नहीं आया है। भारत सरकार ने औद्योगीकरण और उदारीकरण कर किसानों की दुर्दशा को और बढ़ाने का काम किया है। बाजारवाद ने किसानों की ऐसी दुर्गति कर दी है कि कई किसान हर साल आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं। सबका पेट भरने वाले किसानों की दुर्दशा देखिए-

"सूरज से घर-घर उजियाला, नभ में सबकी दीपक माला
पर क्यों निर्धन का निर्धन है, अन्न जगत को देने वाला
कटे खेत चिल्लाएं, फसलें ले जाने वालों, सुन तो लो
धरती का धन घर-घर बाँटो, कंचन का दरवाजा खोलो।"[417]

उनकी एक कविता है- 'भूदान के याचक से'। इस कविता में नेपाली ने आर्थिक विषमता की गहरी पड़ताल करते हुए इस आंदोलन की निरर्थकता सिद्ध कर दी। विनोबा भावे के खिलाफ लिखने से भी उन्होंने परहेज नहीं किया। विनोबा जी इस कविता को पढ़कर तिलमिला उठे, लेकिन नेपाली के तर्कों का जवाब न दे सके। कुछ पंक्तियाँ देखिए -

"मुसाफिरों से क्या मांगे, धरती से माँग गगन से माँग
मांग देश के लिए भीख तो धन-जन मिला मिलन से माँग
भीख माँगने से निर्धनता जाती तो क्या बात थी
लेन-देन से क्रांति चली जो आती तो क्या बात थी
जब-जब याचक भिक्षा लेगा / निर्धनता को जीवन देगा
धन की सत्ता अमर करेगा / साम्यवाद को लाना है तो छोड़ धनी, निर्धन से मांग
मुसाफिरों से क्या मांगे, धरती से मांग, गगन से मांग।"[418]

विनोबा भावे ने भू-स्वामियों से भूमि माँग कर भूमिहीनों में बाँटकर अपने ढंग से रक्तहीन क्रांति का सपना देखा। नतीजा क्या रहा- यह किसी से छिपा नहीं है। विनोबा जी को सीधे अपनी कविता में संबोधित करते हुए वे कहते हैं-

---

[417] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 100-101
[418] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 155

"हमें कौन समझे कि क्या माँगते हैं / मगर यह विनोबा, दया माँगते हैं

इधर बाँटते हैं, उधर भीख लेकर / भले आदमी से हया माँगते हैं।"[419]

जनकवि नागार्जुन भी सर्वोदय के विरूद्ध कड़े तेवर अपनाते हुए लिखते हैं-

"छील रहे गीता की खाल / उपनिषदें हैं इनकी ढाल

उधर सजे मोती के थाल / इधर जमे सतजुगी दलाल

मत पूछो तुम इनका हाल / सर्वोदय के नटवरलाल।"[420]

विषमता की अतल खाई को तभी पाटा जा सकता है, जब उस व्यवस्था को नष्ट कर दिया जाए। भयावह रूप से बढ़ी आर्थिक समस्या, क्रांति से ही मिट सकती है। तभी तो वे कहते हैं-

"खाई इधर, उधर पर्वत, दोनों को सर कैसे कटे

समतल धारा तभी होगी, जब शैल गिरे खाई भरे

पाप चले आए पुश्तों से, बढ़ते गए रीति-रिश्तों से

अब न मिटेंगे ये किश्तों से,ठोकर से अन्याय उड़ा दे,

आँधी चरण-चरण से माँग।

मुसाफिरों से क्या माँगो, धरती से माँग, गगन से माँग।"[421]

नेपाली का स्पष्ट मानना था कि आँसू बहाने, भीखे माँगने, करूणा का राग अलापने से न तो हम दुश्मन का हृदय परिवर्तन कर सकते हैं और न ही गुलामी की जंजीरों को तोड़ सकते हैं। इसलिए वे कहते हैं-

"जंजीर टूटती न कभी अश्रुधार से

दुखदर्द दूर भागते नहीं दुलार से

हटती न दासता पुकार से, गुहार से।"[422]

---

[419] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 83

[420] नागार्जुन की कविता 'तीनों बंदर बापू के' से

[421] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 158

[422] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11

उनकी शैली कबीर की तरह खरी-खरी कहने की है। समाज की असमानता को वे देख रहे थे। देख रहे थे कि एक तरफ मुट्ठी भर लोग खड़े थे तो दूसरी ओर विशाल गरीब जनता। विशाल जनसमुदाय को लूटकर ही मुट्ठी भर लोग अमीर हो रहे हैं। इसीलिए तो वे कहते हैं- "खा-खाकर के मरती है दुनिया, कितने बेखाये जीते हैं।"[423] समाज की धारणा को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं-

"अब तो समाज की नवीन धारणा बनी
हैं लूट रहे गरीब और लुटते धनी।"[424]

कवि की चाह है-

"मनुष्य माँगता यही, यही मनुष्य मानता
कि हो समाज-राज में मनुष्य की समानता।"[425]

जब सामाजिक व्यवस्था अन्याय और शोषण पर टिकी हो, तो किसी न किसी दिन, क्रांति अवश्य होगी। ऐसे में वर्ग संघर्ष होना अवश्यंभावी है। जनसंघर्ष को लेकर ही कभी जनकवि नागार्जुन ने 'हरिजनगाथा' लिखी थी। जनचेतना से संपन्न कवि नेपाली की इन पंक्तियों को देखिए-

"सामाजिक पापों के लिए चढ़कर बोलेगा अब खतरा
बोलेगा पतितों दलितों के गरम लहू का कतरा-कतरा
होंगे भस्म अग्नि में जलकर धरम करम और पोथी पतरा
और पुतेगा व्यक्तिवाद के चिकने चेहरे पर अलकतरा
सड़ी-गली प्राचीन रूढ़ि के भवन गिरेंगे, दुर्ग ढहेंगे
युग-प्रवाह पर कटे वृक्ष से दुनिया भर के ढोंग बहेंगे
और मनुज के लिए मनुज के द्वार खुले के खुले रहेंगे।"[426]

---

[423] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 34
[424] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 77
[425] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 78
[426] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 31-32

नेपाली को पढ़ते हुए मुक्तिबोध याद आते हैं, जिन्होंने कहा था- "अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे उठाने ही होंगे। तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।"[427] नेपाली भी इस बात को कह रहे हैं। जनचेतना से संपन्न कवि सामंती व्यवस्था और उसकी अपसंस्कृतियों का पोषक नहीं होता। उनका मानना कि जातिवाद, रूढ़िवाद, ऊँच-नीच का भेदभाव, धार्मिक अंधविश्वास सभी प्रगति के बाधक हैं। इसीलिए वे कहते हैं-

"अब घिस गई समाज की तमाम नीतियाँ, अब घिस गई मनुष्य की अतीत रीतियाँ
हैं दे रही चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ, निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार के लिए
तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो।"[428]

उनका मानना कि कवि को जमीन नहीं छोड़नी चाहिए, तभी तो वे कहते हैं-

"उड़ने को उड़ जाए नभ में
पर छोड़े नहीं जमीन कलम।"[429]

नेपाली के काव्य में शोषण से मुक्ति की गई अभिव्यक्तियाँ हैं। वे अंत तक शोषण-उत्पीड़न से मुक्त समरस समाज को देखना चाहते थे। समाज को शोषण-उत्पीड़न, अभाव और यातना से मुक्त करने के लिए ही कहते हैं-

"ऊँचा न हो धनी निर्धन से, गाँव न बिछुड़े सिंहासन से
मानव का हो मोल न अब तो, केवल रुपयों के खन-खन से।"[430]

नेपाली के काव्य के विश्लेषण से यह भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि प्रगतिशील चेतना में वे किसी भी प्रगतिवादी कवि से कम नहीं है। वे जनपक्षधरता के कवि हैं, थे और रहेंगे। प्रगतिशील दृष्टि से उनके काव्य के मूल्यांकन कर ही उनका पुनर्मूल्यांकन करना आज समय की माँग है।

---

[427] मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' से
[428] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11
[429] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75
[430] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 55

नेपाली के काव्य में व्यंग्य यत्र-तत्र दिख जाते हैं। इससे उनकी व्यंग्य-दृष्टि का पता चलता है। उनके पहले काव्य संग्रह ‘उमंग’ की कुछ पंक्तियाँ देखिए-

“छील-छील थाली में रखा / फल खाया तो क्या खाया

घर के पैसे से खरीदकर / मधु लाया तो क्या लाया

हो आनंद मगन, सुख में / गाना गाया तो क्या गाया

घर बैठे-बैठे कुबेर का / धन पाया तो क्या पाया।”[431]

इन पंक्तियों में गहरा व्यंग्य छुपा है। इसमें वैसे लोगों पर गहरा कटाक्ष किया गया है जो विरासत में प्राप्त पद, मान, सम्मान, धन पर घमंड करते हैं। नेपाली वैसे लोगों की मानसिकता पर गहरी चोट करते हैं।

चीन की समस्या पहले भी थी और आज भी बनी हुई है। चीन की आक्रामकता में कहीं कोई कमी नहीं आयी है। आज भी स्थिति गंभीर बनी हुई है। उन्होंने चीन पर व्यंग्य करते हुए कहा था-

“कहने को आदमी है, दिल इनके टीन के हैं

ये कुत्ते खाने वाले, लुटेरे चीन के हैं

सीधे को लुटते हैं, सच्चे को छीनते हैं

मुर्गी को दाने डालो, ये आने बीनते हैं।”[432]

नेपाली की आस-पास की घटनाओं पर नजर रहती थी। पाकिस्तान में कई बार सैन्य तख्ता-पलट हुए। लेकिन पाकिस्तान जैसा पहले था, वैसा ही आज भी बना हुआ है। वहाँ लोकतंत्र की जड़े जमी ही नहीं है। पाकिस्तान पर नेपाली का व्यंग्य देखिए-

“देश भिखारी, शासक दानी, है भविष्य उसकी भिक्षा पर

पड़ा ‘भूत’ है गहन गर्त में, वर्तमान उसकी इच्छा पर

लोग पड़े रहते हैं घर में, बुझी हुई सिग्रेटें जैसे

हृदय तड़पता तो है लेकिन, उसमें ताव नहीं होता है

[431] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 19

[432] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 119

जनता चिल्लाती रहती है, मगर चुनाव नहीं होता है।"[433]

स्वतंत्रता के बाद भारत की राजनीतिक गतिविधियों पर उनका एक व्यंग्य बड़ा ही मार्मिक है-

"वही सूत-चरखा, वही वस्त्र खादी / करें बात अपनी, रटें रोज गाँधी
यहाँ बैलगाड़ी की छत भी न जिसकी / वहाँ भाइयों ने स्पुतनिक उड़ा दी
दिखाते रहे वे नये स्वप्न हमको / नये रूप कहकर सिंगार पुराने।"[434]

आजादी के बाद सत्ता का नया केन्द्र दिल्ली बना। व्यवस्थाएं बदलीं। लेकिन बदलाव जमीन तक अभी भी पहुँचना शेष है। अमीरी और गरीबी की खाई बड़ी है। इसको लेकर नेपाली का एक व्यंग्य द्रष्टव्य है-

"बनी देहली नई, किनारे लगीं बत्तियाँ, रौनक छाई
रुपये के चौंसठ पैसे हैं, ठली अठन्नी, आना, पाई
रेल चल गई, मोटर दौड़ी, शाम-सुबह, नित-चिट्ठी आई
हाँके ठेले बिस्तर ढोए, भूखे लेटे बीन बजाई।
खा-खा के मरती है, दुनिया कितने बे-खाए जीते हैं
बोलो बाबा अलख निरंजन, जाड़ा है, बोरे सीते हैं।"[435]

इसी तरह भारत सरकार पर एक गहरा व्यंग्य देखिए -

"सरकार तुम्हारी देशी है / फिर क्यों दरबार विदेशी है
हथियार विदेश से उधार / कहते हो जंग स्वदेशी है।"[436]

इस तरह हम देखते हैं कि भले ही उनमें व्यंग्य के स्वर यत्र-तत्र हैं, लेकिन उनका स्वर तीखा है।

5.6 नेपाली के काव्य में जीवन मूल्य, संघर्ष, आत्मबोध एवं स्वाधीन कलम का द्वंद्व

नेपाली के काव्य में जीवन मूल्य की निरंतर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। कवि सर्जक के साथ चिंतक भी होता है। वह जीवन के विभिन्न आयामों पर निरंतर चिंतन करता रहता है। यही चिंतन उसकी

---

433 हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 57
434 हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 83
435 रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 34
436 हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 45

रचनाओं में अभिव्यक्ति पाता है। नेपाली के काव्य में मानव जीवन से संबंधित प्रेम, मानव मूल्य, स्वाभिमान आदि की अभिव्यक्ति हुई है। वे सहज जीवन के पक्षधर कवि हैं। वे जीवन के राग के कवि हैं।

मानव के जीवन मूल्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष प्रेम है। नेपाली की कविताओं का एक बड़ा भाग प्रेम कविताओं का है। नेपाली ने प्रेम को जीवन का मूल मंत्र माना है। नेपाली को प्रेम पर गर्व है। उनके लिए प्रेम जीवन का पर्याय है। तभी तो वे कहते हैं-

"हूँ कृतार्थ मैं, जग से मैंने / मधुर प्रेम रस पान किया है,
इसी प्रेम में आँख खोलकर / जीवन का अनुमान किया है।"[437]

प्रेम को जीवन मूल्य का सर्वोच्च पक्ष मानते हुए उन्होंने लिखा है-

"अब मैं समझी यही स्वर्ग है, यही मुक्ति है धन है
यही एक पारस है, जिससे बनता तन कंचन है
सरस सुधा बरसाने वाला बस यही एक बस धन है।"[438]

नेपाली के जीवन मूल्य का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष राष्ट्रीयता है। उनकी कई कविताओं में राष्ट्रीयता की सहज अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। आजादी से लेकर चीन के आक्रमण तक निरंतर उनकी कविताओं में राष्ट्र की चिंता की अभिव्यक्ति है। वे चीनी आक्रमण के समय पूरे देश में 'वन मैन आर्मी' बनकर लोगों को जगाते हैं। उन्होंने कहा है-

"है देश एक, लक्ष्य एक, कर्म एक है / चालीस कोटि है शरीर, मर्म एक है
पूजा करो, पढ़ो नमाज, धर्म एक है / बदनाम हो, अगर स्वराज्य, शर्म एक है
चाहो की एकता बनी रहे जनम जनम / तुम भेद ना करो मनुष्य भेद ना करो।"[439]

---

[437] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 39
[438] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 56
[439] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 148

उनका मानना है कि पूरे भारतवासी का एक ही धर्म है। वे किसी भी आधार पर चाहे वह धर्म के नाम पर हो या किसी और के नाम पर। वे मानव-मानव के बीच भेद करने के खिलाफ हैं। देश लोगों से ही बनता है। तभी तो उन्होंने लिखा है-

"मंदिर से चलो धाम के बंदूक पुजारी,
मस्जिद से चलो साथ ले तलवार दुधारी
राजपूत चलो, सिक्ख चलो, जाट चलो रे,
घर जिसने जलाया है चिता उसकी जला दो
इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो।"[440]

नेपाली को राष्ट्रीयता की गंभीर और व्यापक समझ है। उनकी राष्ट्रीयता सिर्फ ललकार और आक्रामकता तक सीमित नहीं है। वे विशाल और अखंड भारत के समर्थक हैं तथा एक देश, एक राष्ट्र और एक राष्ट्रभाषा का स्वप्न साकार करने वाले हैं। उनकी राष्ट्रीयता एकता और अखंडता को अक्षुण्ण रखने वाली है तथा सद्भाव, भाईचारा और शांति का संदेश देने वाली है।

नेपाली के काव्य में मानव-मूल्य की अभिव्यक्ति हर जगह देखने को मिलती है। मानवता उनके लिए सबसे बड़ा धर्म है। वे जीवन भर प्रयास करते रहे कि दासता, अभाव, विषमता, शोषण, उत्पीड़न और दमन समाप्त हो एवं मानव-मानव के बीच समानता हो। जाति, धर्म, अमीर-गरीब आदि के नाम पर किसी को ऊँचा और किसी को नीचा न समझा जाए। नेपाली सामाजिक समता के लिए जगह-जगह क्रांति की बात करते हैं। कुरीतियों से मुक्त नवीन समाज और राष्ट्र का निर्माण चाहते हैं-

"अब घिस गई समाज की तमाम नीतियाँ,अब घिस गई समाज की तमाम रीतियाँ
हैं दे रही चुनौतियाँ तुम्हें कुरीतियाँ, निज राष्ट्र के शरीर के सिंगार के लिए
तुम कल्पना करो नवीन कल्पना करो, तुम कल्पना करो।"[441]

---

[440] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 25
[441] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11

नेपाली स्वाभिमान के धनी थे। स्वाभिमान जीवन मूल्य का आधार है। स्वाभिमान व्यक्ति के गर्व से जुड़ा होता है। नेपाली व्यक्तिगत स्वाभिमान के साथ राष्ट्र के स्वाभिमान के हिमायती रहे हैं। स्वाभिमान के साथ ईमानदारी उनका गुण है। उन्होंने पद, पैसा और प्रतिष्ठा के लिए कभी समझौता नहीं किया। उन्होंने लिखा है-

"लिखता हूँ अपनी मर्जी से बचता हूँ कैंची दर्जी से
आदत न रही कुछ लिखने की, निंदा वंदन खुदगर्जी से
कोई छेड़े तो तन जाती, बन जाती है संगीन कलम।"[442]

नेपाली का जीवन अनवरत संघर्ष में व्यतीत हुआ। वे अपने संपूर्ण जीवन में जीविकोपार्जन के लिए संघर्ष करते रहे। अभाव और संघर्ष ही उनका जीवन बन गया था। अपने स्वाभिमान और सिद्धांतप्रियता के कारण कहीं स्थायी रूप से टिक न सके। वे जीवनपर्यंत गरीबी से जूझते रहे। इन्हीं परिस्थितियों के बीच वे काव्य-सृजन करते रहे। इसीलिए उन्होंने लिखा है-

"वह तो मैं हूँ, जो हँसता हूँ / मस्ती है, कुछ गाता हूँ
जो रोते हैं, उन्हें मनाकर / अपना गीत सुनाता हूँ।"[443]

इन पंक्तियों में उनके अभाव एवं संघर्ष की कहानी है। लेकिन इन विकट परिस्थितियों में भी वे हँसते हैं, गाते हैं और मस्ती करते हैं। और कोई मिलता है जो अपने दु:ख से दु:खी और विचलित हैं तो वे उसे आशा की उम्मीद बँधाते हैं। गरीबी मनुष्य के हौसले को तोड़ देती है। मनुष्य गरीबी से विवश होकर किसी भी मूल्य से समझौता करने के लिए तैयार हो जाता है। लेकिन नेपाली गरीबी में रहकर भी किसी से समझौता नहीं करते। वे आजीवन संघर्ष करते रहे। उन्होंने अपना ईमान और स्वाभिमान बेचकर कुछ पाने की चेष्टा नहीं की। अन्य कवियों की भांति पूँजीवाद और सत्ता से साँठ-गाँठ नहीं की। उल्टे अवसरवादियों पर प्रहार करते हुए लिखा-

"तुझ सा लहरों में बह लेता / तो मैं भी सत्ता गह लेता

[442] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 74
[443] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 47

ईमान बेचता चलता तो / मैं भी महलों में रह लेता।"[444]

नेपाली जीवन भर संघर्ष करते-करते ऊब चुके थे। इन्हीं स्थितियों में वे लिखते हैं-

"अफसोस नहीं इसका हमको, हम जीवन में कुछ कर न सके
झोलियाँ किसी की भर न सके, संताप किसी का हर न सके
अपने प्रति सच्चा रहने का जीवन भर हमने यत्न किया
देखा-देखी हम जी न सके, देखा-देखी हम मर न सके।"[445]

नेपाली ने हमेशा उन लोगों को महत्त्व दिया, जिन्होंने अपने संघर्ष से कुछ अर्जित किया। वे संघर्ष से प्राप्त पद, मान, प्रतिष्ठा को महत्त्व देते थे। वे ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हैं, जो बिना संघर्ष किए पद, धन, मान, प्रतिष्ठा का सुख भोग रहे हैं। वे लिखते हैं-

"छील-छील थाली में रक्खा / फल खाया तो क्या खाया
घर के पैसे से खरीदकर / मधु लाया तो क्या लाया।"[446]

नेपाली ने जीवन में संघर्ष करते हुए पैसों की कीमत जान ली थी। वे समाज में देख रहे थे कि लोग रिश्तों-नातों को पैसों से तौल रहे हैं। पैसों ने लोगों की नींद उड़ा दी है, चैन छीन लिया है। फिर भी लोग पैसों के पीछे पागल हैं। मानवीय संबंधों में सहजता-आत्मीयता खत्म हो चुकी है। 'नौ लाख सितारों ने लुटा' की इन मार्मिक पंक्तियों को देखिए -

"जग में जो भी दो जन मिले, उनमें रूपयों का नाता है
जाती है किस्मत बैठ यहाँ, पतला कागज चल जाता है
फिर मीठी नींद नसीब कहाँ
नींद तो लूटी रूपयों ने, सपना झनकारों ने लूटा
बदनाम रहे बटमार मगर घर तो रखवालों ने लूटा।"[447]

---

[444] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75
[445] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 124
[446] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 19
[447] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 135

नेपाली के काव्य में कई जगह आत्मबोध की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। उनकी कई कविताओं में आत्मानुभूति की प्रधानता है। वे अपने मन के भावों को अपने व्यक्तित्व के साथ रूपायित कर देते हैं। उनकी आकांक्षा और जिज्ञासा भी इनमें अभिव्यक्ति पाते हैं। उनकी कई कविताओं में 'मैं' का स्वर है। कवि नेपाली अपने जीवन में अस्वीकार का साहस रखते हैं। वे उस पाखंड पर प्रहार करने से कभी नहीं चूके, जो व्यक्ति की अपनी सहज दुर्बलता को छिपाकर बड़ा दिखने के लिए आडम्बर का सहारा लेते हैं-

"मैं रोज न पढ़ता रामायण, मैं पास नहीं रखता गीता
पर इतना भी गिरा नहीं जो पीकर कहूँ नहीं पीता।"[448]

नेपाली स्वाधीन कलम के धनी रहे। वे किसी पुरस्कार पाने या सम्मान हासिल करने के लिए नहीं लिखते रहे। वे लिखते रहे जनता के लिए। उनके लिए सच्चा सम्मान जन सामान्य से मिलने वाला प्यार था। उनको इसकी चिंता कभी नहीं रही कि उन्हें कोई सम्मान या पुरस्कार मिलता है कि नहीं। वे किसी भी प्रकार के दबाव एवं प्रलोभन से मुक्त होकर अपनी लेखनी चलाते रहे। उन्होंने कहा भी कि 'मेरा धन है स्वाधीन कलम'। कुछ पंक्तियाँ देखिए-

"मेरा धन है स्वाधीन कलम / राजा बैठे सिंहासन पर
यह ताजों पर आसीन कलम / जिसने तलवार शिवा को दी
रोशनी उधार दिवा को दी / पतवार थमा दी लहरों को
खंजरों की धार हवा को दी / अग-जग के उसी विधाता ने
कर दी मेरे अधीन कलम।"[449]

आज के समय में कवि जनसामान्य के लिए लिखने में रुचि नहीं दिखा रहे हैं। बल्कि वे अपने आलोचक एवं विशिष्ट पाठक वर्ग के लिए लिख रहे हैं। उनका ध्येय हो गया है- पुरस्कार, सम्मान या

---

[448] गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ - संपादन नंदकिशोर नंदन, पृ.सं. 129
[449] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 73

कोई ओहदा पाना। सत्ता के चाटुकार नेपाली के समय में भी थे। लेकिन आज उनकी संख्या बढ़ गयी है। नेपाली अपने कवि कर्म पर कहते हैं-

"हम धरती क्या आकाश बदलने वाले हैं, हम तो कवि हैं इतिहास बदलने वाले हैं
हर क्रांति कलम से शुरू हुई संपूर्ण हुई, चट्टान जुल्म की, कलम चली तो चूर्ण हुई
हम कलम चलाकर त्रास बदलने वाले हैं, हम तो कवि हैं इतिहास बदलने वाले हैं।"[450]

कवि नेपाली इतिहास को बदलना चाहते थे। वे मानवता के समर्थक थे। वे शोषण, दमन एवं उत्पीड़न के खिलाफ अपनी कलम चलाते रहे। समाज में बदलाव सिर्फ कवि की कलम से नहीं हो सकता- ये बातें भी सच है। बदलाव तभी होगा, जब सभी एकजुट होकर प्रयास करें। नेपाली अपनी कविताओं के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विसंगतियों पर सदैव प्रहार करते रहे।

5.7 नेपाली के काव्य में भाषागत बोध

भाषा के संबंध में जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात है, वह यह है कि भाषा मनुष्य को बनाती है, न कि मनुष्य भाषा को। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषा को मनुष्य नहीं गढ़ता, वह थोड़े-बहुत प्रयोजनीय शब्द गढ़ता है। शब्द गढ़ना भाषा गढ़ना नहीं है। गोपाल सिंह 'नेपाली' भाषा के प्रति बहुत सतर्क रहे। वे इस बात को मानते थे कि मनुष्य भाषा नहीं गढ़ता। वे हिन्दी की स्वाभाविकता के पक्षधर रहे। तभी तो वे कहते हैं-

"दो वर्तमान का सत्य सरल / सुंदर भविष्य के सपने दो।
हिन्दी है भारत की बोली / इसे अपने आप पनपने दो।"[451]

भारत एक बहुभाषी देश है। यहाँ एक भाषा की नीति नहीं चल सकती। संविधान सभा ने लंबी बहस प्रक्रिया के बाद हिन्दी को राजभाषा स्वीकार किया। साथ ही भारतीय भाषाओं के लिए एक आठवीं अनुसूची भी बनाई गई। राजभाषा हिन्दी को घोषित करने के बाद भी हिन्दी को अन्य भाषाओं के साथ आठवीं अनुसूची में जगह दी गई। होना तो यह चाहिए था कि राजभाषा हिन्दी को उस आठवीं अनुसूची

---

450 हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 76
451 हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 63

में न रखते। सन् 1957 ई. में हिन्दी के विरोध में दक्षिण भारत विशेषकर तमिलनाडु में आंदोलन हुए। हिन्दी का झगड़ा भारतीय भाषाओं से शुरू कर दिये गये। जबकि हिन्दी का झगड़ा तो अंग्रेजी से था। और अंग्रेजी की जगह हिन्दी लेने वाली थी। इसस संबंध में राममनोहर लोहिया की टिप्पणी द्रष्टव्य है- "तमिलनाडु में आंदोलन होते हैं, जुलूस निकलते हैं कि हिन्दी की साम्राज्यशाही खत्म हो। ऐसा इसलिए हो रहा है कि दिल्ली की सरकार ने इसका मामला बिगाड़ दिया है। देशी भाषाओं में कोई आपसी झगड़ा नहीं है। हिन्दी का झगड़ा भारत की अन्य भाषाओं- तमिल, तेलुगु आदि से नहीं, बल्कि अंग्रेजी से है। नकली झगड़े और झूठी लड़ाइयाँ इस विषय में चला दी जाती हैं। असली लड़ाई है अंग्रेजी को खत्म करो। बिना अंग्रेजी खत्म किए सुधार हो ही नहीं सकता। इसको फौरन स्कूल, न्यायालय आदि से हटा देना चाहिए।"[452] नेपाली जी इस बात को समझते थे। जिस संपर्क भाषा और राजभाषा के रूप में हिन्दी को विकसित करने की बात चल रही थी, वह राजनीति की शिकार हो गई। नतीजा यह निकला कि अंग्रेजी, हिन्दी की जगह राजभाषा के रूप में चलती रही और हिन्दी अनुवाद की भाषा बनके रह गई। नेपाली की भाषागत बोध सामासिक संस्कृति को अपने में समेटे हुए था। वे हिन्दी को सभी भारतीय में समेटे हुए था। वे हिन्दी को सभी भारतीय भाषाओं के सारतत्व से निर्मित भाषा के रूप में देखते हैं। वे कहते हैं-

"इसमें मस्ती पंजाबी की / गुजराती की है कथा मधुर
रसधार देववाणी की है / मंजुल बँगला की व्यथा मधुर
साहित्य फलेगा-फूलेगा । पहले पीड़ा से कंपने दो
हिन्दी है भारत की बोली / तो अपने आप पनपने दो।"[453]

जब हिन्दी विरोधी आंदोलन शुरू हुए और हिन्दी राजनीति का शिकार हो गई तो बहुत से लोग हिन्दी पर लिखने से बचते रहने की कोशिश करने लगे। इस संबंध में अज्ञेय की टिप्पणी बहुत महत्त्वपूर्ण है- "मैं हिन्दी में लिखता हूँ, हिन्दी के बारे में लिखने से पहले भी बचता रहा हूँ और इधर तो जब से यह नाम भाषा के राजनीतिज्ञों ने ले लिया है, जो वास्तव में न हिन्दी पढ़ते हैं, न लिखते हैं,

---

[452] राम मनोहर लोहिया रचनावली - संपा. मस्तराम कपूर, खण्ड 8, पृ.सं. 404
[453] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 64

केवल हिन्दी के बारे में बोलते हैं, तब से तो इस काम के प्रति घोर वितृष्णा हो गयी है। मैंने मान लिया है कि इस परिस्थिति में निष्ठावान लेखन के लिए हिन्दी के बारे में सर्वोत्तम लिखना यही हो सकता है कि वह हिन्दी में लिखे और भरसक ऐसा लिखे कि वह सम्मान के योग्य हो। हिन्दी में जो है, अगर उसके प्रति सम्मान का भाव बढ़ता है तो हिन्दी के बारे में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती।"[454] नेपाली जी हिन्दी विरोध पर आक्रोश व्यक्त करते हैं और कहते हैं-

"प्रतिभा हो तो कुछ सृष्टि करो / सदियों की बनी बिगाड़ो मत
कवि सूर बिहारी तुलसी का / यह बिरूवा नरम उखाड़ो मत
भण्डार भरो, जनमन की हर / हलचल पुस्तक में छपने दो
हिन्दी है भारत की बोली / तो अपने आप पनपने दो।"[455]

हिन्दी को राजभाषा के रूप में अपनाने की एक वजह यह थी कि हिन्दी भारत की सभी भाषाओं में सर्वाधिक उपयुक्त संपर्क भाषा के रूप में जनता में लोकप्रिय थी। राजभाषा और राष्ट्रभाषा में अंतर होता है। राष्ट्रभाषा राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है। नेपाली एक देश, एक राष्ट्र और एक राष्ट्रभाषा के हिमायती थे। उनमें राष्ट्रभाषा के स्वरूप को लेकर भ्रम की स्थिति नहीं थी। उनके लिए राष्ट्रभाषा का अर्थ संपूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने वाली भाषा से था। वे हिन्दी के साथ अन्य सभी भारतीय भाषाओं के हिमायती थे।

"एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा/ एकता स्वतंत्र देश की ज्वलंत आशा
कोटि-कोटि व्यक्ति यहाँ / संघ यहाँ, शक्ति यहाँ
जाति-धर्म भेद न कर / एक राष्ट्रभक्ति यहाँ
एक ही क्षुधा समग्र, एक ही पिपाशा
एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा।"[456]

---

[454] परिषद पत्रिका, वर्ष 51, अंक 1-4, पृ.सं. 88
[455] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 65
[456] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 71

इस प्रकार हम देखते हैं कि नेपाली के भाषागत बोध की दृष्टि साफ है। वे हिन्दी को इस देश की जनता की भाषा मानते हैं। वे हिन्दी को राजभाषा बनाने की राजनीति को लेकर क्षुब्ध हैं। वे मानते हैं कि हिन्दी लोक की भाषा है और वह अपने आप विकसित होती जाएगी। इसके लिए हिन्दी को न किसी सत्ता की जरूरत है और न किसी साम्राज्यवादी बैसाखी की।

षष्ठम अध्याय

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता का शिल्प विधान

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की काव्य-संवेदना में विविधता है और उसमें जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति है। उनके काव्य में यह विविधता काव्य शिल्प के प्रयोग से आयी है। काव्य शिल्प का अर्थ है- काव्य का बनना या काव्य की बनावट। जैसे एक कुम्भकार मिट्टी के बर्तन गढ़ता है। उसके लिए वह मिट्टी को तैयार कर चाक पर रखकर एक रूप देता है। उसी प्रकार कवि शब्दों को गढ़कर एक रूप देकर कविता में बदलता है। कवि इसके लिए जीवन के विविध प्रसंग, रूप, प्रकृति आदि का चुनाव करता है। वह उसकी संवेदना ही होती है, जो विविध प्रसंगों, रूपों या प्रकृति को शब्दों में ढालकर एक रूप देता है। यहाँ कवि मिट्टी की जगह शब्दों का प्रयोग करता है। उसकी सामग्री या माध्यम शब्द ही है। इन्हीं शब्दों से एक ढाँचा या निर्मिति तैयार होता है। वही ढाँचा या निर्मिति कविता के रूप में पाठकों के समक्ष आती है। कविता भाषा में ही रूपायित होती है। इसलिए कविता के शिल्प को समझने के लिए कविता को शब्दश: पढ़ना अनिवार्य है। एक-एक शब्द के जरिए ही पूरे काव्य शिल्प को समझा जा सकता है।

काव्य शिल्प में और कई तत्व हैं। भाषा तो सर्वोपरि है ही। इसके अलावा यह देखते हैं कि कवि ने मिथक, प्रतीक या बिंब आदि का प्रयोग किस प्रकार किया है। शब्दों के चयन एवं उनके उतार चढ़ाव से ही उसकी लयात्मकता, लोच एवं संगीत तत्व को समझा जा सकता है। छंद एवं अलंकार आदि के प्रयोग में भी उनकी काव्य शिल्प की विशेषता को देखा जा सकता है। इसीलिए उनकी कविता के शिल्प को कुछ शीर्षकों में विभक्त कर उसका विश्लेषण कर सकते हैं-

6.1 नेपाली की काव्यभाषा

नेपाली ने जब लिखना शुरू किया, उस समय ब्रजभाषा अपना महत्त्व खो रही थी और खड़ी बोली काव्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो रही थी। ऐसा नहीं था कि ब्रजभाषा में कविता की रचना नहीं हो रही थी। लेकिन नेपाली जी ने इस समय खड़ी बोली का चुनाव किया। उन्होंने 'उमंग' की भूमिका में

अपने भाषा विषयक चुनाव के संबंध में लिखा है- "बचपन की बात मैं नहीं करता पर जब होश आया तो ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली 'घूँघट काढे सामने खड़ी थी। एक-आध' को मैंने पसंद भी किया, गाया भी। पदावली अभी मेरे निश्चय की बाट जोह रही थी कि पीछे से समय ने सीटी दी। मैं मुड़ा, उसकी ओजपूर्ण बातें सुनी। न कोई मोह, न कुछ लालच, न कर्तव्य की ज्योति से उद्भाषित प्रशस्त जीवन मार्ग। मैं बड़ा आकृष्ट हुआ। इस नवीन आलोक से मुझे बड़ी खुशी हुई। अपने चिर तरुण साथी समय से प्रोत्साहन पाकर अब मैं गाने लगा। .... लोग कहने लगे हाँ, कुछ कह रहे हो। अब उमर खय्याम की हाला प्याले में भरी सामने रखी थी .... पर उसमें कुछ कड़वाहट सी मालूम हुई और जीभ ने कहा, पीने पर मुँह किंचित् विकृत करना पड़ेगा। मैंने स्वीकार न किया, ढाल दिया। इतने में बगल से उर्दू के विषाद गीत सुनाई दिये। वे करूण थे, उनमें रस था। मुझे बड़े पसंद आये। .... पर स्वर की असमानता से पकड़ लिया गया। कितनी ही कोशिशें की, पर रूदन की दुरूह कला के सामने मैं हार मान गया। स्वभाव में भी विरोधाभास था। न मैं कभी दर्द की तरह उठा, न कभी आँसू की तरह गिरा।"[457] यहाँ नेपाली जी ने बताया है कि उन्होंने अपने स्वभाव और प्रकृति के अनुरूप खड़ी बोली का चुनाव किया। कोमलकांत पदावली ब्रजभाषा अपना महत्त्व दिनोंदिन खोती जा रही थी, वहीं दूसरी ओर उमर खय्याम की कड़वाहट भरी हालावादी भाषा उनके पल्ले न पड़ी। दर्द और आँसू से भरी उर्दू के विषाद गीत जरूर उन्हें पसंद आये, पर उनकी प्रकृति उर्दू के अनुकूल न पड़ी। ऐसे में वे ज्योति से उद्भाषित ओजपूर्ण खड़ी बोली की ओर मुड़ गये।

नेपाली ने ज्योति से उद्भाषित ओजपूर्ण खड़ी बोली का चुनाव तो किया अपने लिए। लेकिन खड़ी बोली का कौन सा रूप उन्हें प्रिय था, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'नवीन' की भूमिका में लिखा है- "जरा भाषा सरल सजीव हो और छंद चुस्त हो तो इससे साहित्य को सिद्धि और राष्ट्र को शक्ति मिलेगी।"[458] अर्थात् नेपाली जी को खड़ी बोली का सरल जीवंत रूप पसंद था, जो छंदमय हो। प्रकृति

---

[457] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 5

[458] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 5

के सुकुमार कवि पंत जी ने उनकी भाषा के संबंध में लिखा है- "आपकी भाषा इतनी सरल एवं प्रांजल है कि वह आपकी विशेषता बन गई है।"[459]

नेपाली के काव्य में शब्द-विधान की बात करें तो उनके काव्य में तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशज सभी प्रकार के शब्द मिलते हैं। नेपाली के काव्य में तत्सम शब्दों को देखें तो हम पाते हैं कि उनकी प्रवृत्ति जानबूझकर तत्सम शब्दों को भरने की नहीं रही है। नेपाली के काव्य में आये तत्सम शब्दों की सूची बनाना ना तो उपयोगी है और ना ही आवश्यक। उनके काव्य में आये अधिकतर तत्सम शब्द सरल और प्रभावशाली हैं। एक उदाहरण देखिए-

"जग का मंदिर आज सजा है
स्वर्णिम रवि की स्वर्ण ध्वजा है
गूँज उठी है श्रृंग श्रृंखला
गिरि निर्झर का वेणु बजा है।"[460]

एक और उदाहरण देखिए-

"तुंग हिमांचल मानस चंचल
निर्मल जल की धारा
मंजुल कलकल सुरभित शीतल
वन प्रान्तर यह सारा।"[461]

नेपाली के काव्य में तद्भव शब्दों के प्रति विशेष अनुराग है। उनके काव्य में जगह-जगह ऐसे तद्भव शब्द मिलते हैं। उदाहरण के लिए पक्षी एक तत्सम शब्द है, जिसका तद्भव रूप पंछी है। जब हम उनके काव्य को देखें तो उनके काव्य में दो-चार जगह ही 'पक्षी' शब्द मिलेगा, लेकिन तद्भव रूप

---

459 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 7
460 पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21
461 रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 30

‘पंछी’ शब्द का प्रयोग जगह-जगह मिलेगा। उन्होंने तो एक प्रबंध काव्य ‘पंछी’ नाम से लिखकर अपना अनुराग ही दर्शाया है। उदाहरण देखिए -

> “जब-जब आता पंछी तरू पर जब जब जाता पंछी उड़कर
> जब-जब खाता फल चुन चुन कर
> पड़ती जब पावस की फुहार, बजते जब पंछी के सितार
> बहने लगती शीतल बयार।”[462]

उनके काव्य में धरती, धुँआ, बात, हजार, चौमास, भिखारी, सांप, नरम, भाई, पाँख आदि कई तद्भव शब्द मिलते हैं। उनकी प्रवृत्ति यहाँ तत्सम शब्दों की जगह तद्भवीकरण की रही है। उनके तद्भवीकरण की प्रशंसा करते हुए सुमित्रानंदन पंत ने लिखा है- “आपने निर्झर को झरना, सरोवर को झील, पक्षी को पंछी, रिक्त को रीता बनाकर खड़ी बोली की कविता को सहज सुषमा से पूर्ण कर दिया है।”[463]

नेपाली के काव्य में देशज शब्द भी कई मिलते हैं। देशज शब्दों के बारे में पंत जी ने लिखा है- “आपके पसार, बयार, सपना, छीलना, छंदों का उकसाना, फुनगी, नन्हीं-नन्हीं फुलचुग्गी, बोल-बोल, डोल-डोल आदि सभी सीधे-सादे प्रयोग कवित्वपूर्ण लगते हैं।”[464] पसार, बयार, फुनगी, छीलना, विहान आदि देशी शब्दों का बड़ा ही मनोरम प्रयोग नेपाली जी ने अपने काव्य में किया है। एक उदाहरण देखिए-

> “छील-छील थाली में रक्खा
> फल खाया तो क्या खाया।”[465]

एक और उदाहरण देखिए-

> “वह उच्च बेल की फुनगी

---

[462] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 53
[463] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 8
[464] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 7-8
[465] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 19

है रही हवा में हिल-डुल।"[466]

नेपाली के काव्य में विदेशज शब्दों को देखें तो अंग्रेजी के शब्द उनके काव्य में नहीं हैं, लेकिन अरबी, फारसी शब्दों की कमी नहीं है। 'उमंग' की भूमिका से स्पष्ट है कि उन्होंने उर्दू में हाथ आजमाने की कोशिश की थी। पर उनको सफलता न मिली थी। अरबी-फारसी शब्दों से उनके लगाव का एक कारण फिल्मी दुनिया से जुड़ाव भी माना जा सकता है, क्योंकि वहाँ उर्दू के शायरों का ही बोलबाला था। एक उदाहरण देखिए -

"ये ख्वाब यहाँ पर आते हैं
तस्वीर हमारे सजने को
खिड़की के पर्दे गिरते हैं
जंजीर पुरानी बजने को।"[467]

एक और उदाहरण देखिए -

"नई रोशनी को मिले राह कैसे
नजर है नई तो नजारे पुराने
नई शाम है तो धुँधलका पुराना
नई रात है तो सितारे पुराने।"[468]

हिन्दी भाषा की प्रकृति न तो संधि-प्रधान है और न सामासिक। लेकिन कवियों ने इनका भरपूर प्रयोग अपने काव्य में किया है। नेपाली का आग्रह सहज, सरल एवं जीवंत शब्दों की रही है। इसलिए उनके काव्य में सामासिकता की या संधि प्रधानता की प्रवृत्ति देखने को नहीं मिलती है। नेपाली की 'इयान्त' प्रत्यय के प्रयोग के लिए काफी आलोचना की गई। लेकिन यह उनकी विशेष भाषिक प्रवृत्ति थी, जिससे हिन्दी शब्द संसार और समृद्ध हुआ। "नजर, उमर, गागर, नगर आदि शब्दों में इया प्रत्यय

---

[466] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 23
[467] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 53
[468] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 82

लगाकर नेपाली ने नजरिया, गगरिया, उमरिया, नगरिया आदि के सैकड़ों शब्दों की रचना की है और इन शब्दों के द्वारा अपनी कविता में लोच, लावण्य और संगीत पैदा करने में सफल हुए हैं।"[469]

"घनश्याम कहाँ जाकर बरसे, हर घाट गगरिया प्यासी है

उस ओर ग्राम इस ओर नगर, चहुँ ओर नजरिया प्यासी है।"[470]

नेपाली के काव्य में विशेषणों का बड़ा ही सटीक प्रयोग देखने को मिलता है। कवियों के विशेषण निपुणता के संबंध में दिनकर जी ने लिखा है- "कवि में जो प्रज्वलन वाला गुण है, प्रेरणा के आलोक में शब्दों को सजीव बना देने वाली शक्ति है, उसका सबसे बड़ा चमत्कार विशेषणों के प्रयोग में देखा जाता है। विशेषणों के प्रयोग में आधी सफलता और आधी असफलता नहीं होती। कवि या तो पूर्ण रूप से सफल अथवा सर्वथा असफल हो जाता है। इसलिए जहाँ यह जानने की आवश्यकता हो कि दो कवियों में से कौन बड़ा और कौन छोटा है तो वहाँ केवल यह देख लो कि दोनों में से किसने कितने विशेषणों का प्रयोग किया है तथा किसके विशेषण प्राणवान और किसके निष्प्राण उतरे हैं। शब्दों के सम्यक प्रयोग की जैसी पहचान विशेषण में होती है वैसी संज्ञा और क्रिया में नहीं।"[471] दिनकर के उक्त कथन का समर्थन करते हुए अवधेश्वर अरूण ने लिखा है कि- "नेपाली विशेषण कवि हैं। उनकी कविताओं में जो प्राणवत्ता, भास्वरता, सरसता और तेजस्विता है, उसका बड़ा कारण सार्थक और सटीक विशेषणों का प्रयोग है। पुनरावृत्तिमूलक विशेषण प्रयोग का उनके जैसा धनी कवि हिन्दी में दूसरा नहीं है। प्रसंग चाहे संख्यावाचक विशेषणों का हो चाहे गुण वाचक विशेषणों का, नेपाली कहीं तो पुनरावृत्ति की झड़ी लगा देते हैं और कहीं कई विशेषण एक साथ पिरो देते हैं, जिससे उनकी कविता जीवंत हो उठती है।"[472] नेपाली के काव्य में मधुर, मंजुल, मीठा, मृदु, उज्ज्वल, नव, नया, काला, पीला, लाल, हरा, पीला, अनूठा, गहन, ऊँचा, चंचल, नवीन, विशाल, निर्मल, लघु, अनुपम आदि विशेषणों का प्रयोग बार-बार मिलता है। एक उदाहरण देखिए-

---

[469] अभिव्यक्ति सौंदर्य की दृष्टि से गोपाल सिंह नेपाली के काव्य का अध्ययन- डॉ. अशोक कुमार सिन्हा, पृ.सं. 38

[470] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 104

[471] काव्य की भूमिका - रामधारी सिंह दिनकर, पृ.सं. 146-147

[472] नेपाली चिंतन-अनुचिंतन - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 235-236

“पक रहे सरस मंजुल रसाल

हैं पीले-पीले लाल लाल

द्रुम में ये दाड़िम गोल-गोल

रे पंछी मंजुल बोल-बोल।”[473]

शब्द शक्ति की दृष्टि से देखें तो गोपाल सिंह ‘नेपाली’ अभिधा के कवि हैं। अभिधा शब्द शक्ति में सरलता और सहजता होती है। चमत्कारप्रियता और वक्रता के लिए इसमें स्थान नहीं होता है। अवधेश्वर अरूण जी ने लिखा है- “नेपाली अर्थ विधान की दृष्टि से अभिधा के कवि हैं।”[474] इसी बात की पुष्टि देवेन्द्र नाथ ठाकुर भी करते हैं,जिसका उल्लेख डॉ. अशोक कुमार सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'अभिव्यक्ति सौंदर्य की दृष्टि से गोपाल सिंह नेपाली के काव्य का अध्ययन’ में किया है - “हिन्दी के लोकप्रिय कवि नेपाली मूलत: अभिधा के कवि हैं। जो भी जनकवि होता है, वह अभिधा में ही बोलता है, ताकि उसके भाव आसानी से प्रेषित हो जाएं।”[475] अभिधा लोकप्रिय कवि की पहचान होता है, वह जो बोलता है, सीधे सरल शब्दों में बोलता है ताकि आमजन उसकी बातों का समझ सके। वह श्रोताओं और पाठकों से सीधे संवाद करता है। नेपाली ने इस शब्द शक्ति का उपयोग अपने काव्य में जगह-जगह किया है। भावों को सीधे अभिव्यक्त करने के लिए अभिधा ही महत्त्वपूर्ण होती है। यह अलग बात है कि अभिधा से काव्य में सपाटबयानी दिखती है और काव्य में गंभीरता नहीं दिखती। एक उदाहरण देखिए-

“ओ आलोचक, विष घोल नहीं

साहित्य समझ, सुन, बोल नहीं

रंगरूटों से कह दे कोई

मंदिर में पीटे ढोल नहीं।”[476]

---

[473] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 40

[474] नेपाली चिंतन-अनुचिंतन - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 238

[475] अभिव्यक्ति सौंदर्य की दृष्टि से गोपाल सिंह नेपाली के काव्य का अध्ययन - डॉ. अशोक कुमार सिन्हा, पृ.सं. 43

[476] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75

एक और उदाहरण देखिए-

"तुम उड़ा कबूतर अम्बर में संदेश शांति का देते हो
चिट्ठी लिखकर रह जाते हो जब कुछ गड़बड़ सुन लेते हो
वक्तव्य लिखो कि विरोध करो यह भी कागज वह भी कागज
कब नाव राष्ट्र की पार लगी यों कागज की पतवार से
ओ राही, दिल्ली जाना कहना अपनी सरकार से
चरखा चलता है हाथों से शासन चलता तलवार से।"[477]

नेपाली अभिधा के कवि हैं। लेकिन कहीं-कहीं उनके काव्य में लाक्षणिक प्रयोग मिल जाते हैं। लक्षणा वहाँ होती है, जहाँ मुख्यार्थ में बाधा पड़ती है। मुहावरे का प्रयोग भी मिलते हैं। लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे के प्रयोग लाक्षणिक प्रयोग के अंतर्गत ही आते हैं। लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण देखिए-

"दौलत महलों में हँसती है
निर्धनता पड़ी तरसती है।"[478]

एक और उदाहरण देखिए -

"मेरे प्राण मिलन के भूखे
ये आँखें दर्शन की प्यासी।"[479]

नेपाली व्यंजना के कवि नहीं हैं। लेकिन उनका काव्य व्यंजना से शून्य भी नहीं है। एक-दो प्रयोग व्यंजना के अनायास ही मिल जाते हैं। एक उदाहरण देखिए-

"रावण के मस्तक चढ़ते हैं
तभी रूद्र कुछ देते हैं

---

[477] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 60
[478] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 118
[479] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14

माचिस की सीकों से बन्दे

नाव सिंधु में खेते हैं।"[480]

काव्य के तीन गुण माने गए हैं- ओज, प्रसाद एवं माधुर्य। नेपाली के काव्य में तीनों गुण मिलते हैं। प्रकृति और प्रेमपरक कविताओं में उनके माधुर्य गुण को देखा जा सकता है। देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता की कविताओं में उनके काव्य का सहज गुण ओज मिलता है। प्रसाद गुण को भी उनके कविताओं में देखा जा सकता है।

ओज का एक उदाहरण-

"तुझ-सा लहरों में बह लेता

तो मैं भी सत्ता गह लेता

ईमान बेचता चलता तो

मैं भी महलों में रह लेता।"[481]

माधुर्य

"प्राण हमारी मधुर रागिनी

जब तक गमनागम में

गाओ प्रिये, फूले न समाओ

यहाँ अगाध अगम में।"[482]

प्रसाद

"तीन चार फूल हैं

आस-पास धूल हैं

बाँस है, बबूल हैं

---

[480] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 41

[481] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 75

[482] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 13

घास के दुकूल हैं

वायु भी हिलोर दे

फूँक दे झकोर दे

कब्र पर मजार पर यह दिया बुझे नहीं

यह किसी शहीद का पुण्य प्राण-दान है।"[483]

नेपाली के काव्य में प्रतीकों के प्रयोग कम हैं, क्योंकि नेपाली अभिधा के कवि हैं। नेपाली में कुछ प्रतीक बहुत स्पष्ट होकर आए हैं- दीपक, मेघ, पंछी, वसंत आदि उनके काव्य में बहुप्रयुक्त प्रतीक हैं। दीपक साधना का, मेघ सरसता का, पंछी उन्मुक्तता का तथा वासंती रंग प्रसन्नता का प्रतीक माना जा सकता है। नेपाली का 'पंछी' काव्य प्रतीकात्मक काव्य माना जाता है। यह दो पंछियों की प्रणय-कथा है। इसमें वनराजा और वनरानी क्रमश: पुरुष और स्त्री के प्रतीक हैं, जिसके माध्यम से स्त्री-पुरुष के विरह-मिलन, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख की गाथा कही गयी है।

नेपाली की काव्य भाषा सहज-सरल एवं जीवंत भाषा है। वे कलाविद् कवि नहीं हैं, सहज कवि हैं। उनके काव्य का सौंदर्य अनूठा है। उसमें सुगढ़ता नहीं अनगढ़ता की मुक्त सुंदरता है। उनकी भाषा उमंग, उत्साह, ऊर्जा की भाषा है। "वे शब्द रचते नहीं, गूँथते हैं। उनकी भाषा बिहारी की नायिका की तरह अंग अंग भग जगमगै नहीं, कालिदास की शकुंतला की तरह पुष्पालंकृता है। उनकी भाषा में झरने की गति, आकाश की मुक्तता और नदी की गति दिशा है। अत: वे न तो पंत की तरह गठिया है और न निराला की तरह दुरूह। उनमें अज्ञेय जैसी शास्त्रीय समृद्धि भी नहीं है। वे शास्त्र की तरह बद्ध न होकर लोक की तरह उन्मुक्त और व्यापक हैं। वह लोकात्मकता उनकी भाषा में ऐसी उमंग और तरलता पैदा करती है जो उन्हें दूसरे से अलग करती है।"[484] तभी तो वे कहते हैं-

"मैं हूँ अपना आप नमूना

---

[483] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 16-17

[484] नेपाली चिंतन -अनुचिंतन - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 240-241

मेरा अपना ढंग है।"[485]

6.2 नेपाली के काव्य में प्रयोगशीलता

गोपाल सिंह 'नेपाली' हिन्दी के उन कवियों में से रहे हैं, जो पहले से चली आ रही परंपरा से हटकर अपनी एक अलग राह बनायी। जब उन्होंने काव्य-रचना प्रारंभ किया, वह समय छायावाद का चरमोत्कर्ष था। उन्होंने खुद को छायावाद की परंपरा से हटाकर सफल गीतकार की छवि बनायी। नेपाली अपने काव्य में प्रयोगशीलता के आग्रही रहे हैं। उन्होंने अपने काव्य रचना में प्रयोग करना आरंभिक दिनों से ही शुरू कर दिया था। उनका प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व उनकी प्रकृतिपरक कविताओं में निखरकर सामने आया है।

नेपाली के काव्य में प्रयोगशीलता की बात करें तो हमारा पहला ध्यान उनकी मौलिक उद्भावनाओं पर जाता है। उन्होंने काव्य के विषय के रूप में घास, पीपल, बेर जैसे विषय को चुनकर अपनी अनुपम प्रयोगधर्मिता का साक्ष्य प्रस्तुत किया है। नेपाली जी ने प्रियदर्शन को लिखे एक पत्र में लिखा है- "हरी घास पर नानक के छोटे से दोहे छोड़कर, हिन्दी में और कविता नहीं है। पंडित सोहन लाल द्विवेदी का कहना है कि मैं अगर सिर्फ यही कविता लिखकर मर जाता, फिर भी अमर रहता।"[486] 'हरी घास' शीर्षक कविता की आरंभिक पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"प्रभु की असीम करूणा कुछ-कुछ होती है अब-रे मुझे भास
सुख-सुषमा, शोभा, सुंदरता बिखरी हैं मेरे आस-पास
फिर मुक्त-कंठ से इन सबका गुणगान मधुर मैं करूँ क्यों न
दी बिछा उसी ने इसीलिए मेरे आँगन में हरी घास।"[487]

नेपाली जी की मौलिकता है, जो सामान्य से सामान्य वस्तु में सौंदर्यबोध खोज लेती है। उनकी दृष्टि प्रखर थी। 'पीपल के पत्ते' में उनका सौंदर्य बोध देखते ही बनता है। यहाँ कवि ने शब्द प्रयोग की

---

485 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 80

486 गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. दिवाकर, पृ.सं. 294

487 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51

दक्षता तो सिद्ध की है तो शब्दों की आवृत्ति से भाव-सौंदर्य को बढ़ाया है। ध्वन्यात्मकता और दृश्यात्मकता की दृष्टि से भी यह प्रयोग अद्भुत बन पड़ा है-

"पीपल के पत्ते गोल-गोल, कुछ कहते रहते डोल-डोल
जब-जब पंछी आता तरू पर, जब-जब जाता पंछी उड़कर
जब-जब खाता फल चुन-चुनकर
पड़ती जब पावस की फुहार, बजते-जब पंछी के सितार
बहने लगती शीतल बयार
तब-तब कोमल पल्लव हिल-डुल गाते सर्सर, मर्मर मंजुल
लख-लख सुन-सुन विह्वल बुलबुल
बुलबुल गाती रहती चह-चह, सरिता गाती रहती बह-बह
पत्ते हिलते रहते रह-रह।"[488]

उनकी एक प्रसिद्ध कविता है 'देहात' उन्होंने इस कविता में विशेषणों का सम्यक प्रयोग किया है। इस कविता की सहजता, सरलता और नैसर्गिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति देखिए -

"वही है जग का न्यारा देश　　फूस का यही बसा घर बार
देश का यही प्रांत वीरान　　प्रकृति का यही सदन अभिराम
यही है दलितों का संसार　　यही है सब तीर्थों का तीर्थ
यहीं पर रहते हैं भगवान　　यहीं पर नर देवों का धाम
बुद्ध के यहीं विचरते प्राण
यहीं करती मनुष्यता वास
यहीं वह दिव्य प्रेम का लोक
रहा है जहाँ सत्य विश्वास।"[489]

---

[488] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 53
[489] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 68

नेपाली के काव्य में तत्सम शब्द हैं, लेकिन उनकी प्रवृत्ति जान-बूझकर तत्सम शब्दों को भरने की नहीं रही है। वे अपनी कविताओं में सरल और प्रभावशाली तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं। कठिन और सामासिक बहुल शब्दों के वे आग्रही नहीं हैं। 'पंचमी' काव्य संग्रह से निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"जग का मंदिर आज सजा है, स्वर्णिम रवि की स्वर्ण ध्वजा है
गूंज उठी है श्रृंग श्रृंखला, गिरि-निर्झर का वेणु बजा है
कवि ने वाणी में स्वर भर भर दुहराया वह गान दुबारा"[490]

नेपाली जी के तत्सम शब्दों का प्रयोग 'नीलिमा' में और भी सुंदर बन पड़ा है-

"नक्षत्रों की सरल ज्योति से, जगमग है आकाश
खिल उठता है घर के टुकड़ों में, विमल चन्द्र का हास
ज्योति उगलते हैं भुक-भुककर, ये नन्हें खद्योत
सहम-सहम उठती है छाया,तरू कुंजों के पास
यहीं ज्योति का मंगल अभिनय, आंगन में दिखलाओगी"[491]

उपर्युक्त पंक्तियों में नक्षत्र, ज्योति, आकाश, खद्योत, विमल चन्द्र, हास, तरूकुंज, मंगल अभिनव जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग देखते ही बनता है। उनकी कविताएं जहाँ राष्ट्रीयता और क्रांति भावना की अभिव्यक्ति है, वहाँ ओजस्विता प्रधान तत्सम शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से करते हैं। 'नवीन' कविता की निम्न पंक्तियां जो ओज और आवेग की सशक्त अभिव्यक्ति है, को देखा जा सकता है-

"जिसकी तरंग लोल है अशांत सिंधु वह, जो काटता घटा प्रगाढ़ वक्र इन्दु वह
जो मापता समग्र सृष्टि दृष्टि-बिन्दु वह, वह है मनुष्य जो स्वदेश की व्यथा हरे
तुम यातना हरो मनुष्य, यातना हरो, तुम यातना हरो।"[492]

---

[490] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21
[491] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 19
[492] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 11-12

नेपाली जी की प्रकृतिपरक और ऋतुपरक कविताओं में ताजगी है। वे प्रवृत्तियों को चित्रित करने में माहिर हैं। 'उमंग', 'मस्ती', 'जवानी' जैसी कविताओं को इस परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। नेपाली आपादमस्तक मौलिक हैं, तभी तो वे कहते हैं-

"भरी पड़ी मेरे मानस में
करूणा की गागर है
जिससे गहरा शायद ही जग
में कोई सागर है

रग-रग में अनुराग भरा है
रोम-रोम में ममता
जो मांगे सो झट दे डालूं
इतनी मुझ में क्षमता

लेकिन इन सबके ऊपर से
मस्ती का ही रंग है
मैं हूँ अपना आप नमूना
मेरा अपना ढंग है।"[493]

नेपाली जी की प्रयोगशीलता 'पंछी' में भी द्रष्टव्य है। यहाँ उन्होंने दो पंछियों- वनराजा-वनरानी के माध्यम से प्रेम के मनोविज्ञान को रखा है। 'रागिनी' काव्य संग्रह की निम्न पंक्तियाँ ने तो प्रेम के मनोविज्ञान को और भी जीवंत बनाया है-

"प्रेम की यह कामना, पत्थर, तनिक तो बोल दे
शैल बन, पाषाण बन, पर आज बंधन खोल दे
प्रेम की यह भावना रे, उड़ न पंछी डाल से
मोह है कितना मधुर जग-जाल से जंजाल से
प्रेम की यह भूमिका, वाचलता भी मौन है
कौन है बहरा यहाँ, गूंगा यहाँ पर कौन है।"[494]

---

[493] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 80
[494] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 49

'रागिनी' काव्य संग्रह की ही एक कविता है- 'भाई-बहन'। 'भाई-बहन' कविता अपने समय की बहुत ही महत्त्वपूर्ण कविता है और इसका संदर्भ तो और भी महत्त्वपूर्ण। वस्तुत: यह कविता तो एक आह्वान गीत है, जिसमें देश के सभी स्त्री-पुरुषों से स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने का आह्वान किया गया है। भाई-बहन के रूप में देश के सभी स्त्री-पुरुषों को जाग्रत करने का यह प्रयत्न कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर ही नेपाली जी का अभिनव प्रयोग है। यह प्रयोग उनकी प्रयोगधर्मिता की प्रौढ़ता को भी दर्शाता है-

> "तू चिनगारी बनकर उड़ री, जाग-जाग मैं ज्वाल बनूँ
> तू बन जा हहराती गंगा, मैं झेलम बेहाल बनूँ
> आज बसन्ती चोला तेरा, मैं भी सज लूँ लाल बनूं।
> तू भगिनी बन क्रांति कराली, मैं भाई विकराल बनूँ।"[495]

'पंचमी' काव्य संग्रह में उन्होंने कई नए प्रयोग किए हैं, जो कथ्य और शिल्प दोनों ही स्तरों पर महत्त्वपूर्ण हैं। 'पंचमी' कविता तो मंगलाचरण ही है-

> "देव, अमर तुम महिमा-मंडित
> जग में मानव कुंठित-दंडित
> उसके कर में एक दीप था
> वह भी आज नियति से खंडित
> जागो देव, तिमिर पर जग के आज बहाओ ज्योतिर्धारा।"[496]

नेपाली जी ने अपने एक पत्र में लिखा है- "तुम कल्पना करो नवीन कल्पन करो वाला छंद आधुनिक हिन्दी-संस्कृत से पहले मैं ही ले आया था। बाद में तो दर्जनों कविताएँ इस छंद में लिखी गई। बच्चन ने भी मुझसे दो साल बाद इसी छंद में वह कविता लिखी- "मैं इसीलिए खड़ा रहा कि तुम

---

[495] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 51
[496] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 22

मुझे पुकार लो।"[497] 'नवीन' काव्य संग्रह की प्राय: सारी कविताएँ उनके नए प्रयोग हैं। उन्होंने स्वयं लिखा है- "जहाँ-जहाँ मैंने भाव, भाषा, छंद आदि के नवीन प्रयोग किये हैं, वहाँ-वहाँ आप न डरें, नाराज भी न हों। इन दिनों मैं इसी विश्वास के साथ कार्य कर रहा हूँ कि जरा भाषा सरल-सजीव हो और छंद चुस्त हो तो इससे साहित्य को सिद्धि और राष्ट्र को शक्ति मिलेगी।"[498] 'नवीन' काव्य संग्रह की कविताएँ 'जिन्दगी एक बार', 'जल रहा है गाँव', 'अभागिनी', 'मेघ और झरना', 'पहाड़ी कोयल' और 'जवानियाँ' उनके प्रयोगधर्मिता के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। प्रकाशक की टिप्पणी इस संबंध में द्रष्टव्य है- "ये कविताएँ हिन्दी में पहले-पहल आ रही है। इनकी खास टेकनीक, चंचल, यति-गति और ज्वलंत ओज के कारण जनता ने इन्हें बहुत पसंद किया है। भाषा प्रवाह तो इन कविताओं का बिल्कुल झरनों जैसा है। कवि ने इन कविताओं के लिए प्राचीन छंद-शास्त्र की ही ढली परंपरा से जो विद्रोह मोल लिया है, उससे हमारे उगते राष्ट्र को शक्ति, उत्साह और चिंतन मिलेंगे। ऐसी प्रवाहमयी भाषा में इतना परिष्कृत चिंतन भरकर कवि ने हमारे काव्य प्रेमियों को एक नया आनंद प्रदान किया है।"[499]

'जिंदगी' शीर्षक कविता का यह प्रयोग द्रष्टव्य है-

"चल रही यह जिंदगी
जल रही यह जिंदगी
एक आग है कि एक बार तुम भी खेल लो
लपट जरा झेल लो
जलन जरा झेल लो
एक खेल है कि एक बार तुम भी खेल लो।"[500]

---

[497] गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली - संपा. दिवाकर, पृ.सं. 294
[498] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 5
[499] गोपाल सिंह नेपाली समग्र भाग 1 - संपादिका सविता सिंह नेपाली, पृ.सं. 436
[500] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 81

नेपाली एक प्रयोगशील कवि रहे हैं। उन्होंने काव्य में कथ्य और शिल्प स्तर पर नित नवीन प्रयोग किए। उन्होंने भाषा में जीवंतता, प्रवाह और सरलता को सदा बनाए भी रखा। इसीलिए उनके यह प्रयोगधर्मी कविताएँ भी जनता में खासा लोकप्रिय हुई।

6.3 नेपाली के काव्य में बिम्ब योजना

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य में बिंब की अनिवार्यता को रेखांकित करते हुए लिखा है- "कविता में अर्थग्रहण मात्र से काम नहीं चलता, बिंबग्रहण अपेक्षित है।"[501] उन्होंने 'रस-मीमांसा' में बिंब के संबंध में एक और महत्त्वपूर्ण बात कही- "काव्य का काम है कल्पना में बिंब अथवा मूर्त भावना उपस्थित करना, बुद्धि के सामने कोई विचार लाना नहीं।"[502] आचार्य शुक्ल बिंब को विशेष मानते हैं तभी तो उन्होंने लिखा- "बिंब जब होगा तब विशेष का होगा, सामान्य या जाति का नहीं।"[503]

"हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में 'बिंब' शब्द के प्रथम प्रयोक्ता और व्याख्याता आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ही हैं।"[504] 'बिंब' शब्द का प्रयोग प्राय: मूर्तिमता अथवा चित्रात्मकता के अर्थ में किया जाता है, लेकिन इस शब्द का समय के साथ अर्थ विस्तार होता गया है। आज इसका चित्रात्मकता का अर्थ गौण हो गया है। और आज यह उन सभी काव्यगत विशेषताओं का बोधक है, जो पाठक को ऐन्द्रिय चेतना के किसी स्तर पर प्रभावित करती है। कुछ आलोचकों ने तो बिंब विधान की प्रक्रिया को सामूहिक अवचेतन के स्तर पर देखने का प्रयास किया है।

19वीं शताब्दी से पहले पाश्चात्य विचारक हो या भारतीय विद्वान, वे काव्य बिंब को एक शाब्दिक अलंकार या बाहरी साज श्रृंगार मात्र समझते थे। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों ने न केवल नूतन काव्य बिंबों का सृजन किया बल्कि उसकी नयी व्याख्या भी प्रस्तुत की। तब से इसका महत्त्व बढ़ता गया। "कॉलरिज का कहना है कि काव्य का बिंब कवि की मौलिक प्रतिभा का प्रमाण है,

---

[501] चिंतामणि - रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 100

[502] रस मीमांसा - रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 184

[503] रस मीमासा - रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं. 184

[504] आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान - केदारनाथ सिंह, पृ.सं. 13

जिसमें उसकी भावना, सम्बद्ध विचार और सहज अनुभूति की प्रमुखता रहती है। कवि अपनी अनुपम प्रतिभा द्वारा ही काव्य में सौंदर्य-विधायनी प्रतिभा गढ़ने में समर्थ होता है। इसमें कवि का व्यक्तित्व निखर उठता है। इसलिए काव्य बिंब को मात्र अलंकार नहीं कहा जा सकता है। जिस कवि में बिंब विधान की शक्ति जितनी अधिक होगी, उसका काव्य उतना ही आकर्षक और प्रभावशाली होगा। निष्कर्ष यह है कि काव्य बिंब एक ऐसा सजीव, सुन्दर और सरस चित्र है, जिसमें कवि की भावना, अनुभूति और कल्पना मूर्त रूप धारण करती है।"[505] कहने का अर्थ है कि काव्य बिंब कवि के मानस में जन्म लेता है और शब्दों और अर्थों के माध्यम से श्रोता अथवा पाठक के हृदय में उतरता है। काव्य में जिस वस्तु अथवा रूप का बिंब विधान होता है, वह काव्यात्मक अभिव्यक्ति में यथार्थ से अधिक आकर्षक और मोहक होता है। कवि के लिए वस्तु अथवा रूप का हू-ब-हू न तो अनुकरण संभव है और न ही स्वाभाविक ही। वह तो अपने मानस में नूतन सृजन करता है। वह अपनी कल्पना, भावना और अनुभूति से नए बिंब की रचना करता है।

केदारनाथ सिंह का कहना है- "कविता में आया हर शब्दचित्र बिंब नहीं होता। असल में मूर्तिमत्ता जहाँ बिंब की सबसे बड़ी शक्ति है, वहीं उसकी सबसे बड़ी सीमा भी है। सीमा इस अर्थ में कि अक्सर मूर्तिमत्ता के कारण ही किसी स्थूल शब्द चित्र को भी काव्य बिंब की संज्ञा दी जाती है। किसी अप्रस्तुत अथवा शब्द चित्र के बिंब के स्तर तक पहुँचने के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह भौतिक अर्थ में मूर्त हो बल्कि यह उससे भी ज्यादा आवश्यक है कि वह ऐतिहासिक अर्थ में भी मूर्त हो। ऐतिहासिक मूर्तता से मेरा तात्पर्य बिंब की कुछ तात्कालिकता से है, जिसके चलते वह अपनी एकांत मूर्तिमत्ता को अतिक्रांत कर अपने समय की वास्तविकता से एक गहरे स्तर पर संपृक्त हो जाता है।"[506]

बिंब में ऐन्द्रिक बोध की प्रधानता है। इसलिए वस्तु या रूप का ग्रहण जिन-जिन इंद्रियों की सहायता से होता है, उस आधार पर बिंब का वर्गीकरण किया गया है। लेकिन कुछ ऐसे भी बिंब हैं,

---

[505] नेपाली चिंतन-अनुचिंतन - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 201

[506] आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान - केदारनाथ सिंह, प्राक्कथन से

जिनमें ऐंद्रिकता की अपेक्षा दूसरे तत्व प्रबल हैं। अत: उन आधारों पर भी बिंब का वर्गीकरण किया गया है। इस दृष्टि से सृजन प्रेरणा, अभिव्यंजना पद्धति तथा कलागत विशेषता को आधार माना गया है।

ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर बिंब के निम्न भेद किए गए हैं- चाक्षुष या दृश्य, श्रावणिक, घ्राणिक, स्पर्श और आस्वाद्य।

सृजन प्रेरणा के आधार पर बिंब के निम्न भेद हैं- स्मृतिजन्य बिंब, स्मृत्याभासी बिंब, काल्पनिक बिंब।

अभिव्यंजना पद्धति के आधार पर बिंब के दो भेद हैं- शाब्दिक बिंब और अलंकृत बिंब।

क्रमिकता की दृष्टि से प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीय भेद किए गए हैं।

बुद्धि अथवा भावना की दृष्टि से बिंब को बौद्धिक एवं भावात्मक बिंब में बाँटा गया है।

नेपाली के काव्य में बिंब के प्राय: सभी भेद प्राप्त मिलते हैं। कुछ उदाहरणों की सहायता से क्रमश: इनको स्पष्ट किया है।

चाक्षुष बिंब

चाक्षुष बिंब का ऐंद्रिय बोध नेत्रों से होता है। कविता में इनकी संख्या अधिक होती है। इस बिंब में रूप बिंब और रंग बिंब अधिक काव्यात्मकता लिए होते हैं। नेपाली के काव्य में रूप और सौंदर्य की प्रधानता है। उन्होंने प्रकृति के सौंदर्य को जैसे देखा, वैसा शब्दों में रखने का सफल प्रयास किया है। प्रकृति का सौंदर्य उन्हें बचपन से आकृष्ट करता रहा है। प्रकृति के सहज आकर्षण के कारण ही उन्होंने निर्झर, सरिता, धारा, कुंज, लता, पावस आदि के सैकड़ों मर्मस्पर्शी बिंब चित्रित किए हैं। इन बिंबों में ताजगी और मधुरिमा है तो अनुभूति का सजीव संस्पर्श भी। पाठकों को यह सहज संप्रेषणीय भी है, जिसके कारण वह इसके प्रति आकृष्ट होता है।

इनके 'पंचमी' नामक काव्य संग्रह से 'वर्षा' का बिंब और 'रागिनी' काव्य संग्रह से 'पूर्णिमा' का बिंब देखिए-

वर्षा का बिंब

"प्रासाद बना ऊँचा अंबर

बूंदों की लटकी है झालर

बादल का बना चँदोवा है

तूफान डुलाता है मेघ चँवर।"[507]

पूर्णिमा का बिंब

"यह अनूठी चाँदनी जो कर न दे, कर न ले,

है छलकती गागरी जो भर न दे, भर न ले।

रंग क्या अलि! राह में कब से लिए ये फूल हैं,

ढंग क्या, कहना, किसी के पाँव की ये धूल हैं।"[508]

श्रावणिक बिंब

श्रावणिक बिंब का ऐन्द्रिक बोध श्रवण से होता है। इसमें नाद गुण की प्रधानता होती है। नेपाली के काव्य में नादात्मक बिंब के कई उदाहरण हैं। उनमें से एक द्रष्टव्य है-

"द्रुम में पक दाड़िम गोल-गोल

तरू के नव पल्लव डोल-डोल

वन-वन में पंछी बोल-बोल

रे कब से उजड़ा पड़ा बाग

कोई उमंग, उठ जाग, जाग।"[509]

स्पर्श बिंब

स्पर्श बिंब में स्पर्शजन्य अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती हैं। इस बिंब का एक सुंदर उदाहरण देखिए-

---

[507] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 83

[508] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 48

[509] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 14

"बह-बह, उतर उतर री सरिता
गाती चल मंजुल कलकल
भिंगों-भिंगो दे शीतल जल से शुष्क,
तप्त गिरि का अंचल।"[510]

आस्वाद्य बिंब

आस्वाद्य बिंब में आस्वादन का भाव होता है। नेपाली के काव्य से आस्वाद्य बिंब का यह उदाहरण द्रष्टव्य है-

"तू हंस देगी तभी न तरू में,
पक आवेंगे मीठे फल
जिनको चुन-चुनकर चोंचों से
खावेगा नित पंछी दल
यह जीवन भी सरस बनेगा
जैसे मधुर रसीले फल।"[511]

घ्राणिक बिंब

इसका संबंध घ्राण शक्ति से होता है। नेपाली के काव्य में यह न के बराबर है। एक उदाहरण देखिए -

"गम-गम गमक उठेगा सब जग
क्या उपवन रे क्या जंगल
तू हँस देगी, मैं हँस दूँगा
होगा जंगल में मंगल।"[512]

---

[510] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27
[511] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 28
[512] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 28

गत्वर बिंब

गत्वर बिंब को ऐंद्रिक बिंब माना जाता है। गति की सत्ता दृश्य भी होती है और श्रव्य भी। रेंगने से स्पर्शजन्य अनुभव भी होता है। अत: गत्वर बिंब को इन तीनों का मिश्रित रूप भी माना जाता है। नेपाली के काव्य में इनके अनेक उदाहरण हैं। इन बिंबों में चपलता, क्रीड़ाप्रियता, भव्यता, शालीनता आदि भंगिमाएँ देखने को मिलती हैं। निम्न पंक्तियों में झरने की चंचलता देखने ही बनती है-

“नागिन जैसा चाल-ढाल में
कहीं पहुँच जाता उछाल में
चंचलता में यह मृगछौना
घुस जाता है नदी-ताल में।”[513]

स्मृतिजन्य बिंब

स्मृति ही स्मृतिजन्य बिंब का आधार होती है। कवि जिन दृश्यों को देखता है, उनको वह स्मृति के सहारे बिंबों में आकार प्रदान करता है। नेपाली के काव्य संग्रह ‘पंचमी’ की कविता ‘मैंने एक परी देखी’ की निम्न पंक्तियाँ इसका सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं-

“घूँघट था तारों के नभ-सा
मेघ खंड-सा उड़ता आँचल
उस घूँघट के झीने पट से
झाँक रहा था शशि मुख उज्ज्वल
जग में उसकी नयी जवानी
पूनो की चाँदनी बनी थी
उसकी छवि यौवन वसंत में
फूलों सी निखरी देखी है।”[514]

---

[513] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 90
[514] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 127

स्मृत्याभासी बिंब

इस बिंब का आधार स्मृत्याभास कल्पना है। अक्सर इस बिंब की सहायता से पौराणिक, ऐतिहासिक अतीत को वर्तमान में बिंबित किया जाता है। स्मृतिजन्य बिंब से यह भिन्न इस अर्थ में है कि जहाँ स्मृतिजन्य बिंब में कवि की निजी जीवन की अनुभूतियाँ बिंब के रूप में चित्रित होती है, वहीं स्मृत्याभासी बिंब पौराणिक या ऐतिहासिक अतीत की परिकल्पना द्वारा चित्रित होती है। उदाहरण के तौर पर 'हिमालय ने पुकारा' की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"यह घर प्रताप का है, शिवाजी का वतन है
गुलशन है भगत सिंह का, गाँधी का चमन है
'आजाद' की गलियों में घुसा कौन लुटेरा
जिंदा ही पकड़ के उसे तुम दास बना लो
इन चीनी लुटेरों को हिमालय से निकालो।"[515]

काल्पनिक बिंब

काल्पनिक बिंब कवि के द्वारा कल्पित होता है। यह कवि की कल्पना शक्ति का प्रमाण होता है। ऐसे बिंब में कवि की मौलिक सूझ-बूझ भी प्रकट होती है। उदाहरण के तौर पर निम्न पंक्तियों को देखा जा सकता है-

"गगन है मेरा उन्नत भाल
    उषा चन्दन का टीका लाल
क्षितिज मेरे नयनों की कोर
    मेघ कालें घुंघराले बाल
पवन है मेरी सुरभित साँस
    साँस पर झूल रहा संसार
किरण मेरी वीणा का तार

[515] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 24

तार पर नाच रही झंकार।"[516]

शाब्दिक बिंब और अलंकृत बिंब

अभिव्यंजना के आधार पर दो भेद शाब्दिक बिंब और अलंकृत बिंब होते हैं। शाब्दिक बिंब का आधार एक स्वतंत्र शब्द होता है। उस शब्द के अर्थगर्भ से शाब्दिक बिंब चित्रित होता है। जबकि अलंकृत बिंब में शब्द का संयोजन इस प्रकार किया जता है, उस शब्द की अर्थातिशयता से संपूर्ण संदर्भ अलंकृत होता है। नेपाली के काव्य से दोनों का एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

"आकाश है स्वतंत्र है, स्वतंत्र है मेखला
यह श्रृंग भी स्वतंत्र ही खड़ा, बना, ठला
है जल प्रपात काटता सदैव श्रृंखला
आनंद शोक जन्म और मृत्यु के लिए
तुम योजना करो स्वतंत्र योजना करो।"[517]

यहाँ बिंब का आधार 'स्वतंत्र' शब्द है। अत: यहाँ शाब्दिक बिंब है।

"दु:ख की घनी बनी अंधियारी
सुख के टिमटिम दूर सितारे
उठती रही पीर की बदली
मन के पंछी उड़-उड़ हारे
बची रही प्रिय की आँखों से
मेरी कुटिया एक किनारे
मिलता रहा स्नेह-रस थोड़ा
दीपक जलता रहा रात भर।"[518]

---

[516] पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 25-26
[517] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 12
[518] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 13

यहाँ रूपक अलंकार से पीड़ामय जीवन बिंबित हो रहा है। अत: यहाँ अलंकृत बिंब है।

प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीय बिंब

क्रमिकता के आधार पर बिंब के तीन भेद किए गए हैं। प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीय बिंब। जहाँ बिंब का आधार वस्तुजगत होता है, वहाँ प्राथमिक बिंब होता है। माध्यमिक बिंब में वस्तुजगत और कल्पना के संयोग से बिंब चित्रित होते हैं। तृतीय बिंब ''पूर्ववर्ती बिंबों से उद्भुत होते हैं लेकिन उनमें संसार के निगूढ़ तत्वों में निहित मूल का समावेश होता है तथा जिन्हें हम संसार की किसी वास्तविक वस्तु से समीकृत नहीं कर सकते हैं।''[519] नेपाली के काव्य से इन तीनों बिंबों का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है-

प्राथमिक

''पक रहे सरस मंजुल रसाल
है पीले पीले, लाल-लाल
फल-फूल, मुकुल से लदी डाल
झीलों में जल जल में मृणाल
द्रुम में दाड़िम ये गोल-गोल
रे पंछी मंजुल बोल-बोल''[520]

माध्यमिक

''तरू डालों पर बैठ बजाये,
मलय-समीर मृदंग
ठुमक-ठुमक कर रजनी नाचे
गाये सिंधु तरंग
लो, देखो, ऐसी होती है

---

[519] अभिव्यक्ति सौंदर्य की दृष्टि से गोपाल सिंह नेपाली के काव्य का अध्ययन - डॉ. अशोक कुमार सिन्हा, पृ.सं. 86
[520] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 40

जग की शाश्वत केलि।"[521]

तृतीय

"तरूण तुम अरुण किरण का बाण
कठिन मैं अंधकार का मर्म
मधुर तुम मधुपों की गुंजार
और मैं खिली कली की शर्म
दूर की तुम धीमी आवाज
गूंजती जो जग के इस पार।"[522]

बौद्धिक एवं भावात्मक बिंब

बौद्धिक बिंब में बुद्धिग्राह्य तत्वों जैसे सत्य, न्याय, पाप, पुण्य आदि तत्वों को बिंब रूप में चित्रित किया जाता है।

"कोटि कोटि व्यक्ति यहाँ
संघ यहाँ, शक्ति यहाँ
जाति-धर्म भेद न कर
एक राष्ट्र भक्ति यहाँ
एक ही क्षुधा समग्र, एक ही पिपासा
एक देश, एक राष्ट्र, एक राष्ट्रभाषा।"[523]

भावात्मक बिंब में विभिन्न भावों और मनोविकारों को चित्रित करने वाले बिंब होते हैं।

"रस पी-पीकर फूल उठ तन, फूटीं कोंपल नरम-नरम
पहले पहल जवानी आई, तन के रोयें गरम-गरम

---

521 नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21
522 पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 105
523 हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 71

फूटा कंठ, गुलाबी मुखड़ा, बदली बोली पहचानो,

राजभवन हो गई सुदामा की कुटिया, अब सच मानो।"[524]

नेपाली की बिंब योजना को देखें तो उन्होंने सबसे ज्यादा चाक्षुष बिंबों का प्रयोग किया। उसमें भी प्रकृतिपरक बिंब सबसे अधिक है, जो प्रात:काल, संध्या, सावन, वसंत, बादल, किरण, फूल आदि बिंबों के रूप में दिख पड़ते हैं। गत्वर, एवं श्रावणिक बिंबों का भी प्रयोग पर्याप्त संख्या में है। नेपाली भावों की सूक्ष्मता के बजाय स्थूलता में ही चित्रित करते रहे हैं। इसलिए उनके भावात्मक बिंब बाह्य परिस्थितियों को ही चित्रित करते हैं।

6.4 नेपाली के काव्य में अलंकार योजना

अलंकारों की न तो कोई सीमा है और न ही इसकी संख्या निर्धारित की जा सकती है। अलंकार को काव्य की शोभा बढ़ाने वाला कारक कहा गया है। मुख्य रूप से शब्दालंकार और अर्थालंकार में अलंकार को विभक्त किया गया है। गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य में अलंकारों का प्रयोग सुंदर, स्वाभाविक एवं उत्कृष्ट रूप में हुआ है। इन्होंने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का सुंदर प्रयोग अपने काव्य में किया है। शब्दालंकार के अंतर्गत मुख्य रूप से अनुप्रास, यमक, वीप्सा, श्लेष आदि अलंकार आते हैं। वहीं, अर्थालंकार के अंतर्गत उपमा, रूपक, विरोधाभास, उत्प्रेक्ष आदि अलंकार आते हैं।

नेपाली के काव्य में शब्दालंकार के अंतर्गत अनुप्रास, वीप्सा और श्लेष के कई उदाहरण मिलते हैं। लेकिन यमक का उदाहरण नहीं मिलता। उसमें भी उन्होंने वीप्सा का प्रयोग बार-बार किया है।

अनुप्रास

जहाँ वर्णों की आवृत्ति होती है, वहाँ अनुप्रास अलंकार होता है। प्राय: सभी कवि इस अलंकार का प्रयोग करते रहे हैं। तुक के आग्रह अथवा नाद-सौंदर्य के लिए कवि बार-बार वर्णों की आवृत्ति या पुनरावृत्ति करता रहता है। गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य में कई ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ इस अलंकार का प्रयोग किया गया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है-

---

[524] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 104

"पढ़ता है गीता पर, मरने से डरता है

दुश्मन घर में घुसके, धन-धरती हरता है

तू बैठा कुर्सी पर, बातें ही करता है।"[525]

यहाँ 'ध' वर्ण की आवृत्ति है। अत: यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

"मंगल गान करो मायाविनी , मंगलमय पल-पल ये

मंगल तरू, मृदु मंगल डाली, मंगल-मंगल फल ये।"[526]

यहाँ 'म' वर्ण की आवृत्ति हुई है।

"अब समझी मैं यही स्वर्ग है, यही मुक्ति है, धन है,

और जगत में सब बंधन है, यही एक जीवन है,

यही एक 'पारस' है, जिससे बनता तन कंचन है,

सरस सुधा बरसाने वाला यही बस एक घन है।"[527]

वीप्सा अलंकार

वीप्सा का अर्थ होता है- दुहराना। इस अलंकार में एक ही शब्द को दुहराया जाता है, इसीलिए इस अलंकार को वीप्सा अलंकार कहा जाता है। किसी भाव को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए सामान्यतया शब्दों को दुहराया जाता है। आम तौर पर आदर, घबराहट, आश्चर्य, घृणा, रोचकता आदि की अभिव्यक्ति के लिए किसी शब्द की आवृत्ति की जाती है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' को वीप्सा अलंकार सर्वाधिक प्रिय है। उन्होंने अपने काव्य में बार-बार इस अलंकार का प्रयोग किया है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है-

"पीपल के पत्ते गोल-गोल

कुछ कहते रहते डोल-डोल

---

[525] हिमालय ने पुकारा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 33

[526] उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 96

[527] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 56

जब-जब आता पंछी तरू पर, जब-जब जाता पंछी उड़कर

जब-जब खाता फल चुन-चुनकर"[528]

इस कविता के रेखांकित शब्दों में वीप्सा अलंकार है। शब्दों के दुहराव से यहाँ कविता के नाद-सौंदर्य में वृद्धि हुई है और यह संगीत के निकट आ गयी है। गोपाल सिंह 'नेपाली' अपने गीतों की संगीतात्मक को लेकर लोकप्रिय रहे हैं और वीप्सा अलंकार के कारण उनके काव्य में ध्वन्यात्मकता बढ़ जाती है। वीप्सा अलंकार का एक और सुंदर उदाहरण द्रष्टव्य है-

"मृगनैनी - पिक बैनी! तेरे सामने बँसुरिया झूठी है।

रग-रग में इतने रंग भरे रंगीन चुनरिया झूठी है।"[529]

एक उदाहरण वाक्यांश की पुनरावृत्ति को देखिए-

"शक्ति का दिया हुआ

शक्ति को दिया हुआ

भक्ति से दिया हुआ

यह स्वतंत्रता दिया।"[530]

यहाँ 'दिया हुआ' का प्रयोग उपरोक्त तीन पंक्तियों में हुआ है जो पंक्तिपरक वीप्सा का उदाहरण है। नेपाली ने अपने काव्य में लयात्मकता की वृद्धि के लिए बार-बार शब्द से लेकर वाक्यांश तक की पुनरावृत्ति की है।

श्लेष अलंकार

श्लेष अलंकार वहाँ होता है, जहाँ एक ही शब्द के एक से अधिक अर्थ जुड़े हों। नेपाली श्लिष्टता के कवि नहीं हैं। इसलिए इनके काव्य में श्लेष अलंकार का प्रयोग न के बराबर है। बहुत ढूँढने पर एक-दो उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए-

---

528 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 53

529 असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह नेपाली - संपा. डॉ. सतीश कुमार राय, पृ.सं. 39

530 नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 16

"आज दुन्द बाँधकर

बस्तियाँ बरबाद कर

पश्चिमी वतास में यह धुँआ उठा है जो

जल रहा है गाँव

जल रहा है गाँव।"[531]

उपरोक्त में पश्चिमी वतास में श्लेष अलंकार है। पश्चिमी बतास का यह एक अर्थ है- 'पछिया हवा' और दूसरा अर्थ है पाश्चात्य जीवन शैली से गाँवों का उजड़ना।

उपमा अलंकार

उपमा अलंकार एक बहुत ही प्रसिद्ध अलंकार है। उपमा का अर्थ है- समीप लाना, तुलना करना, समानता दिखाना। जब दो वस्तुओं के गुण, आकृति, स्वभाव आदि में समानता दिखाई जाए या दो विजातीय वस्तुओं की तुलना की जाए, तो वहाँ उपमा अलंकार होता है। उपमा अलंकार के चार अंग उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और वाचक होते हैं। साधारणतया कवि अपनी बातें स्पष्ट करने के लिए उपमाओं का सहारा लेते हैं। नेपाली के काव्य में उपमान बोधगम्य है और रूप, गुण और प्रभाव आदि की समानता पर योजित किए गए हैं। उदाहरण के लिए 'नीलिमा' काव्य संग्रह की कविता 'दबे पाँव तुम आई रानी' की निम्न पंक्तियाँ देखिए-

"तुम निर्झर के मृदु कलकल-सी, आँसू सी तुम छल-छल!

मेरी अनुपम प्रेममूर्ति तुम, सुन्दर सुन्दर उज्ज्वल!

तुम आई, शशि पर बादल सी, मुख पर घूँघट डाले,

डब-डब आँखों में, यौवन के सुंदर स्वप्न संभाले।"[532]

यहाँ एक उपमेय 'तुम' को कई उपमानों- 'निर्झर' के मृदु कलकल सी, आँसू सी, शशि पर बादल सी आदि से अलंकृत है।

एक और उदाहरण देखिए-

[531] नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 87

[532] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 49

"मणि से उसके काव्य अलंकृत

उसके प्राण बीन से झंकृत

दिग दिगन्त लोक-लोक में

उसके अमर गान थे मुखरित।"[533]

रूपक अलंकार

उपमेय पर उपमान का निषेध रहित आरोपण रूपक अलंकार है- 'प्रस्तुतेऽप्रस्तुतारोपो रूपकं निरपह्नवे'। रूपक का अर्थ होता है- सादृश्यक को रूप प्रदान करना। रूपक में एक वस्तु पर दूसरी वस्तु के रूप का आरोपण इस प्रकार होता है कि अभेद प्रधान हो जाता है। इसके दो भेद होते हैं- सांग रूपक तथा निरंग रूपक। जब रूपक अलंकार अंग सहित होता है तो वह सांग रूपक कहलाता है। एकल की दशा में यह निरंग रूपक होता है। सांग रूपक का एक उदाहरण देखिए-

"दु:ख की घनी बनी अँधियारी

सुख के टिमटिम दूर सितारे

उठती रही पीर की बदली

मन के पंछी उड़-उड़ हारे।"[534]

यहाँ 'दु:ख पर अँधियारी का, सुख पर तारे का, पीड़ा पर बदली का और मन पर पंछी' का आरोपण है। एक और उदाहरण द्रष्टव्य है-

"अभिलाषा, सौंदर्य, शील से

जीवन थाल सजाए

जब तुम आई थी तब रानी

मेरे नयन लजाए।"[535]

---

533 पंचमी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 120

534 नवीन - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 13

535 नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 49

उपरोक्त पंक्तियों में जीवन पर थाल का आरोपण होने से रूपक अलंकार है।

"तुमने हमने मिलकर जग में

अपने बाग लगाए।

जीवन मंदिर में दोनों ने

यौवन राग जगाए।"[536]

यहाँ जीवन पर मंदिर का और यौवन पर राग का आरोपण है। यह निषेधात्मक अलंकार है अर्थात् 'यह है' के बदले 'यह नहीं है'।

अपहनुति अलंकार

अपहनुति का अर्थ होता है- छिपाने की भावना या छिपाना। अपहनुति तब अभीष्ट होती है जब उसमें कुछ उपमा रहे। इसका नाम अपहनुति इसलिए है क्योंकि इसमें वास्तविक अर्थ को छिपाया जाता है। नेपाली के काव्य में अपहनुति अलंकार के कई सुंदर प्रयोग मिलते हैं। उदाहरण के लिए देखिए-

"फूल नहीं कंकड़-पत्थर है, मंजिल-मंजिल रोड़े हैं।

पिय की खोज, चला बनवारी, पर बालम मुँह मोड़े हैं।"[537]

एक और उदाहरण द्रष्टव्य है-

"यह घास नहीं है, पनप उठी मेरे जीवन की मधुर आस,

मैं तो रहता हूँ महलों में, पर प्राण यही रहते निवास।"[538]

यहाँ घास का निषेध कर उस जीवन की मधुर आस का आरोपण किया है इसीलिए यहाँ अपहनुति अलंकार है।

---

536 नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 50

537 रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 16

538 उमंग - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 52

स्वाभावोक्ति अलंकार

स्वाभावोक्ति का अर्थ है- स्वभाव की उक्ति अर्थात् स्वभाव का वर्णन। रूय्यक ने कहा है- “सूक्ष्मवस्तुस्वभावस्य यथावद वर्णनं स्वाभावोक्ति।” जहाँ वस्तु का यथावत् वर्णन होता है, वहाँ स्वाभावोक्ति अलंकार होता है। नेपाली की कविताएँ स्वाभाविकता और सरलता से रची बसी है। इसीलिए इनकी कविताओं में स्वाभावोक्ति अलंकार आसानी से मिल जाते हैं। एक उदाहरण देखिए-

“खिड़की खोल जगत को देखो
बाहर-भीतर घनावरण है
शीतल है वातास, द्रवित है
दिशा, घटा यह निरावरण है।”[539]

उत्प्रेक्षा अलंकार

जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना हो, वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उत्प्रेक्षा का अर्थ होता है- उत्कृष्ट रूप से प्रकृष्ट (उपमान) को देखना। यहाँ ‘देखना’ का अर्थ है- संभावना व्यक्त करना। साहित्य दर्पण में इसे इस प्रकार कहा गया है- ‘भवेत संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।’ गोपाल सिंह ‘नेपाली’ के काव्य का उदाहरण देखिए-

“सुमन कपोलों पर मधुपों की होती थी रंगरलियां
मानो वहाँ किसी ने रख दी थी मिश्री की डालियाँ।”[540]

एक और उदाहरण देखिए-

“सरिता के उस पार कुसुम वन सुंदर फूल रहा था,
जहाँ पहुँच सौंदर्य विश्व का निज पथ भूल रहा था।”[541]

---

[539] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 27
[540] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21
[541] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21

विरोधाभास अलंकार

जहाँ बाहर से विरोध दिखाई दे, परन्तु वास्तव में विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। नेपाली के काव्य में विरोधाभास अलंकार कम ही मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए-

"खा-खा के मरती है दुनिया
कितने बे-खाए जीते हैं।"[542]

उपरोक्त में खाकर मरने और बेखाए जीने में परस्पर विरोध है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है, क्योंकि गरीब आदमी भूखे पेट भी जी लेता है जबकि कई लोग भोजन के अतिरेक से मर जाते हैं।

मानवीकरण अलंकार

जब जड़ वस्तुओं या प्रकृति पर मानवीय चेष्टाओं का आरोपण किया जाता है, तब वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है। नेपाली ने अपने काव्य में कई जगह मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किए हैं। एक उदाहरण देखिए-

"रोई रेती सिसक-सिसक कर क्रंदन किया निशा ने।"[543]

रेत रोती नहीं है और निशा भी क्रंदन नहीं करती इसलिए यहाँ मानवीकरण अलंकार है। एक और उदाहरण देखिए-

"तरू डाली पर बैठ बजाए
मलय समीर मृदंग
ठुमक ठुमक कर रजनी नाचे
गाये सिंधु तरंग।"[544]

निष्कर्ष तौर पर कह सकते हैं कि नेपाली के काव्य में अलंकारप्रियता के दर्शन होते हैं। उन्होंने लगभग सभी प्रचलित अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों के प्रयोग से नेपाली का काव्य-सौंदर्य न केवल कलात्मक हुआ है, बल्कि प्रभावी भी हुआ है।

---

[542] रागिनी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 34

[543] पंछी - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 46

[544] नीलिमा - गोपाल सिंह नेपाली, पृ.सं. 21

उपसंहार

साहित्य के दो रूप मिलते हैं- एक, लोकप्रिय साहित्य और दूसरा, कलात्मक साहित्य। कलात्मक साहित्य को गंभीर साहित्य माना जाता है, जबकि लोकप्रिय साहित्य को सतही साहित्य। साधारणत: माना जाता है कि जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में स्वीकृत और ग्राह्य हो, वह लोकप्रिय साहित्य है। सहजता, सरलता और सुबोधता ऐसे साहित्य के अनिवार्य गुण माने जाते हैं। लेकिन कोई साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सिर्फ सहजता, सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता। वह साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच तभी लोकप्रिय होगा, जब उसका जुड़ाव आम जन से होगा। जब आम जन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएं उस साहित्य में सहज, सरल रूप में अभिव्यक्त हो, तभी वह साहित्य लोकप्रिय साहित्य होगा। वहीं, साहित्य के ही एक अन्य रूप कलात्मक साहित्य को गंभीर साहित्य बताकर आम जन से दूर किया जाता रहा है। कलात्मक साहित्य भी व्यापक जनसमुदाय से जुड़ा हो सकता है तथा वह लोकप्रिय भी हो सकता है।

साहित्य की लोकप्रियता का संबंध सिर्फ रूप से नहीं है। उसका संबंध रूप के साथ, उसकी अंतर्वस्तु से, अंतर्वस्तु में मौजूद यथार्थ चेतना से और यथार्थ चेतना में मौजूद विश्व दृष्टि से है। जिस साहित्य में यह गुण मौजूद होगा, वह लोकप्रिय तो होगा ही, गंभीर भी होगा और कालजयी भी। रूप संबंधी लोकप्रियता साहित्य को सतही बनाएगा, गंभीर और कालजयी नहीं।

आज के लोकप्रिय साहित्य को पूँजीवादी युग और समाज की उपज माना जाता है। पूँजीवादी युग का लोकप्रिय साहित्य व्यावसायिक लाभ कमाने के लिए लिखा जाता है एवं प्रकाशित किया जाता है। लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग की एक पूरी व्यवस्था है।

लोकप्रियता को समाज से जोड़ा जाता है। समाज के साथ संस्कृति का विकास होता है। संस्कृति के दो रूप मिलते हैं- एक, अभिजन-संस्कृति और दूसरा, जन-संस्कृति। लोक संस्कृति या अभिजन-संस्कृति के समानांतर लोक-संस्कृति का विकास होता है। संस्कृति की अभिव्यक्ति सबसे ठोस, स्थायी और प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। पूँजीवाद के प्रसार से संस्कृति

बाजार की अवधारणा विकसित हुई और संस्कृति का बदलाव लोकप्रिय संस्कृति में हुआ। संस्कृति के बाजारीकरण के फलस्वरूप लोकप्रिय संस्कृति में सर्जनात्मकता, कल्पनाशीलता एवं आलोचनात्मक चेतना का अभाव दिखता है।

हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की दिशा में अभी कुछ सीमित प्रयास किए गए हैं। साहित्य का समाजशास्त्रीय आलोचना साहित्य की सामाजिक प्रासंगिकता पर गहन विचार-विमर्श करता है। वर्तमान समय में जब साहित्य पर ही संकट है, तब उसकी सामाजिक महत्ता की पड़ताल आवश्यक हो जाता है। हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य के समाजशास्त्रीय विश्लेषण के विकसित न हो पाने का सबसे बड़ा कारण यह है कि हिन्दी में साहित्य विवेचन में पाठक को महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता।

हिन्दी साहित्य का क्षेत्र बहुत ही व्यापक और विस्तृत है। गंभीर साहित्य को ही हिन्दी की एकमात्र वास्तविकता समझा जाता रहा है, जिसके कारण लोकप्रिय साहित्य की पड़ताल नहीं की गई। गंभीर साहित्य की अपेक्षा लोकप्रिय साहित्य के पाठकों की संख्या काफी ज्यादा है। लोकप्रिय साहित्य की उपेक्षा करना वास्तव में एक विशाल पाठक वर्ग की उपेक्षा करना है।

फ्रांस की मादाम स्तेल के साहित्य चिंतन से साहित्य के समाजशास्त्र का विकास हुआ। और अब तक साहित्य के समाजशास्त्र को विकसित हुए दो सौ वर्ष हो चुके हैं। इन वर्षों में साहित्य के समाजशास्त्र का आधार मजबूत भी हुआ और विकसित भी एवं उसका विस्तार भी हुआ है। बावजूद इसके कविता का समाजशास्त्र अभी पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुआ है। साहित्य के समाजशास्त्री कविता के समाजशास्त्रीय विश्लेषण से बचते रहे हैं।

कविता के समाजशास्त्र के विकसित न हो पाने का कारण रहा है- कविता का रूप एवं उसकी अंतर्वस्तु। अभी तक साहित्य के समाजशास्त्री, जिन प्रतिमानों के आधार पर साहित्य का विश्लेषण करते रहे हैं, उस प्रतिमान के आधार पर कविता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

साहित्य के समाजशास्त्र में कविता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण दो रूपों में किया गया है- एक, कविता को कला और साहित्य का अंग मानकर, दूसरा, एक स्वतंत्र विधा के रूप में।

कविता के समाजशास्त्र को समझने के लिए कविता के स्वरूप को समझने की जरूरत है। साथ ही कविता की आत्मपरकता को भी। इसके बाद कविता के रूप और भाषा पर विचार करना आवश्यक है। इन पहलुओं को ध्यान में रखकर ही कविता के समाजशास्त्र को समझ सकते हैं। फिर उसके बाद कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को समझ सकते हैं।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में मुख्यत: आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को जोड़कर उसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हैं। समाजशास्त्र में कविता को एक उत्पाद माना गया है। यही कारण है कि आर्थिक पक्ष में लोकप्रिय साहित्य के प्रकाशन से लेकर बिक्री तक की आर्थिक प्रक्रिया को शामिल किया गया है। इसमें मुख्य रूप से तीन बातों की चर्चा की गई है-

I. रचना, रचनाकार एवं पाठक के अंतर्संबंध को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखना, परखना एवं उसका विश्लेषण करना।
II. रचना के प्रकाशन एवं उसकी निरंतरता को समाजशास्त्रीय दृष्टि से विश्लेषित करना। रचना के प्रकाशन एवं पुन: प्रकाशन के अंतराल एवं उसकी मांग की निरंतरता की समाजशास्त्रीय दृष्टि से पड़ताल करना।
III. रचना की प्रासंगिकता पर आलोचकों की क्या प्रतिक्रिया रही है, इसकी समाजशास्त्रीय दृष्टि से पड़ताल करना।

कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को सांस्कृतिक पक्ष से जोड़कर समझने के क्रम में कविता की लोकप्रियता को कथ्य सापेक्षता की दृष्टि से एवं शिल्प सापेक्षकता की दृष्टि से उसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हैं। कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से विश्लेषित करने के लिए कविता की अंतर्वस्तु एवं शिल्प की सामाजिकता को समझते हैं। कविता की अंतर्वस्तु एवं शिल्प में ऐसा क्या है, जिसके कारण वह कविता लोकप्रिय हुई। कविता की

अंतर्वस्तु को कविता की संवेदना एवं उसकी निर्मिति के कारणों की सामाजिक पड़ताल के माध्यम से समझ सकते हैं। इसी तरह, कविता की शिल्प की सामाजिकता को समझना होगा। कविता की एक निर्मिति होती है और वह निर्मिति भाषा में ही रूपायित होती है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' हिन्दी साहित्य के अपने समय के सबसे लोकप्रिय कवि थे। आमजन उनकी कविताओं के श्रोता थे और पाठक भी। उनकी कई कविताएँ आज भी लोक कंठ में सुरक्षित हैं, जिन्हें लोग अक्सर गुनगुनाया करते हैं। उनके अनूठे काव्य-पाठ एवं विशिष्ट काव्य-शैली के लोग प्रशंसक रहे। वे गीतों के राजकुमार के नाम से मशहूर रहे। नेपाली आज भी कवि सम्मेलनों के माध्यम से या सोशल मीडिया जैसे- फेसबुक, यू-ट्यूब आदि के माध्यम से जनता के बीच उपस्थित है और लोकप्रिय भी। उनका जुड़ाव काव्य-मंचों से रहा, जहाँ उन्हें अपार लोकप्रियता मिली।

जब उन्होंने लिखना शुरू किया, तब ब्रजभाषा की कोमलकांत पदावली अपना असर खो रही थी। लेकिन ऐसा नहीं था कि ब्रजभाषा में कविता नहीं हो रही थी। किंतु उन्होंने कविता के लिए खड़ी बोली का चुनाव किया, क्योंकि आने वाला समय खड़ी बोली हिन्दी का था और छायावादी कविता की चारों ओर धूम मची हुई थी। छायावाद अपने चरमोत्कर्ष पर था। इसी समय उमर खय्याम की 'हाला' भी लोकप्रिय थी और उर्दू कविता भी अपने रस के कारण लोगों का कंठहार बनी हुई थी। उस दौरान फिल्में बनती तो हिन्दी की थी, लेकिन वहाँ उर्दू में ही गीत लिखे जाते थे। फिल्मों में उर्दू शायरों और कव्वालों का ही बोलबाला था। इन्हीं विपरीत परिस्थितियों में वे न केवल फिल्मों के लिए गीत लिखते हैं, बल्कि वहाँ लोकप्रियता भी प्राप्त करते हैं एवं हिन्दी को वहाँ स्थापित करने में अपना योगदान भी देते हैं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र में उनकी रचनाओं के साथ, उनके व्यक्तित्व, तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों का योगदान है। साथ ही गाँधी एवं नेहरू जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के विचार एवं व्यक्तित्व की छाप से उनकी कविता की संवेदना भी प्रभावित होती है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' के काव्य पर जहाँ एक तरफ छायावादी परिस्थितियों का प्रभाव है तो दूसरी तरफ तात्कालिक राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों का भी। प्रकृति की सरल, सरस एवं मधुर कविताएँ जहाँ एक तरफ उनकी व्यक्तिगत रुचि से अभिव्यक्ति पाती है तो दूसरी तरफ छायावाद में प्रकृति की उपस्थिति का प्रभाव भी है। उनकी प्रेम कविताएँ उनकी प्रेम की गहरी समझ एवं समर्पण से अनुप्राणित रचनाएँ हैं। उनके काव्य में उपस्थित प्रेम की सरलता सहज ही पाठकों को आकर्षित कर लेती है। उनके प्रेम में वायवीयता एवं जटिलता नहीं है। वह हृदय की गहरी संवेदना से जुड़ी है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविताओं के पाठकों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो उनकी कविताएँ अपनी विषय वस्तु एवं सहजता के कारण लोगों के हृदय से जुड़ जाती है। उनकी कविताओं के पाठक, पाठक बाद में बने, पहले वे श्रोता थे। यही कारण है कि उनकी कविताओं के श्रोता अधिक हैं, पाठक कम हैं। उनकी लोकप्रियता का एक बड़ा कारण यह था कि वे सर्वथा मौलिक एवं विशिष्ट काव्य शैली के साथ माधुर्यता से परिपूर्ण काव्य पाठ किया करते थे, जो श्रोताओं से सीधा संवाद करता था। इसी कारण काव्य सम्मेलनों में उन्हें बार-बार बुलाया जाता और श्रोताओं द्वारा बार-बार उनके काव्य पाठ के लिए आग्रह किया जाता।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता का एक कारण उनका वर्गाधार भी है। उनकी कविताओं को सुनने के लिए गाँव के मजदूर से लेकर समाज के पढ़े लिखे लोग तक लालायित रहते थे। कई घंटे तक वे सिर्फ उनकी कविताओं को सुनने के लिए बैठे रहते। मीलों का सफर तय करके जनता उन्हें सुनने आती थी। नेपाली की कविता जनता के हर तबके से संवाद करती है। समाज के निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक सभी उनकी कविताओं के प्रशंसक रहे। उनकी कविताएँ भाषा की परिधि को लांघकर गैर-हिन्दी लोगों तक भी पहुँची।

गोपाल सिंह 'नेपाली' अपनी तमाम लोकप्रियता के बावजूद हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों एवं आलोचकों की उपेक्षा के शिकार रहे। आलोचक समाज की संरचना की गंभीर समझ रखता है। वह किसी कृति या रचना का मूल्यांकन समाज की संरचना को ध्यान में रखकर करता है। किसी कृति

की लोकप्रियता और श्रेष्ठता कृति में निहित मूल्यबोध के कारण होती है। नेपाली की कविता उनके गहरे जीवनानुभव से संपृक्त है। उनमें प्रकृति का सहज आकर्षण है तो जीवन का आनंद एवं उल्लास भी। उनमें यौवन, प्रेम एवं सौंदर्य बोध भी है। उनमें देश के प्रति असीम प्रेम है। उनकी कविताओं में स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण है तो कृषक, मजदूर के साथ गाँव-देहात की समस्या का भी। तमाम विशेषताओं के बावजूद मंचीय लोकप्रियता और फिल्मी दुनिया से जुड़े रहने के कारण आलोचकों ने उन्हें गंभीरता से नहीं लिया। फिल्मी दुनिया से जुड़े रहने के कारण उन पर तीखे हमले किए गए। जरूरी नहीं कि आलोचक वर्ग का साथ किसी कृति या कवि को मिले, तब ही वह लोकप्रिय और श्रेष्ठ बने। कुछ कृतियाँ एवं कुछ कवि ऐसे होते हैं जिन्हें अपनी पहचान एवं स्थान पाने के लिए इतिहासकारों एवं आलोचकों का बाँट नहीं जोहना पड़ता। गोपाल सिंह ‘नेपाली’ का कृतित्त्वएवं व्यक्तित्व कुछ ऐसा ही रहा है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो रचनाकार अपनी रचना समाज के लिए लिखता है। जब रचना समाज तक नहीं पहुँचेगी, तो रचनाकार का लिखना सार्थक नहीं होगा। संस्कृति उद्योग के विस्तार से जैसे- सिनेमा, टीवी, रेडियो, सोशल मीडिया जैसे फेसबुक, यू-ट्यूब से रचनाकार के लिए पाठकों तक पहुँचना आसान हो गया है। साथ ही प्रकाशक जो रचनाकार एवं पाठक के बीच मध्यस्थ बना हुआ था, उसकी भूमिका को भी सीमित कर दिया है। गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की कृतियों की बात करें तो उसकी सूची लंबी नहीं है। नेपाली जी के निधन के बाद उनकी काव्य-कृतियों के पुन: संस्करण नियमित रूप से प्रकाशित नहीं हुए। कुछ समय बाद उनकी रचनाएँ अनुपलब्ध रहने लगी। उनकी कृतियों का नैरंतर्य कायम नहीं रह सका। लेकिन नेपाली की कृतियों की मांग पाठकों में बनी रही। उनके जन्मशती के बाद उनकी रचनाएँ फिर से प्रकाशित हुई है एवं पाठकों को उपलब्ध है। कई प्रकाशकों ने उनकी कविताओं को लेकर नेपाली की प्रतिनिधि रचनाएँ भी प्रकाशित की है।

गोपाल सिंह ‘नेपाली’ की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण उनका काव्य मंच से जुड़ाव रहा है। काव्य सम्मेलनों में जनता की भागीदारी होती है। काव्य मंच के माध्यम से कवि और जनता के

बीच सीधा संवाद होता है। काव्य मंचों पर नेपाली की लोकप्रियता ऐसी थी कि बड़े से बड़े कवियों का रंग भी उनके सामने फीका पड़ जाता था। नेपाली जी की लोकप्रियता का आलम यह था कि बच्चन जी जैसे कवि का भी अपना सिंहासन डोलता महसूस होता था।

नेपाली की लोकप्रियता का एक कारण उनका लोक से जुड़ाव भी रहा है। कविता जब-जब अपनी मार्मिकता या संवेदना खोने लगती है, तब-तब वह संवेदना के स्तर पर लोक-जीवन से जुड़ती है। कबीर, सूर और तुलसी की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह है कि उन्होंने लोकजीवन के अनुभवों और लोकभाषा की व्यंजकता को ग्रहण कर अपने निजी जीवन के अनुभव के संस्पर्श से उसे सार्वकालिक बना दिया। नेपाली लोक-जीवन से गहरे स्तर पर जुड़े हुए कवि थे। उन्होंने लोक जीवन के अनुभवों को, लोकभाषा एवं मुहावरों के साथ आत्मसात कर अपनी कविता को नया आयाम देते हैं। उनकी कविता 'झीनी-झीनी चदरिया' सूफी भाव-भूमि पर आधारित है, जो उनकी लोक चेतना को ही प्रतिबिंबित करती है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता के समाजशास्त्र को अंतर्वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से देखने पर उनकी लोकप्रियता के संपूर्ण आयाम को समझा जा सकता है। नेपाली उत्तरछायावाद के कवि हैं, जिसमें हरिवंश राय बच्चन, रामधारी सिंह 'दिनकर', रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कवि शामिल हैं। इसमें राष्ट्रीय-सांस्कृतिक एवं वैयक्तिक प्रगीतों की जो धारा है, उसी धारा के कवि हैं गोपाल सिंह 'नेपाली'। नेपाली का जीवन अथक संघर्ष में बीता है। वे अपने जीवन में सदा अभावग्रस्त रहे। तत्कालीन समय के राष्ट्रीय-सांस्कृतिक आंदोलन का उनके जीवन पर गहरा असर रहा है। फिल्मी दुनिया के झूठ-फरेब, मौकापरस्ती, गुटबाजी को उन्होंने करीब से देखा था और अपने जीवन में झेला भी था। अपने स्वाभिमान एवं सिद्धांतप्रियता के कारण वे जीवन में कहीं स्थायी टिक न सके। जीविकोपार्जन एवं धनोपार्जन के लिए जीवन के अंत तक संघर्ष करते रहे। नेपाली के काव्य-संवेदना के निर्माण में इनका गहरा एवं महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, जिसके कारण उनके काव्य में विविधता एवं व्यापकता है। उनके काव्य में प्रकृति, राष्ट्रप्रेम, जीवन के

मधुर एवं कोमल पक्ष, जीवन संघर्ष एवं मानवीय जीवन दर्शन, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना, स्त्रीमन की पीड़ा, स्वाधीन कलम का द्वंद्व, जनवादी तेवर- सभी शामिल है।

नेपाली की कविता का एक तिहाई हिस्सा प्रकृति को समर्पित है। प्राय: उन्होंने अपने सभी काव्य संग्रहों में प्रकृति का चित्रण किया है। वे अपनी कविताओं में प्रकृति के साथ अपने को एकात्म कर दिखाते हैं। उनका प्रकृति वर्णन सरल, सहज एवं जीवंत है। नेपाली ने प्रकृति के हर रूप पर कविता लिखी है। बादल, वृक्ष, पंछी, झरना, हिमालय उनको विशेष प्रिय है। उन्होंने 'हरी घास' नाम से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कविता लिखी, जिसकी चर्चा खूब हुई। हिमालय पर आधारित उनकी कविताओं में भारत की भौगोलिक विशेषता का वर्णन है। ये कविताएँ काफी लोकप्रिय हुई। नेपाली ने प्रकृति के साथ जो आत्मीय तादात्मय स्थापित किया है, वह हिन्दी कविता में विरल है। वे प्रकृति के साथ इतने घुल मिल गये हैं कि उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व को उनसे अलग नहीं किया जा सकता। प्रकृति और उनका व्यक्तित्व एक-दूसरे के पूरक जान पड़ते हैं। 'मेघ, उठें, सखि काले-काले', 'नन्हीं बूँदे और सावन' जैसी कविताएँ इनके प्रमाण हैं। मनुष्य का साहचर्य प्रकृति से रहा है। प्रकृति उसके हर सुख-दुख में शामिल रही है। इसलिए ये कविताएँ मनुष्य को सहज लगती है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की अंतर्वस्तु का एक हिस्सा राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना एवं इतिहास बोध से जुड़ा हुआ है। उनकी राष्ट्रीय चेतना के कई आयाम हैं। उनमें राष्ट्र की चिंता है तो राष्ट्र की मुक्ति की आकांक्षा भी। राष्ट्र की प्रगति की अभिलाषा है तो सुरक्षा की चिंता भी। उनकी कई कविताओं पर गाँधी जी का प्रभाव है। वे गाँधी जी की अहिंसा, सत्याग्रह एवं करूणा से प्रभावित रहे हैं। गाँधी जी के प्रभाव में रहते हुए भी वे कई मामलों में गाँधी जी से अलग थे। गाँधी जी से असहमति का स्वर उनकी कई कविताओं में है। उनका मानना था कि किसी भी देश या समाज को बिना संघर्ष किए कोई अधिकार नहीं मिलता। 'देश दहन', 'टुकड़ी' और 'भाई बहन' जैसी कविताओं में उनकी राष्ट्रीयता देखते ही बनती है। आजादी मिलने के बाद देश के सामने कई चुनौतियाँ थी। नये राष्ट्र के निर्माण का प्रश्न था। राष्ट्र के निर्माण के लिए वे नवीन कल्पना करने के हिमायती रहे। वे रूढ़ियों एवं

कुरीतियों को दूर करने के लिए सदैव तत्पर रहे। भारत-चीन युद्ध के दौरान उन्होंने दर्जन भर भारत-चीन युद्ध से संबंधित कविताएँ लिखी। ये सभी कविताएँ वे जन-जन तक खुद ही काव्य-पाठ करके पहुँचाते थे। वे उस दौरान 'वन मैन आर्मी' बनकर देश के लिए खड़े रहे। वे नेहरू की कड़ी आलोचना भी करते हैं। वे जनता के कवि थे। जनता के लिए लिखते रहे। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक चेतना से संपन्न कविताओं में भारत की उत्सवधर्मिता को रेखांकित किया है। उनके लिए मनुष्यता ही धर्म है। अनेकता में एकता इसकी पहचान है। नेपाली की ये कविताएँ स्वाधीनता एवं सामाजिकता के कारण काफी लोकप्रिय हुई।

नेपाली की कविताओं में जन प्रतिबद्धता एवं प्रगतिशीलता उनकी पहली कृति 'उमंग' से लेकर अंतिम कृति 'हिमालय ने पुकारा' तक में मौजूद है। नेपाली शोषणाधारित व्यवस्था से सांठ-गांठ कर वैयक्तिक सुख भोगने के आकांक्षी कभी नहीं रहे। वे जीवन की हर चुनौती को स्वीकार कर सदैव संघर्ष करते रहे। उन्होंने अपने जीवन में तमाम कठिनाइयों का सामना किया, लेकिन सत्ता से समझौता नहीं किया। नेपाली के काव्य में शोषण से मुक्ति की कई अभिव्यक्तियाँ हैं। वे अंत तक शोषण-उत्पीड़न से मुक्त समरस समाज को देखना चाहते थे। 'देख रहे हैं महल तमाशा', 'नया संसार', 'तुम आग पर चलो', 'नवीन कल्पना करो', 'अभी कहाँ घर लौट चला', 'मनुष्य की समानता', 'नजर है नई तो नजारे पुराने', 'चाँदनी में झोपड़ी', 'पंछी बोले, पिंजड़ा खोलो', 'रोटियों का चन्द्रमा', 'भू-दान के याचक से' आदि लोकप्रिय कविता हैं, जिनमें जनपक्षधरता एवं प्रगतिशीलता देखने को मिलती है। ये कविताएँ उस समय इसलिए लोकप्रिय हुई कि समाज में प्रगतिशील चेतना का विकास हो रहा था। समरस समाज के निर्माण की बात हो रही थी। समाज में व्याप्त असमानता, अशिक्षा, गरीबी को खत्म करने की वकालत हो रही थी। इन कविताओं की लोकप्रियता का कारण समाज में व्याप्त विषमता में है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की वे कविताएँ भी लोकप्रिय हुई, जिनमें प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन विषयों से संबंधित कविताएँ हैं। नेपाली उन्मुक्त प्रेम और प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य ने सहज गायक रहे हैं।

उनमें रूप का आकर्षण है। लेकिन उनका प्रेम छिछला नहीं है। 'मैं प्यासा भृंग जनम भर का', 'दीपक जलता रहा रात भर', 'सौंदर्य तुम्हारा सूर्योदय', 'मैं प्यार चुराता चला गया अंधियारे में', 'चुनरिया झूठी है', 'दो प्राण मिले', 'गगन भी नील नयन भी नील', 'है दर्द दिया में बाती का जलना', 'दर्द में या प्यार में', 'दुनिया एक तुम्हारी आँखें', 'दबे पाँव तुम आई रानी' आदि प्रेम, सौंदर्य एवं यौवन विषय से संबंधित उनकी लोकप्रिय कविताएँ हैं। समाज में प्रेम, यौवन एवं सौंदर्य का महत्त्व रहा है। समाज का युवा वर्ग एवं रसिक वर्ग इसका प्रेमी रहा है। नेपाली की इन कविताओं की लोकप्रियता का कारण समाज के साथ उनकी प्रेम एवं सौंदर्य की सरलता एवं सहजता भी रहा है।

उनकी एक लोकप्रिय कविता है- 'बाबुल तुम बगिया के तरूवर'। यह कविता समाज में खूब सुनी गई एवं पढ़ी गई। इसकी चर्चा आज तक है। इस महत्त्वपूर्ण कविता में आज की स्त्री विमर्श की अनुगूंज सुनाई देती है। इस कविता में एक भारतीय कन्या अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक की अपनी अंतर्कथा-अंतर्व्यथा कहती है। समाज में स्त्रियों को जन्म से लेकर मृत्यु तक तरह-तरह के अपमान एवं शोषण को झेलना पड़ता है। इन सबकी अभिव्यक्ति इस एक कविता में हुई है। जिसके कारण यह कविता आज भी लोकप्रिय है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' की कविता की लोकप्रियता को शिल्प की दृष्टि से देखें तो उनकी कविता सरलता, सहजता एवं बोधगम्यता के कारण लोगों तक आसानी से पहुँचती है। कविता की संप्रेषणीयता समाज में लोगों की पहली पसंद होती है। कविता की लोकप्रियता कविता की भाषा, शब्द, छंद, तुक, लय, गेयता एवं संगीत तत्व की उपस्थिति से प्रभावित होती रही है। समाज उन कविताओं को खूब पसंद करता है, जिनमें भाषा की सरलता, शब्दों की सहजता, छंदयुक्तता, तुकबंदी हो, लयमय हो, गेय हो एवं उसमें संगीत हो। नेपाली की कविताओं में ये सारे गुण मौजूद हैं, जिनके कारण उनकी कविताएँ आसानी से लोक कंठ में रच बस गई। 'बाबुल तुम बगिया के तरूवर', 'रोटियाँ गरीब की', 'मैं प्यार चुराता चला गया अंधियारे में', 'मैं प्यासा भृंग जनम भर का', 'दो तुम्हारे नयन', 'गगन भी नील नयन भी नील', 'चुनरिया झूठी है', 'इतना सस्ता मैं हो न सका', 'नौ लाख सितारों ने लूटा', 'उस पार कहीं बिजली चमकी होगी' आदि कविताएँ आज भी लोक कंठ में बसी हुई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

I. आधार ग्रंथ

1. उमंग, गोपाल सिंह नेपाली, राजदीप प्रकाशन, सी-187, ज्वालापुरी, नं. 4, नांगलोई, नई दिल्ली - 110097, संस्करण 2011
2. नवीन, गोपाल सिंह नेपाली, साहित्य संसद, आर जेड - 35बी, गली नं. 1ए, कैलाशपुरी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110045, संस्करण 2011
3. नीलिमा, गोपाल सिंह नेपाली, पुस्तक भवन, आर जेड - 35बी, गली नं. 1ए, कैलाशपुरी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110045, संस्करण 2017
4. पंचमी, गोपाल सिंह नेपाली, साहित्य संसद, आर जेड - 35बी, गली नं. 1ए, कैलाशपुरी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110045, संस्करण 2011
5. पंछी, गोपाल सिंह नेपाली, पुस्तक भवन, आर जेड - 35बी, गली नं. 1ए, कैलाशपुरी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110045, संस्करण 2017
6. रागिनी, गोपाल सिंह नेपाली, राजदीप प्रकाशन, सी-187, ज्वालापुरी, नं. 4, नांगलोई, नई दिल्ली - 110097, संस्करण 2011
7. हिमालय ने पुकारा, गोपाल सिंह नेपाली, साहित्य संसद, आर जेड - 35बी, गली नं. 1ए, कैलाशपुरी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110045, संस्करण 2011

II. सहायक ग्रंथ

1. अठारह उपन्यास - राजेन्द्र यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण 1981, पहला राधाकृष्ण संस्करण 1999, तीसरी आवृत्ति 2014

2. अभिव्यक्ति - सौंदर्य की दृष्टि से गोपाल सिंह नेपाली के काव्य का अध्ययन, डॉ. अशोक कुमार सिन्हा, अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार), प्रथम संस्करण 2011

3. असंकलित रचनाएँ : गोपाल सिंह 'नेपाली', संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण 2007

4. आधुनिक हिन्दी कविता में बिंब विधान, डॉ. केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, छठा संस्करण 2016

5. आलोचना का नया पाठ, गोपेश्वर सिंह, किताबघर प्रकाशन, 4855-56/24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2014

6. आलोचना की सामाजिकता, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए-दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2005, 2008, आवृत्ति 2012

7. उपन्यास का समाजशास्त्र, संपादिका गरिमा श्रीवास्तव, संजय प्रकाशन, 4378/4 बी. 209, जे.एम.डी. हाउस, गली मुरारीलाल, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2006

8. कला और साहित्य - माओ ज़े-दुंग, प्रकाशन संस्थान, 4268-बी/3, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2014

9. कला की जरूरत, अंर्स्ट फिशर, वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2005

10. कल्पना का उर्वशी विवाद, संपादक गोपेश्वर सिंह, वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2010

11. कवि कह गया है, अशोक वाजपेयी, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, दूसरा संस्करण 2006

12. कविता का गल्प, अशोक वाजपेयी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1996

13. कविता का जनपद, संपादक अशोक वाजपेयी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, दूसरा संस्करण 2016

14. कविता के नए प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, तेरहवाँ संस्करण 2016

15. कविता : पहचान का संकट, नंदकिशोर नवल, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, तीसरा संस्करण 2012

16. का. मार्क्स – फ्रे. एंगेल्स : संकलित रचनाएँ (खंड 1, भाग - 1) – अनुवादक एवं संपादक सुरेन्द्र कुमार,प्रगति प्रकाशन,मास्को, संस्करण -1976

17. काव्य की भूमिका, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, वर्तमान संस्करण 2013

18. कुछ पूर्वग्रह, अशोक वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, दूसरा संस्करण 2003

19. गीतों के राजकुमार गोपाल सिंह नेपाली, संस्मरण और श्रद्धांजलि, संपादक डॉ. दिवाकर, दीपम प्रकाशन, मिर्जापुर (लाईनपार), नवादा-805110, बिहार, प्रथम संस्करण - 17 अप्रैल 1987

20. गोपाल सिंह नेपाली, डॉ. सतीश कुमार राय, किताब पब्लिकेशन, हाजीपुर रोड, मुजफ्फरपुर-842002, प्रथम संस्करण 2008

21. गोपाल सिंह नेपाली की श्रेष्ठ कविताएँ, संपादक नंदकिशोर नंदन, साहित्य संसद, आर जेड - 35बी, गली नं. 1ए, कैलाशपुरी एक्सटेंशन, नई दिल्ली-110045, पृथम संस्करण 2009

22. गोपाल सिंह नेपाली के गीतिकाव्य में संगीत तत्व, राकेश रंजन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, प्रथम संस्करण 2014

23. गोपाल सिंह नेपाली : चुनी हुई कविताएँ, परिचय एवं चयन, सुरेश सलिल, मेधा बुक्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 2016

24. गोपाल सिंह 'नेपाली' : प्रतिनिधि कविताएँ, संपादक सतीश कुमार राय, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 1बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण 2009, दूसरी आवृत्ति 2014

25. गोपाल सिंह नेपाली : युगद्रष्टा कवि, नंदकिशोर नंदन, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सूचना भवन, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, प्रथम संस्करण 2012

26. गोपाल सिंह नेपाली : संकलित कविताएँ, संपादन नंदकिशोर नंदन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, प्रथम संस्करण 2013

27. गोपाल सिंह नेपाली समग्र - भाग 1, संपादिका सविता सिंह नेपाली, गोपाल सिंह नेपाली फाउंडेशन, बेतिया (प. चंपारण), प्रथम संस्करण 2010

28. छायावाद का समाजशास्त्र, डॉ. शशि मुदीराज, परिमल प्रकाशन, 17, एम.आई.जी., बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर, इलाहाबाद-211006, प्रथम संस्करण 1988 ई.

29. जब्तशुदा गीत : आजादी और एकता के तराने, रामजन्म शर्मा, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110002, चतुर्थ संस्करण 2012 (शक 1933)

30. निराला संचयिता - संपादक डॉ. रमेशचन्द्र शाह, वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, द्वितीय संस्करण 2016

31. 'नेपाली' की सत्तर कविताएँ, चयन एवं संपादन डॉ. सतीश कुमार राय, अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर-842002 (बिहार), प्रथम संस्करण 2008

32. नेपाली : चिंतन-अनुचिन्तन, संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली/मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण 2009

33. पंछी एवं अन्य कविताएँ : गोपाल सिंह नेपाली, संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, किताब पब्लिकेशन, हाजीपुर रोड, मुजफ्फरपुर-842002, प्रथम संस्करण 2010

34. पाँच जोड़ बाँसुरी, संपादक चन्द्रदेव सिंह, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, पुनर्नवा संस्करण 2003

35. मुक्तिबोध रचनावली, भाग-4, संपादक नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1980, द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण 1986

36. मुक्तिबोध रचनावली, भाग-5, संपादक नेमिचन्द्र जैन, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1980, द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण 1986

37. राम मनोहर लोहिया रचनावली, खण्ड-8, संपादक मस्तराम कपूर, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली-110002, संस्करण 2012

38. राष्ट्रीय एकता में कवियों का योगदान, संध्या गुप्ता, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2010 (शक 1932)

39. राष्ट्रीय काव्यधारा, संपादक डॉ. कन्हैया सिंह, डॉ. कैलाशनाथ सिंह, वाणी प्रकाशन, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, तृतीय संस्करण 1997

40. रूपाम्बरा : आधुनिक हिन्दी के प्रकृति काव्य (संकलन और विवेचन), संपादक अज्ञेय, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, पुनर्नवा संस्करण 2012

41. लोकप्रिय कविता का समाजशास्त्र, डॉ. रवि रंजन, मिलिंद प्रकाशन, 4-3-178/2, कन्दास्वामी बाग, हनुमान व्यायामशाला की गली, सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500095, प्रथम संस्करण सितम्बर 2003

42. वाद विवाद संवाद - नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1989, चौथी आवृत्ति 2011

43. शब्द और कर्म, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए-दरियागंज, नई दिल्ली-110002, परिवर्द्धित संस्करण 1997

44. शेखर : एक जीवनी, अज्ञेय, मयूर पेपर बैक्स, ए-95, सेक्टर-5, नोएडा-201301, संस्करण 2005

45. साहित्य और कला – मार्क्स - एंगेल्स,राहुल फाउन्डेशन 69,बाबा का पुरवा ,पेपर मिल रोड निशान्तगंज,लखनऊ-226006, संस्करण जनवरी 2006

46. साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, आधार प्रकाशन प्रा.लि., एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16, पंचकूला-134113, प्रथम पेपर बैक संस्करण 2016

47. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, डॉ. मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, अकादमी भवन, पी-16, सेक्टर-14, पंचकूला 134-113, चतुर्थ संस्करण 2014

48. स्वतंत्रता पुकारती : हिन्दी की राष्ट्रीय कविताओं का संकलन, चयन एवं संपादन नंदकिशोर नवल, साहित्य अकादमी, फीरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001, पुनर्मुद्रण 2012

49. स्वप्न हूँ भविष्य का, नंदकिशोर नंदन, राजदीप प्रकाशन, सी. 187, ज्वालापुरी, नं. 4, नांगलोई, नई दिल्ली-110087, प्रथम संस्करण 2012
50. स्वाधीन कलम नेपाली, संपादक डॉ. अवधेश्वर अरुण तथा डॉ. रामप्रवेश सिंह, हंसराज प्रकाशन, पड़ाव पोखर रोड, आमगोला, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण 1982
51. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारीप्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., 8 नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली-110002, मूल संस्करण 1952
52. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, बाइसवाँ संस्करण 2011, पुनर्मुद्रण 2016
53. हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, 4695, 21ए-दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2013
54. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, प्रथम संस्करण 2002, आठवाँ संस्करण 2012, पुनरावृत्ति 2013, 2014
55. हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, एस.आर.बी. 43ए, शिप्रा रिवेरा, ज्ञान खंड 3, इंदिरापुरम 201014, पचासवाँ, इक्यावनवाँ पुनमुर्द्रण संस्करण 2016
56. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, बाबू गुलाबराय, पुस्तक प्रकाशन एवं विक्रेता, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, छत्तीसवाँ संस्करण 1980
57. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, प्रधान संपादक धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी-1, द्वितीय संस्करण, वसन्त पंचमी, संवत 2020
58. है ताज हिमालय के सिर पर : गोपाल सिंह 'नेपाली', संपादक डॉ. सतीश कुमार राय, प्रभास प्रकाशन, दीपक मार्केट, मोती झील, मुजफ्फरपुर, द्वितीय संस्करण 2016

III. पत्र-पत्रिकाएँ

1. अलाव, गोपाल सिंह नेपाली - जन्मशती विशेषांक लोकोन्मुख साहित्य चेतना की दोमाही पत्रिका, संपादक रामकुमार कृषक, अंक 31, मार्च-अप्रैल 2012

2. आजकल, संपादक - सीमा ओझा, अंक नवम्बर 2011

3. आलोचना, संपादक परमानंद श्रीवास्तव, सहस्त्राब्दी अंक चौदह, जुलाई-सितम्बर 2003

4. जनपथ, संपादक अनंत कुमार सिंह, अतिथि संपादक बलभद्र, अंक दिसम्बर 2011

5. परिषद पत्रिका (शोध और आलोचना त्रैमासिक), गोपाल सिंह नेपाली विशेषांक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना-4, वर्ष 39, अंक 1-4, अप्रैल 1999 से मार्च 2000

6. परिषद पत्रिका (शोध त्रैमासिक) जन्मशती स्मरणांक, वर्ष 51, अंक 1-4, अप्रैल 2011 से मार्च 2012 ई.

7. प्रभात खबर, दीपावली विशेषांक 2010, प्रधान संपादक हरिवंश, अतिथि संपादक विभूषण

8. रेतपथ, संपादक अमित मनोज, अंक 3-5, जुलाई 2014-दिसम्बर 2015

9. हंस, जन चेतना का प्रगतिशील कथा मसिक, पूर्णांक -134, अंक 3, अक्टूबर 1997

10. हंस, जन चेतना का प्रगतिशील कथा मसिक, पूर्णांक-135 , अंक 4, नवंबर 1997

IV. ब्लॉग

1. जानकीपुल डॉट कॉम
2. समालोचना ब्लॉग

Vol. 3, Issue 34-35, February-March 2018
वर्ष 3, अंक 34-35, फरवरी-मार्च 2018
ISSN 2454-2725
Impact Factor: 2.0202 [GIF]

जनकृति

फरवरी - मार्च 2018

यूजीसी समेत विश्व की दस से अधिक
रिसर्च इंडेक्स में शामिल पत्रिका

Jankriti

बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका Multilingual International Monthly Journal

Pc:Pixnio

प्रधान संपादक: कुमार गौरव मिश्रा
Editor-in-chief: Kumar Gaurav Mishra

परामर्श मंडल
डॉ. सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका),प्रो. सरन घई (कनाडा), प्रो. अनिल जनविजय (रूस), प्रो. राज हीरामन (मॉरीशस), प्रो. उदयनारायण सिंह (कोलकाता), प्रो. ओमकार कौल (दिल्ली), प्रो. चौथीराम यादव (उत्तर प्रदेश), डॉ. हरीश नवल (दिल्ली), डॉ. हरीश अरोड़ा (दिल्ली), डॉ. रमा (दिल्ली), डॉ. प्रेम जन्मेजय (दिल्ली), प्रो.जवरीमल पारख (दिल्ली), पंकज चतुर्वेदी (मध्य प्रदेश), प्रो. रामशरण जोशी (दिल्ली),डॉ. दुर्गा प्रसाद अग्रवाल (राजस्थान), पलाश बिस्वास (कोलकाता), डॉ. कैलाश कुमार मिश्रा (दिल्ली), प्रो. शैलेन्द्र कुमार शर्मा (उज्जैन), ओम पारिक (कोलकाता), प्रो. विजय कौल (जम्मू), प्रो. महेश आनंद (दिल्ली), निसार अली (छत्तीसगढ़),

संपादक
कुमार गौरव मिश्रा

सह-संपादक
जैनेन्द्र (दिल्ली), कविता सिंह चौहान (मध्य प्रदेश)

कला संपादक
विभा परमार

संपादन मंडल
प्रो. कपिल कुमार (दिल्ली), डॉ. नामदेव (दिल्ली), डॉ. पुनीत बिसारिया (उत्तर प्रदेश), डॉ. जितेंद्र श्रीवास्तव (दिल्ली), डॉ. प्रज्ञा (दिल्ली), डॉ. रूपा सिंह (राजस्थान), तेजिंदर गगन (रायपुर), विमलेश त्रिपाठी (कोलकाता), शंकर नाथ तिवारी (त्रिपुरा), बी.एस. मिरगे (महाराष्ट्र), वीणा भाटिया (दिल्ली), वैभव सिंह (दिल्ली), रचना सिंह (दिल्ली), शैलेन्द्र कुमार शुक्ला (उत्तर प्रदेश), संजय शेफर्ड (दिल्ली), दानी कर्माकार (कोलकाता), राकेश कुमार (दिल्ली), ज्ञान प्रकाश (दिल्ली), प्रदीप त्रिपाठी (महाराष्ट्र), उमेश चंद्र सिरवारी (उत्तर प्रदेश), चन्दन कुमार (दिल्ली)

सहयोगी
गीता पंडित (दिल्ली)
निलय उपाध्याय (मुंबई, महाराष्ट्र)
मुन्ना कुमार पाण्डेय (दिल्ली)
अविचल गौतम (वर्धा, महाराष्ट्र)
महेंद्र प्रजापति (उत्तर प्रदेश)

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. अनीता कपूर (कैलिफोर्निया)
डॉ. शिप्रा शिल्पी (जर्मनी)
राकेश माथुर (लन्दन)
मीना चौपड़ा (टोरंटो, कैनेडा)
पूजा अनिल (स्पेन)
अरुण प्रकाश मिश्र (स्लोवेनिया)
ओल्या गपोनवा (रशिया)
सोहन राही (यूनाइटेड किंगडम)
पूर्णिमा वर्मन (यूएई)
डॉ. गंगा प्रसाद 'गुणशेखर' (चीन)

जनकृति

(बहुभाषी अंतरराष्ट्रीय मासिक पत्रिका)

वर्ष 3, अंक 34-35. फरवरी-मार्च 2018

संपर्क-
कुमार गौरव मिश्रा, कमरा संख्या 29, गोरख पाण्डेय छात्रावास, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा-442005, महाराष्ट्र, भारत
8805408656
वेबसाईट- www.jankritipatrika.in, www.jankritimagazine.blogspot.in,
ईमेल- jankritipatrika@gmail.com

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार से संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

- जयनंदन की रचनाओं में स्वयं जयनंदन: डॉ. गोपाल प्रसाद [579-583]
- ग्रामीण यथार्थ और प्रेमचंद: मधुलिका कुमारी [584-587]
- 'उत्तररामचरितम्' में लोकजीवन: डॉ.अरुण कुमार निषाद [588-591]
- 'पथ के साथी' में स्मृति का सृजनात्मक उपयोग: ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह [592-597]
- छत्तीसगढ़ी समाज में लोक संस्कृति का चित्रण: प्रीति [598-604]
- लोक संस्कृति और आधुनिकता: डॉ. अमृता सिंह [605-612]
- भीष्म साहनी के उपन्यास और मानव संबंधों की विविधता: निशा उपाध्याय [613-620]
- हिंदी-उर्दू ग़ज़ल और गंगा जमुनी तहज़ीब- मो. आसिफ अली [621-623]
- राजेश जोशी की कहानियों में व्यक्त समकालीन परिवेश: मो. रियाज़ खान एवं डॉ. इस्पाक अली [624-630]
- शांतिनिकेतन में गांधीजी: बिजय कुमार रबिदास [631-637]
- तुलसीदास के काव्य में लोकमंगल विधान: रेखा कुमारी [638-644]
- हिन्दी साहित्य में आदिकालीन प्रमुख कवियों का प्रदान: डॉ. नयना डेलीवाला [645-649]
- हिन्दी उपन्यासों में प्रवासी नारी : अस्मिता एवं स्वायत्ता का जयघोष- प्राणु शुक्ला [650-653]
- लोकप्रिय साहित्य की अवधारणा: सुशील कुमार [654-657]
- समकालीन हिंदी ग़ज़ल में मानवीय मूल्य: नूतन शर्मा [658-662]
- भारतीय साहित्येतिहास में नवजागरण: ज्ञान चन्द्र पाल [663-667]
- राजनैतिक प्रतिरोध के कवि धूमिल: डा० रमेश प्रताप सिंह [668-673]
- दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों में सार्वभौमिक मूल्य: पूनम देवी [674-680]
- अरुण कमल का वैचारिक गद्य: डॉ. राकेश कुमार सिंह [681-691]
- शरद सिंह के उपन्यासों 'पिछले पन्ने की औरतें' एवं 'पाँचकौड़ी' में नारी जीवन की समस्याओं का चित्रण: रक्षा रानी [692-702]

लोकप्रिय साहित्य की अवधारणा

सुशील कुमार
शोधार्थी
हिन्दी विभाग ,हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद -500046 .
मोबाइल न०-8789484808

साहित्य के दो रूप मिलते हैं- एक, लोकप्रिय साहित्य और दूसरा, कलात्मक साहित्य। कलात्मक साहित्य को गंभीर साहित्य माना जाता है, जबकि लोकप्रिय साहित्य को सतही साहित्य। साधारणत: माना जाता है कि जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में स्वीकृत और ग्राह्य हो, वह लोकप्रिय साहित्य है। सहजता, सरलता और सुबोधता ऐसे साहित्य के अनिवार्य गुण माने जाते हैं। लेकिन कोई साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सिर्फ सहजता, सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता। वह साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच लोकप्रिय तभी होगा, जब उसका जुड़ाव आम जन से होगा। जब आम जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ उस साहित्य में सहज, सरल रूप में अभिव्यक्त हो, तभी वह साहित्य लोकप्रिय साहित्य होगा। वहीं कलात्मक साहित्य को गंभीर लेखन बताकर आमजन से दूर किया जाता रहा है। कलात्मक साहित्य भी व्यापक जनसमुदाय से जुड़ा हो सकता है तथा वह भी लोकप्रिय साहित्य हो सकता है।

लोकप्रिय साहित्य में लोकप्रिय है क्या? लोकप्रिय का अर्थ है- जो लोग को प्रिय हो। लेकिन यहाँ लोक का अर्थ क्या है?

हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 में 'लोक' के संबंध में लिखा गया है कि- ''शब्दकोशों में लोक शब्द के कितने ही अर्थ मिलेंगे, जिनमें से साधारणत: दो अर्थ विशेष प्रचलित हैं। एक तो वह जिससे इहलोक, परलोक अथवा त्रिलोक का ज्ञान होता है। वर्तमान प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं। दूसरा अर्थ लोक का होता है- जनसामान्य- इसी का हिन्दी रूप लोग है। इसी अर्थ का वाचक 'लोक' शब्द साहित्य का विशेषण है।''[1] लोकप्रिय साहित्य में लोकप्रिय में लोक का अर्थ सर्वजन, सर्ववर्ण, सब लोग से ही है।

हिन्दी का 'लोक' शब्द 'फोक' का पर्याय है। इस फोक के विषय में इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका ने बताया है कि आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही लोक (फोक) होते हैं और विस्तृत अर्थ में तो इस शब्द से सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी

[1] हिन्दी साहित्य कोश प्रधान संपादक - 1-भाग , 747 .सं.पृ , वर्माधीरेन्द्र

JANKRITI INTERNATIONAL MAGAZINE

अभिहित किया जा सकता है कि सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए ऐसे प्रयुक्त शब्दों में, जैसे लोकवार्ता (फोक लोर), लोक संगीत (फोक म्यूजिक) आदि में इसका अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है, जो नागरिक संस्कृति और सविधि शिक्षा के प्रवाहों से मुख्यत: परे हैं, जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं अथवा जिन्हें मामूली सा अक्षर ज्ञान है, ग्रामीण और गँवार।''[1] यहाँ लोक को दो अर्थों में प्रयोग किया गया है- एक का अर्थ है साधारण जन, जिसमें सभी लोग सम्मिलित हैं, दूसरा अर्थ इसका संकुचित है जो नागरिक संस्कृति और सविधि शिक्षा के प्रवाह से परे है अर्थात् जो ग्रामीण है, गँवार है, देहाती है। लेकिन लोकप्रिय साहित्य में लोक का अर्थ साधारण जन से ही है। इसलिए हमें इसका अर्थ साधारण जन ही स्वीकार्य होगा।

हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 में ही लोक को इस रूप में परिभाषित किया गया है- ''लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।''[2] यहाँ 'लोक' का अर्थ उन लोगों से है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य ने अहंकार से शून्य है अर्थात् जो गँवार है, अनगढ़ है, देहाती है।

साधारण शब्दों में 'लोक' का अर्थ है- सभी लोग, आम जन, साधारण जन। और इस अर्थ में 'लोक' में सभी लोग शामिल हो जाते हैं। लेकिन विशेष अर्थ में ''यह 'विशेष' से अलग होता है। कला के क्षेत्र में हम लोक और शास्त्रीयता का विभाजन देखते हैं, जिसमें शास्त्रीयता का मतलब ही परिष्कृत और व्याकरणिक होता है, जबकि लोक का मतलब अनगढ़ होता है।''[3]

लोकप्रिय का अर्थ है - जो लोक को प्रिय हो अर्थात् जो जनसामान्य को प्रिय हो अर्थात् पसंद हो, रुचिकर हो। अंग्रेजी में लोकप्रिय का पर्याय है - 'पोपुलर'। पोपुलर अच्छी तरह से पसंद किये जाने की सामाजिक स्थिति है, जिसका प्रसार व्यापक होता है। अर्थात् जन समुदाय द्वारा अच्छी तरह से जानी पहचानी गई और अच्छी तरह से पसंद की गई चीज पोपुलर होती है। लोक में प्रसिद्धि से ही लोकप्रियता का पता चलता है।

[1] हिन्दी साहित्य कोशप्रधान संपादक - 1-भाग , 747 .सं.पृ , वर्माधीरेन्द्र

[2] हिन्दी साहित्य कोशप्रधान संपादक - 1-भाग , 747 .सं.पृ , वर्माधीरेन्द्र

[3] लोकप्रिय शब्द सुनते ही बौद्धिक वर्ग के कान खड़े हो जाते हैं ,2012 मई 28 दिनांक ,रंजन प्रभात - जानकीपुल कॉम.

JANKRITI INTERNATIONAL MAGAZINE

'लोकप्रिय साहित्य' क्या है? लोकप्रिय साहित्य किसको कहेंगे? लोकप्रिय साहित्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है- ''आम तौर पर माना जाता है कि जो साहित्य और कला व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो, वह लोकप्रिय है।''[1] यहाँ मैनेजर पाण्डेय कहते हैं कि वही साहित्य और कला लोकप्रिय होगा, जो व्यापक जनसमुदाय को ग्राह्य और स्वीकार्य हो और व्यापक जनसमुदाय के बीच उनकी स्वीकृति और ग्रहण भी सहज रूप में हो। आगे वे लोकप्रिय साहित्य के गुणों की चर्चा करते हैं। वे कहते हैं- ''सरलता, सहजता और सुबोधता आदि ऐसे साहित्य के अनिवार्य गुण हैं।''[2] अर्थात् वही साहित्य लोकप्रिय होगा, जो सरल, सहज और सुबोध हो। वे सरलता, सहजता और सुबोधता को लोकप्रिय साहित्य के लिए अनिवार्य गुण तो बतलाते हैं, लेकिन वे यह भी कहते हैं कि - ''व्यापक जनसमुदाय के बीच कोई साहित्य केवल सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता। लोकप्रियता कला या साहित्य के रूप की ही विशेषता नहीं है। वही साहित्य व्यापक जनता के बीच लोकप्रिय होताहै जिसमें जनजीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज-सुबोध रूप में व्यक्त होती है। इसलिए लोकप्रियता का संबंध साहित्य के रूप के साथ-साथ उसकी अंतर्वस्तु, उस अंतर्वस्तु में मौजूद यथार्थ चेतना और उस यथार्थ चेतना में निहित विश्व दृष्टि से भी होता है। केवल रूप संबंधी लोकप्रियता सतही होती है और रचना वर्ग भी सतही बनाती है।''[3]

वे लोकप्रियता का संबंध सिर्फ रूप से नहीं जोड़ते वे उसे जोड़ते हैं रूप के साथ, उसकी अंतर्वस्तु से, अंतर्वस्तु में मौजूद यथार्थ चेतना से और यथार्थ चेतना में मौजूद विश्व दृष्टि से। जिस साहित्य में ये गुण मौजूद होगा, वह लोकप्रिय साहित्य तो होगा ही, गंभीर भी होगा और कालजयी भी। वे स्पष्ट कहते हैं कि सरलता और सुबोधता के कारण ही कोई साहित्य लोकप्रिय नहीं होता तथा केवल रूप संबंधी लोकप्रियता उस साहित्य को सतही ही बनाएगा, गंभीर और कालजयी नहीं।

लोकप्रिय साहित्य को चवन्नी छाप साहित्य सस्ता साहित्य, सतही साहित्य, फुटपाथी साहित्य, घटिया साहित्य, घासलेटी साहित्य, व्यावसायिक

[1] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि मैनेजर - 330 .सं.पृ ,पाण्डे

[2] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टि मैनेजर - 330 .सं.पृ ,पाण्डे

[3] साहित्य और समाजशास्त्रीय दृष्टिमैनेजर - 330 .सं.पृ ,पाण्डे

JANKRITI INTERNATIONAL MAGAZINE

साहित्य, बाजारू साहित्य, भीड़ का साहित्य, लुगदी साहित्य आदि कहा जाता है। लेकिन साहित्य के समाजशास्त्र में इसे लोकप्रिय साहित्य के नाम से ही जाना जाता है।

JANKRITI INTERNATIONAL MAGAZINE

2019, अंक-32

ISSN : 2394-093X

स्त्रीकाल

स्त्री का समय और सच

ऑनलाइन शोध पत्रिका

स्त्रीकाल

(स्त्री का समय और सच)

समूह संपादक

संजीव चंदन : 08130284314

संपादक

राजीव सुमन : 09650164016

संपादक मंडल

डॉ. अनुपमा गुप्ता : 09422903102

धर्मवीर : 08800671615

निवेदिता : 09835029152

साज-सज्जा एवं शब्द संयोजन

दिनेश कुमार : 09910129575

विषय विशेषज्ञ :

प्रो. रोहिणी अग्रवाल

पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, रोहतक

प्रो. शैलेन्द्र सिंह

विभागध्यक्ष, भाषा विभाग, नार्थ इस्टर्न हिल विश्वविद्यालय

प्रो. परिमला आंबेकर

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गुलबर्गा विश्वविद्यालय, गुलबर्गा

डा. निशा शेंडे

एसोसिएट प्रोफेसर, महिला महाविद्यालय, अमरावती, सदस्य, ऐडवाइजरी कमिटी, वीमेन स्टडीज डिपार्टमेंट, अमरावती विश्वविद्यालय, महाराष्ट्र

डॉ. रतन लाल

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डा. कौशल पंवार

असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. अनिल कुमार

पूर्व असिस्टेंट प्रोफेसर, सामाज शास्त्र, मेरठ विश्वविद्यालय

स्त्रीकाल त्रैमासिक की सदस्यता (प्रिंट) :

व्यक्तिगत

आजीवन : रुपये 2000

वार्षिक : रुपये 250

संस्थागत

आजीवन : रुपये 5000

वार्षिक : रुपये 500

भारत से बाहर के पाठकों के लिए

आजीवन : $ 500

वार्षिक : $ 50

(पोस्टल शुल्क अलग से देय नहीं होगा)

सदस्यों को मार्जिनलाइज्ड प्रकाशन' से प्रकाशित और वितरित होने वाली किताबों पर 25% की विशेष छूट दी जायेगी। आजीवन सदस्यता प्राप्त सदस्यों को 300 रुपये मूल्य की किताबें भी प्रतिवर्ष भेजी जायेंगी।

संपादकीय सम्पर्क

The Marginalised , an Institute for Alternative Research & Media Studies, C/O Ashok D. Meshram, Sanewadi Wardha , Maharashtra, 442001

Delhi Office : A-2 U/G/F House No. 420, K.H. 322, Neb Sarai, New Delhi-110068

Email : themarginalised@gmail.com, Mob: 8130284314, 9650164016

(प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। संपादक की उनसे कोई अनिवार्य सहमति नहीं बनती। पत्रिका से जुड़े सभी व्यक्ति अवैतनिक हैं।)

पत्रिका से संबंधित सभी मामले दिल्ली न्यायालय के आधीन होंगे।

इस अंक में

1.	विवाह में स्त्री का व्यापारीकरण–विवाहों की प्रक्रिया और महिलाओं का जीवन संघर्ष : **गितेश**	03
2.	नवजागरणकालीन स्त्री चिंतन के संदर्भ में सबाल्टर्न विचार : **अभिषेक भारद्वाज**	09
3.	मुद्रणशिल्प का इतिहास (19वीं शताब्दी, बंगाल) : **दोलनचंपा गांगुली**	13
4.	अमृतलाल नागर के उपन्यासों में हाशिये की स्त्री : **आरती**	17
5.	हिन्दी कहानियों में स्त्री समलैंगिकता का स्वरूप **: जैनेन्द्र कुमार**	21
6.	नागार्जुन की कविताओं में आदिवासी जीवन और संघर्ष : **अंजलि कुमारी**	25
7.	समकाल को स्पष्ट करते हुए : एक सच्ची–झूठी गाथा : **कंचन कुमारी**	35
8.	प्रतिरोध के स्वर और समकालीन आदिवासी हिन्दी कविता : **दिनेश अहिरवार**	38
9.	राहुल सांकृत्यायन की स्त्री चेतना : **प्रीति चौधरी**	42
10.	भारतेन्दु हरिश्चंद्र की पत्रकारिता और स्त्री–मुक्ति के प्रश्न **: मेधा**	44
11.	राही मासूम रजा के उपन्यासों में चित्रित–नारी विमर्श : **मोनिका कुमारी**	51
12.	टैगोर और महिला सशक्तिकरण का उनका संदेश : एक नारीवादी परिप्रेक्ष्य : **डॉ. रेखा ओझा**	53
13.	हिन्दू धर्म में स्त्रियों की यौनिकता के प्रति दृष्टिकोण : **रेणु सिंह**	58
14.	अपनी कथाओं में आखिर कितनी स्त्रियों का वध करेंगे आप : **एच के रूपा रानी**	61
15.	आदिवासी जीवन संघर्ष और परिवर्तन की चुनौतियां : **डॉ. साधना गुप्ता**	63
16.	यशपाल की कहानियों में स्त्री जीवन के प्रश्न : **साक्षी**	66
17.	शांताबाई दाणी की आत्मकथाओं में स्त्री–अस्मिता का प्रश्न : **डी. अरुणा**	69
18.	छत्तीसगढ़ बस्तर संभाग में जनजातीय महिला जीवन शैली, समस्या एवं महिलाओं के लिए संचालित विभिन्न तरह की योजनाओं का एक अध्ययन : **शिव कुमार सिंघल**	73
19.	शोषण और मुक्ति के विविध आयाम : **विवेक कुमार**	80
20.	पंत काव्य में आधी आबादी : एक विमर्श : **स्नेहा कुमारी**	84
21.	कमल कुमार के काव्य में स्त्री–प्रश्न : **मनीषा जैन**	85
22.	चित्रा मुद्गल की कहानियों में दाम्पत्य जीवन : **गुलनाज़ बेगम**	89
23.	त्याग पत्र : नारी पीड़ा का ज्वलंत दस्तावेज : **शिल्पा शर्मा**	91
24.	रणेंद्र की कविताओं में आदिवासी स्त्री सरोकार : **सत्य प्रकाश**	95
25.	फिल्मी गीतों के क्षेत्र में गोपाल सिंह 'नेपाली' का योगदान : **सुशील कुमार**	99
26.	रीतिकाल स्त्री लेखन की विशेषताएं : **रामानुज यादव**	103

विस्थापन की समस्या और संसाधनों का दोहन को सामने रखा है।

यह कविता संग्रह आदिवासियों की संस्कृति, रहन–सहन, नियम कानून, खान–पान, तीज–त्यौहार आदि को दर्शाता है, यही आदिवासियों की अस्मिता भी है। रणेन्द्र की कविताओं में आदिवासी स्त्रियों की परिस्थितियां, समस्याएँ और अस्मिताओं को बनाए रखने की जद्दोजहद देखने को मिलती है। साथ ही साथ वे समाज का हिस्सा हैं?, उनकी जाति क्या है?, उनका धर्म क्या है?, उनकी संस्कृति क्या है?, उनकी शिक्षा क्या है? उनके यहाँ सभ्य समाज की तुलना में कितनी सुविधाएं सरकार ने मुहैया कराई हैं? इन सभी पहलुओं को भे देखा जा सकता है। इन सभी पहलुओं की जड़ें भारतीय समाज, संस्कृति, अर्थव्यवस्था और राजनीति के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई हैं। रणेन्द्र ने स्त्री जीवन के विविध पहलुओं को आधार बनाकर इस कविता संग्रह का सृजन किया है। ग्रामीण समाज और शहर के बीच के फर्क को भी इन कविताओं में देखा जा सकता है। एक तरफ शहरी या कहें कि महानगरीय परिदृश्य में स्त्री चरित्र और दूसरी तरफ ग्रामीण समाज में स्त्री के भिन्न रूपों को साथ रख लेखक ने समाज की काली सच्चाई को अभिव्यक्ति दी है।

संदर्भ सूची

1. सं. ज्ञानरंजन, 'पहल', अंक–102, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, पृष्ठ संख्या–183
2. सं. थोराट, विमल, दलित अस्मिता, अंक–25, अक्तूबर–दिसंबर–2016, पृष्ठ संख्या–49
3. रणेन्द्र, थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ संख्या–11
4. वही, पृष्ठ संख्या–19
5. सं. टेटे, वंदना, आदिवासी दर्शन और साहित्य, विकल्प प्रकाशन, संस्करण–2016, पृष्ठ संख्या–47
6. रणेन्द्र, थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ संख्या–63
7. वही, पृष्ठ संख्या–25
8. सं. टेटे, वंदना,आदिवासी दर्शन और साहित्य, विकल्प प्रकाशन, संस्करण–2016, पृष्ठ संख्या–47
9. रणेन्द्र, थोड़ा सा स्त्री होना चाहता हूँ, शिल्पायन प्रकाशन दिल्ली, संस्करण–2010, पृष्ठ संख्या–9
10. वही, पृष्ठ संख्या–12
11. वही, पृष्ठ संख्या–76
12. वही, पृष्ठ संख्या–फ्लैप
13. वही, पृष्ठ संख्या–21
14. वही, पृष्ठ संख्या–75
15. वही, पृष्ठ संख्या–86
16. वही, पृष्ठ संख्या–87
17. वही, पृष्ठ संख्या–68

फिल्मी गीतों के क्षेत्र में गोपाल सिंह 'नेपाली' का योगदान

सुशील कुमार

फिल्मों को मनोरंजन के लोकप्रिय माध्यम के रूप में देखा जाता है। फिल्मों के आने से पहले रंगमंचों की लोकप्रियता थी और उसमें भी पारसी रंगमंचों की धूम मची हुई थी। लेकिन जब सिनेमेटोग्राफी का अविष्कार हुआ और फिल्में बननी शुरू हुई तो रंगमंचों का स्थान धीरे धीरे फिल्मों ने ले लिया। रंगमंच आज भी है लेकिन फिल्मों से काफी पीछे। आज लोकप्रिय कला माध्यम के रूप में फिल्मों को ही देखा जाता है।

भारत में सर्वप्रथम 7 जुलाई 1896 को ल्युमेरे ब्रदर्स ने मुंबई के वाटसन होटल में छः फिल्में 'एंट्री ऑफ सिनेमेटोग्राफी', 'एराइवल ऑफ ए ट्रेन', 'द सी बाथ', 'ए डेमोलिशन', 'लिविंग द फैक्ट्री' तथा 'लेडीज एंड सोल्जर्स ऑन व्हील्स' प्रदर्शित की। उसके बाद से देश में फिल्मों के प्रदर्शन का दौर शुरू हुआ। 1907 में में कोलकाता में स्थायी छविगृह एल्फिंस्टन बनकर तैयार हो गया। यद्यपि 1901 ई. से ही भारत में फिल्म निर्माण के प्रयास किए जाने लगे। लेकिन सफलता 1913 ई. में मिली जब धुंढिराज गोविंद फाल्के ने 'राजा हरिश्चंद्र' नामक मूक फिल्म बनाकर इतिहास रच दिया।

आरंभिक फिल्में मूक फिल्में थीं। इसलिए उसमें गीतों के लिए कोई जगह नहीं थी। लेकिन जब फिल्में सवाक् बनने लगीं तो उसमें गीत और संगीत का समायोजन हुआ। आर्देशिर ईरानी निर्मित 'आलमआरा' पहली भारतीय फिल्म थी जिसमें गीत और संगीत को समायोजित किया गया। यह पहली भारतीय बोलती फिल्म भी थी। इसका प्रथम प्रदर्शन मुंबई के मैजेस्टिक थिएटर में 14 मार्च 1931 ई. को हुआ। यहीं से फिल्मों में गीत की परंपरा शुरू हुई। फिल्मी गीत लिखने के लिए अनेक प्रतिभा सम्पन्न गीतकार सामने आए। शुरुआती दौर में नौटंकी शैली के ही गीत लिखे गए।

फिल्मों को लोकप्रिय बनाने में बड़ा योगदान उसके गीतों का रहा रहा है। फिल्म की सफलता या असफलता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष गीत ही रहा है। कितने ही कमजोर

पटकथा की फिल्में अपने कर्णप्रिय गीतों के सहारे सफल हो गईं। इसलिए फिल्मों में कर्णप्रिय और मधुर गीत का होना अनिवार्य माना जाने लगा। इसलिए अच्छे गीतकारों की फिल्म दुनिया में माँग हमेशा से रही है।

गोपाल सिंह 'नेपाली' का फिल्मी गीतकार के रूप में जीवन सन् 1944 ई. में शुरू हुआ। फिल्मों में आने से पहले वे मंचीय कवि के रूप में लोकप्रिय थे। आरंभिक दिनों में उन्होंने पत्रकारिता भी की थी। सन् 1934 ई. में ऋषभ चरण जैन के संपर्क में आने पर उनके साथ सिनेमा प्रधान सप्ताहिक चित्रपट का संपादन किया था। इस पत्रिका के माध्यम से वे सिने माहौल से परिचित हो गए थे। जब उन्होंने फिल्मों में गीत लिखने की शुरुआत की, उस समय फिल्मी जगत में हिंदी गीतकारों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। उस समय उर्दू शायरों का फिल्मी जगत में आधिपत्य था। वहीं दूसरी ओर संगीतकारों–"गीतकारों की खेमेबाजी के कारण किसी हिंदी गीतकार टिक पाना आसान नहीं था"। ऐसी विपरीत परिस्थिति हिंदी के साहित्यिक कवि के लिए वहां अपना स्थान बनाना आसान काम नहीं था।

गोपाल सिंह 'नेपाली' का फिल्मों से जुड़ाव संयोगवश ही हुआ। फिल्मों से जुड़ने से पहले वे बेतिया में बेतिया राज प्रेस प्रबंधक के रूप में काम कर रहे थे। इस काम से वे संतुष्ट नहीं थे। "तभी उन्हें बंबई से महाकवि कालिदास शताब्दी महोत्सव में शामिल होने के लिए विशेष निमंत्रण 500 सहित मिला। बस आपने प्रेस की कुंजी अपने सहायक के पास फेंक बंबई चल दिए और फिर बेतिया जीवन में रहने के लिए नहीं लौटे। यह सन् 1944 की बात है"। सन् 1944 ई. मुंबई में आयोजित महाकवि कालिदास समारोह में गोपाल सिंह नेपाली सहित चालीस प्रतिनिधियों कवियों को काव्य पाठ का अवसर मिला। इन चालीस कवियों में नेपाली का काव्य पाठ सर्वश्रेष्ठ रहा। अगले दिन मुंबई के समाचार पत्रों में उनके काव्य पाठ की ही चर्चा रही। नंदकिशोर नन्दन ने लिखा है–"सन् 1944 में मुंबई में कालिदास समारोह का आयोजन किया गया था, जिसके कवि सम्मेलन में गोपाल सिंह 'नेपाली' ने अनूठी काव्यशैली एवं मधुर कंठ से श्रोताओं को ऐसे मंत्र–मुग्ध किया कि दूसरे दिन समाचार पत्रों में वहीं छाए रहे। उनके गीतों की चर्चा से प्रभावित हो फिल्मीस्तान के शशिधर मुखर्जी और निदेशक पी.एल. संतोषी होटल जा पहुंचे, जहां नेपाली जी ठहरे थे। उन दोनों के आग्रह पर अभाव से जूझ रहे नेपाली 1500 रुपये प्रतिमाह के अनुबंध को स्वीकार कर चार वर्षो तक गीत लिखने के लिए तैयार हो गए"। फिल्मीस्तान कंपनी के गीतकार के रूप में उनका फिल्मी कैरियर शुरू हुआ। 1944 से 1948 ई. तक फिल्मीस्तान कंपनी के गीतकार के रूप में गीत लिखते रहे। 1949ई. में उन्होंने फिल्मीस्तान के अनुबंध का नवीनीकरण नहीं किया और ना ही किसी फिल्मी कंपनी से कोई नया अनुबंध स्वीकार किया। बल्कि 1949 ई. से उन्होंने एक स्वतंत्र गीतकार के रूप में अपनी पहचान बनाना शुरू किया। सन् 1949 ई. से 1956 ई. तक उन्होंने एक स्वतंत्र गीतकार के रूप में अनेक फिल्मों के लिए गीत लिखे। इस प्रकार सन् 1944 से 1956 ई. तक उनका फिल्मी कैरियर चला। इन 12 वर्षों में उन्होंने 52 फिल्मों के लिए 300 से अधिक गीत लिखे। उन्होंने सर्वप्रथम 'तिलोत्तमा' (1944 ई.) फिल्म के लिए गीत लिखे। 'मजदूर' (1945 ई.) फिल्म से उन्हें पहचान मिली और जी.एस. नेपाली के नाम से लोकप्रिय हो गए। 'जय भवानी' (1960 ई.) अंतिम फिल्म थी जिसके लिए उन्होंने गीत लिखे।

'मजदूर' फिल्म ने गोपाल सिंह 'नेपाली' को लोकप्रिय गीतकार रूप में फिल्मी दुनिया में प्रतिष्ठित किया। हिंदी साहित्य के मशहूर कथाकार उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने इसके संवाद लिखे थे। इस फिल्म के गीत बहुत लोकप्रिय हुए। इस फिल्म के गीत के लिए बंगाल फिल्म जर्नलिस्ट एसोसिएशन ने गोपाल सिंह 'नेपाली' को सर्वश्रेष्ठ गीतकार का पुरस्कार दिया।

हिंदी फिल्मों में गीतकार के रूप में गोपाल सिंह 'नेपाली' का आगमन उस समय हुआ, जब हिंदी गीतकारों की स्थिति ठीक नहीं थी। फिल्मों पर पारसी रंगमंच का अच्छा खासा प्रभाव था। फिल्मों में नौटंकी शैली के गीत लिखे जा रहे थे। नेपाली ने इन प्रतिकूल स्थितियों में भी अपना धैर्य नहीं खोया और एक सफल गीतकार के रूप में अपनी पहचान बनायी। नौटंकी शैली के गीतों से उन्होंने दूरी बनाई और स्तरीय गीत लिखे। वे अपनी गीतों में साहित्यिकता को अक्षुण्ण रखते कई गीत लिखे। दृष्टांत स्वरूप निम्न गीत को देख सकते है–

> "दर्शन दो घनश्याम, आज मेरी अखियां प्यासी रे
> मन मंदिर की ज्योति जगा दो, घट घट वासी रे
> दर्शन दो घनश्याम....
> मन–मंदिर मूरत तेरी, फिर न दिखे सूरत तेरी
> युग बीते न आई मिलन की पूरणमासी रे
> दर्शन दो घनश्याम"....

जब गोपाल सिंह 'नेपाली' ने हिंदी फिल्मों के लिए गीत लिखना शुरू किया, उस समय फिल्मी दुनिया में उर्दू शायरों और कव्वालों का बोलबाला था। "उनका सिक्का कुछ इस तरह जमा हुआ था कि लोग यह सोच भी नहीं पाते थे कि हिंदी में उर्दू से अधिक छंद हैं और हर प्रकार के भावों की सुंदर अभिव्यक्ति दी जा सकती है"। गोपाल सिंह 'नेपाली' ने सारी पूर्व धारणाओं को दरकिनार करते हुए हिंदी में ही गीत लिखें। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति हो या भक्तिपरक–सभी तरह के गीत उन्होंने लिखे और

फिल्मी दुनिया में हिंदी को प्रतिष्ठित किया। उनके सभी गीत सफल रहे। जबकि आरंभ में उनसे उर्दू में ही गीत लिखने का आग्रह निर्माताओं और निर्देशकों ने किया था और उनकी उर्दू पर पकड़ भी थी। लेकिन उन्होंने उर्दू में गीत लिखने से इंकार कर दिया था। फिल्मी दुनिया में उर्दू और हिंदी से संबंधित एक प्रसंग है–"अपने समय की विख्यात और खूबसूरत अभिनेत्री नसीमा बानू ने एक फिल्म के सेट पर नेपाली जी से कविता सुनाने का आग्रह किया और नेपाली जी ने अपने मधुर स्वर में 'कल्पना करो, नवीन कल्पना करो' शीर्षक कविता के अलावा कई कविताएं सुनाईं तो वह वेसाख्ता बोल उठी–"मैं तो आज तक यही समझती थी कि उर्दू और फारसी की सबसे मीठी जुबान है। लेकिन मुझे आज पता चला कि हिंदी दुनिया की सबसे मीठी जुबान है"। कहना ना होगा कि हिंदी को यह प्रतिष्ठा दिलाने में नेपाली जी के साथ नरेंद्र शर्मा, प्रदीप, शैलेंद्र, इंदीवर, भरत व्यास, नीरज और सरस्वती कुमार 'दीपक' की भूमिका अविस्मरणीय है तो हिंदी के कथाकारों में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद, अमृतलाल नागर, भगवती चरण वर्मा, और उपेंद्रनाथ 'अश्क' का योगदान भी कम नहीं है"।

फिल्मी दुनिया में अपना पैर जमाना न उस समय आसान था और ना आज ही। जब गोपाल सिंह 'नेपाली' ने गीत लिखना शुरू किया था, उस समय संगीतकारों–गीतकारों की जबरदस्त खेमेबाजी थी। इस स्थिति में किसी नये गीतकार का टिकना मुश्किल था। नेपाली किसी खेमेबाजी में न पड़कर एक से बढ़कर एक गीत लिखे। उनकी गीतों की लोकप्रियता ने निर्माता–निर्देशकों को मजबूर कर दिया कि बिना किसी खेमेबाजी की परवाह किए वे उनसे गीत लिखवाते रहे। फिल्मी दुनिया की खेमेबाजी का यह प्रसंग द्रष्टव्य है–'गजरे' फिल्म के निर्माता जो मध्य प्रदेश के जबलपुर के रहने वाले संभ्रांत मुस्लिम थे, उन्होंने संगीत निर्देशक के रूप में अपनी फिल्म से प्रख्यात संगीतकार नौशाद को हटाकर उनकी जगह 'गजरे' के संगीत निर्देशक के रूप में अनिल विश्वास को ले लिया था, क्योंकि नौशाद उस फिल्म के गाने शकील बदायूंनी से लिखवाने पर अड़े थे और निर्माता नेपाली जी से गीत लिखवाने को संकल्पित थे"। नेपाली जी ने इस फिल्म के गीत लिखे और सभी गीतों ने अपार लोकप्रियता पायी। इस फिल्म का एक गीत जो आज भी लोग सुनते हैं–

"दूर पपीहा बोला, रात आधी रह गई
मेरी तुम्हारी मुलाकात आधी रह गई"।

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने प्रतिकूल एवं हिंदी विरोधी वातावरण में रहकर फिल्मों के लिए गीत लिखना शुरू किया। उन्होंने अपने गीतों से प्रतिकूल स्थिति को अपने अनुकूल बनाया। हिंदी विरोधी वातावरण ना केवल फिल्मी दुनिया से दूर किया, बल्कि आने वाले हिंदी गीतकारों के लिए फिल्मी दुनिया का मार्ग प्रशस्त किया। उनके बाद एक से बढ़कर एक हिंदी गीतकारों ने फिल्मी दुनिया में अपनी धाक जमायी।

साहित्यिक गीत लिखना और फिल्मों के लिए गीत लिखना–दोनों में अंतर है। साहित्य गीतकार पर कोई बंधन नहीं होता। वह स्वतंत्र रूप से गीत लिखता है। जबकि फिल्मी गीतकार के लिए बंधन होता है, वह स्वतंत्र रूप से गीत नहीं लिख सकता। "फिल्मों के गीत लिखने की अनिवार्य शर्त यह है कि गीत प्रसंगानुसार भावोद्रेक की क्षमता रखते हों और प्रचलित शब्द सीधे हृदय में उतर जाने वाले हों और उनकी धुनें भी मधुर हों ताकि लोगों की जुबान चढ़ जाएं। नेपाली के साहित्यिक गीतों के समान उनके फिल्मी गीतों में ये सारी विशेषताएं रही हैं"। नेपाली के गीत सफल रहे। उन्होंने फिल्म दुनिया में अपनी पहचान और धाक जमायी ही, हिंदी को भी वहां प्रतिष्ठित करने का काम किया।

फिल्मों में काम करने से साहित्यिक स्वायत्तता खत्म हो जाता है, ऐसा सोच के साहित्यिक पृष्ठभूमि के रचनाकारों ने फिल्मों से दूरी बनाए रखा। कुछ लोग फिल्मी दुनिया में गए तो जरूर लेकिन जल्द ही अपनी साहित्यिक दुनिया में लौट आए। प्रेमचंद ने 'मजदूर' फिल्म की पटकथा लिखी। फिल्म सफल भी रही। लेकिन वे लौट आए। हरिवंश राय 'बच्चन' जैसे लोकप्रिय कवि ने भी ही स्वायत्तता खत्म हो जाने के डर से फिल्मों के लिए गीत लिखना स्वीकार नहीं किया। अगर किसी फिल्मकार ने उनके गीतों को फिल्मों में इस्तेमाल करने की अनुमति मांगी, अनुमति दी भी तो बमुश्किल ही। उर्दू के साहिर साहेब जैसे शायरों ने अपनी गाढ़ी शायरी कों फिल्मों के लिए बदल कर भी लिखा–'कभी–कभी मेरे दिल में ख्याल आता है' तथा 'यह दुनिया अगर मिल भी जाए, तो क्या है' जैसे गीत इसके गवाह हैं"। नेपाली जी इन सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर फिल्मों के लिए गीत लिखा। उन्होंने ना कभी यह सोचा कि अपनी साहित्यिक गीतों के फिल्मी संस्करण तैयार करें। उस जमाने में एक गलतफहमी लोगों में थी कि उर्दू लफ्जों का इस्तेमाल अगर फिल्मों के गीत लिखने में किया जाए तो वह गीत लोकप्रिय तो होगी ही और असरदार भी होगी। नेपाली जी ने इस गलतफहमी को दूर किया और उर्दू लफ्जों का इस्तेमाल ना करते हुए भी असरदार और लोकप्रिय गीत लिखें। उर्दू लफ्जों के इस्तेमाल के वे विरोधी भी नहीं थे। इसलिए जहां जरूरत महसूस की वहां उर्दू लफ्जों का इस्तेमाल किया भी। दृष्टांत के रूप में 'सफर' फिल्म के इस गीत को देख सकते हैं–

"अब तो हमारे हो गये, इकरार करें या ना करें..
हमको मोहब्बत आपसे, हमको जरूरत आपकी
आप हमारी जिंदगी गुलजार करें या ना करें"...

गोपाल सिंह 'नेपाली' के गीत पात्रों के मनोदशाओं के

अनुकूल होते थे। उन्होंने कई ऐसे गीत लिखे, जिसने फिल्मी दुनिया में अपनी अमिट छाप छोड़ी। 'नागपंचमी' फिल्म का यह गीत–"अर्थी नहीं, नारी का संसार जा रहा है"–ऐसा मार्मिक गीत है जो आज भी अपनी मार्मिकता, करुणा और संवेदना के लिए याद किया जाता है। नंदकिशोर नन्दन ने लिखा है–"जब 'नागपंचमी' फिल्म का यह गीत मोहम्मद रफी और आशा के स्वर में देशभर में गूंजने लगा तो जोश साहब (प्रख्यात शायर जोश मलीहाबादी) ने उससे अभिभूत होकर कहा था–ऐसा मार्मिक शोक गीत मैंने कभी नहीं सुना"। इन पंक्तियों में कवि नेपाली ने नायक की अर्थी को शमशान भूमि में ले जाते समय की दारुण पृष्ठभूमि को जीवंत करने के लिए लिखा था। गीत की भाव–भूमि और शब्द योजना कवित्व का सुंदर प्रमाण है–

"अर्थी नहीं, नारी का संसार जा रहा है,
भगवान, तेरे घर का शृंगार जा रहा है,
बजता था जीवन–गीत दो सांसों के तारों में
टूटा है जिसका तार, वो सितार जा रहा है
जलना था जब तक तन की जलती रही चिनगारी
बुझने को अब जीवन का अंगार जा रहा है
भव सागर की लहरों में ऐसे बिछड़े दो साथी
सजनी इस पार, साजन उस पार जा रहा है"...

अक्सर मां बच्चे को लोरी सुनाकर सुलाती है। लोरी एक प्रकार का गीत है जो मन को शांत करता है। इसको सुनकर बच्चे जल्दी सो जाते हैं। फिल्मों में भी लोरियों का प्रचलन हुआ। हिंदी फिल्मों में सर्वश्रेष्ठ लोरी की रचना करने का श्रेय गोपाल सिंह 'नेपाली' को ही है। इस गीत की धुन रवि ने बनाई और इसे हेमंत कुमार और लता मंगेशकर ने इसे अलग अलग गया है। "लोरी में भविष्य की पीढ़ी के लिए मार्मिक संदेश भी है–

कल के चांद आज के सपने
तुमको प्यार बहुत सा प्यार
लाल तुम्हारे ही दम से
जगमग होगा यह संसार"।...

हिंदी फिल्मों का पसंदीदा विषय प्रेम रहा है। प्रेम की अभिव्यक्ति को सशक्त बनाने के लिए कई गीत लिखे गए हैं। नेपाली ने फिल्मों के लिए कई प्रेम गीत लिखे हैं। नेपाली के प्रेमगीतों में एक गरिमा है, उसमें फूहड़ता नहीं है। उनके प्रेमगीत सीधे हृदय को छूते हैं। 'तुलसीदास' फिल्म का गीत द्रष्टव्य है–

"रहूँ कैसे मैं तुमको निहारे बिना
मेरा मन ही न माने तुम्हारे बिना"।

गोपाल सिंह नेपाली में भक्तिपरक–धार्मिकपरक गीत एक से बढ़कर एक लिखे हैं। उनके भजन बहुत लोकप्रिय हुए। उनकी भक्तिपरक धार्मिक गीतों की लोकप्रियता का आलम यह है कि आज भी वे मंदिरों में बजते हुए सुनाई देंगे। कितने ही घरों में आज भी उनके भजन रोज सुने जाते हैं। 'नरसी भगत' फिल्म का यह भजन हमें भक्तिकालीन कवियों की याद दिलाता है–

"दर्शन दो घनश्याम
नाथ मोरी अखियां प्यासी रे
मन मंदिर की ज्योति जगा दो
घट घट वासी रे"...

'दर्शन दो घनश्याम' गीत से जुड़ा हुआ एक दुखद प्रसंग है जो गोपाल सिंह 'नेपाली' की उपेक्षा को दर्शाता है। 'स्लमडॉग मिलेनियर' ऑस्कर विजेता फिल्म है। इस फिल्म के एक प्रसंग में एंकर बने अनिल कपूर एक लड़के से सवाल पूछते हैं कि 'दर्शन दो घनश्याम' किसका लिखा हुआ गीत है। लड़के द्वारा सूरदास उत्तर दिया जाता है और एंकर बने अनिल कपूर द्वारा उसे सही घोषित किया जाता है। आखिर ऐसी गलती फिल्म में हुई कैसे? जब कवि के पुत्र नकुल जी ने इसके खिलाफ मुकदमा किया तो उस फिल्म के गीतकार गुलजार साहब नाराज हो उठे। एक समारोह में उन्होंने नकुल जी से कहा कि उन्होंने बेकार का मुकदमा किया है"। गुलजार जी द्वारा दिया गया वक्तव्य अत्यंत निंदनीय है। गुलजार जी स्वयं गीतकार हैं। उनसे कम से कम यह आशा थी कि वे इस संबंध में सकरात्मक रूप अख्तियार करते। गोपाल सिंह 'नेपाली' जैसे लीजेंड गीतकार के साथ ऐसा हुआ और फिल्मी दुनिया में इसकी निंदा तक नहीं की गई। यह फिल्मी दुनिया की एक ऐसी सच्चाई से हमें अवगत कराता है जहां सिर्फ दौलत–शोहरत की पूछ है, किसी को न्याय मिले, इसकी उन्हें कोई चिंता तक नहीं।

गोपाल सिंह 'नेपाली' समाज में समानता के हिमायती थे। वे आर्थिक वैषम्य के स्थान पार आर्थिक साम्य चाहते थे। उनकी कविताओं के साथ फिल्मी गीतों में भी प्रगतिशील विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। 'नजराना' फिल्म का गीत द्रष्टव्य है–

"दुनिया में जन्म लेते ही कोई अमीर है
कोई जन्म से मौत तक बना फकीर है
हम इस जन्म में भोगते हैं इस जन्म का घेर
भगवान तेरे राज में अंधेर है, अंधेर"।

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने फिल्मी गीतों को एक काव्यात्मक भाषा दी। उसमें उन्होंने लोक प्रचलित शब्दों को ही रखा। उन्होंने पात्र–परिवेश और परिदृश्य के अनुरूप शब्दावली में गीत लिखने की कला फिल्मी दुनिया को दी। "शकील साहब तो बृज प्रदेश की नायिका के मुंह में खालीश उर्दू के शब्द ठूँस देते हैं–"बचपन की मोहब्बत को दिल से जुदा ना करना,

जब याद मेरी आए मिलने की दुआ करना"। नेपाली, नरेंद्र शर्मा, प्रदीप और इंदीवर ने कभी ऐसा नहीं किया। यह कितना अस्वाभाविक है कि बृज प्रदेश की नायिका के मुंह से हिंदी की जगह उर्दू ही उर्दू फूटे"।

गोपाल सिंह 'नेपाली' ने फिल्म निर्माण के क्षेत्र में में भी हाथ आजमाया। लेकिन वे यहां बुरी तरह असफल रहे। उन्होंने 'हिमालय फिल्म्स' एवं 'नेपाली पिक्चर्स' नामक दो संस्थाएं बनायीं, जिसके तहत उन्होंने तीन फिल्में बनायीं–1949 ई. में 'नजराना', उसके बाद 'सनसनी' (1951 ई.) तथा खुशबू (1956 ई.)। इन तीनों फिल्मों के गीत इन्होंने ही लिखे। इन फिल्मों की असफलता ने नेपाली की आर्थिक स्थिति को कमजोर कर दिया।

गोपाल सिंह 'नेपाली' जब फिल्मों में सक्रिय थे और अपने गीतों के माध्यम से वहाँ हिंदी भाषा का झंडा बुलंद किए हुए थे। जनता की भाषा में लिखे हुए गीत उन्हें लोकप्रियता के शिखर तक पहुंचा रहे थे। वहीं, साहित्य जगत के लोग उनकी आलोचना में लगे हुए थे। 'नजराना' फिल्म के इस गीत पर उन्हें अश्लील गीतकार कहा गया और उन्हें खूब खरी–खोटी सुनाई गई–

"एक रात को पकड़े गए दोनों
जंजीर में जकड़े गए दोनों
एक थी जवानी एक जवान था
जहान में रहते थे कुछ दिनों से
एक ही मकान में
फिर साथ–साथ रहते प्यार हो गया
दो दिल मिले तो दुश्मन संसार हो गया
एक रात को पकड़े गए दोनों"।

इस संबंध में नंद किशोर नंदन की दो टिप्पणियां द्रष्टव्य हैं–

पहली टिप्पणी–"उन्हीं (गोपाल सिंह 'नेपाली') के द्वारा लिखित हिमालय पिक्चर्स की फिल्म 'नजराना' के इस गीत पर नरेंद्र तूली ने 'ब्लिट्ज़' पत्रिका में अपना गुस्सा प्रकट करते हुए लिखा था–"भाई गोपाल सिंह 'नेपाली' अच्छे कवि होकर भी अपने स्वार्थ के पनाले में डूब गए हैं"। बाद में यही लेख जबलपुर से प्रकाशित पत्रिका 'प्रहरी' के छः अप्रैल 1950 के अंक में 'एक कवि का पतन' शीर्षक से छपा था। नरेंद्र तूली साहब के इस क्रोध का एक कारण अगर कहीं से सामाजिक सरोकार रहा भी होगा तो बड़ा कारण यह भी था कि वह फिल्म जगत में हाथ आजमा रहे थे, लेकिन सफलता उन्हें कभी नहीं मिली। पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि प्रेमी–प्रेमिका के बीच दीवार बने जमाने कि बेरहमी के बीच उनकी विकलता की यह वेदना और तड़प 'चोली के पीछे क्या है', 'सरकाय लो खटिया', 'गुटर गू', 'शीला की जवानी' जैसी गीतों की कामुकता और अश्लीलता के सामने कहीं से भी अमर्यादित नहीं हैं"।

दूसरी टिप्पणी–"लेखिका रंजना नायक इस गीत का उल्लेख करते हुए यह अक्षरशः सही लिखा है–"नेपाली के जिस गीत ने उस वक्त लोगों को इतनी कड़वाहट से भर दिया था, आज के सुपरहिट मुकाबले में कहीं नहीं टिकता"। वह आगे लिखती हैं–"नब्बे के दशक में फिल्मी गाने लिखने, गाने, उन पर नाचने थिरकने वाले और उन्हें देखने–सुनने वालों को पचास के दशक का यह गुस्सा बेमानी और बदमजगी पैदा करने वाला लगेगा। स्पष्ट है कि नेपाली को फिल्म जगत में भी विरोध का सामना करना पड़ा और उस माहौल में भी उन्होंने एक से बढ़कर एक काव्यात्मक गीतों से हिंदी फिल्म जगत को समृद्ध किया।

साहित्यिक जगत में उन पर पर तीखे व्यंग्य और हमले किए गए। फिल्म निर्माण में असफल होने पर उनकी आर्थिक स्थिति भी डांवाडोल हो गई थी। साहित्यिक जगत में गिरती लोकप्रियता और डांवाडोल आर्थिक स्थिति के बीच उन्होंने 1959 ई. में मुंबई छोड़ दिया।

❍

रीतिकाल स्त्री लेखन की विशेषताएं

रामानुज यादव

हिंदी साहित्य का उत्तर मध्यकाल जिसे सामान्यतः रीतिकाल के नाम से जाना जाता है कई मामलों में विलक्षण है। कवि आचार्य की एक कोटि है तो दूसरी तरफ प्रेम के पीर वाले कवि नीतिकार सूक्तिकार भी हैं और प्रबंधकार भी। मजमून लूट लेने वाला कलात्मक काव्य तो है पर समाज का बहुत सारा वर्ग गायब, इतिहास विमुखता का आरोप जो है वो अलग। इनमें एक और विलक्षण बात जो हमें देखने को मिलती है वो ये कि रीतिकाल जो कि स्त्री केन्द्रित श्रृंगार काल है जिसमें स्त्री के सौन्दर्य का अलग–अलग कोणों से, सात साल की बच्ची से लेकर सत्तर साल की वृद्धा तक का सौन्दर्य वर्णन है। नायिका–भेद से यह दौर अटा पड़ा है। इनमें अगर कुछ नहीं है तो वो है स्त्री का स्वयं रचनाकार के रूप में ना होना। पर क्या यह पूर्ण रूप से सच है ?

कुछ लोग कहते हैं कि रीतिकाल में स्त्रियों ने नहीं लिखा है जबकि स्त्रोतों को गौर से देखा जाए तो पता चलता है कि ऐसा नहीं है। रीतिकाल में स्त्री रचनाओं के समय पर

हिन्दी विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश
एवं उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान, लखनऊ के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित

द्वि–दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

28–29 अगस्त, 2018

भाषा, संस्कृति एवं साहित्य के विविध परिप्रेक्ष्य: सन्दर्भ पूर्वोत्तर भारत

प्रमाणित किया जाता है कि प्रो./डॉ./श्री/श्रीमती/सुश्री ....सुशील कुमार....
पदनाम/संस्था ....शोधार्थी, हैदराबाद विश्वविद्यालय.... ने हिन्दी विभाग, राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान, लखनऊ के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में ....आलेख प्रस्तोता के.... रूप में भाग लिया तथा ....लोकप्रिय साहित्य की अवधारणा.... विषय पर व्याख्यान/शोध-पत्र प्रस्तुत किया।

प्रो. ओकेन लेगो समन्वयक अध्यक्ष, हिन्दी विभाग	डॉ. सत्यप्रकाश पाल संयोजक सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग	डॉ. राजीव रंजन प्रसाद सह-संयोजक सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

ST AGNES COLLEGE (AUTONOMOUS)

MANGALURU

RE-ACCREDITED BY NAAC WITH 'A+' GRADE 2017 (CGPA 3.65/4)
College of Excellence by UGC, New Delhi
Star College Status under DBT, MST, Govt of India

DEUS FORTITUDO MEA
ESTD 1921

St Agnes College, Mangaluru 100 1921 2021 DEUS FORTITUDO MEA 100 Years of Empowering Women

संत आग्नेस कॉलेज (स्वायत्त) मंगलूरु–575002

एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

हिन्दी साहित्य और सिनेमा

प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि सुशील कुमार, शोधार्थी, हैदराबाद विश्वविद्यालय ने दिनांक २४ नवम्बर २०१८ को आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रतिभागी/प्रपत्र प्रस्तोता/विषय प्रवर्तक/अध्यक्ष के रुप में सम्मिलित होकर संगोष्ठी को सफल बनाने में सराहनीय योगदान दिया।

आपके प्रपत्र का विषय- फ़िल्मी गीतों के क्षेत्र में गोपाल सिंह 'नेपाली' का योगदान

आर नागेश
डॉ आर नागेश
संयोजक एवं विभागाध्यक्ष

ST. AGNES COLLEGE Mangaluru 575 002 Karnataka AUTONOMOUS

M. Jeswina ac
सिस्टर डॉ एम जेस्वीना ए.सी.
प्रधानाचार्या